प्रश्न पत्र -2
हिन्दी साहित्य का इतिहास (आदि, भक्ति एवं रीतिकाल)

समय - तीन घंटे **पूर्णांक : 100 (प्राईवेट परीक्षार्थी)** **पूर्णांक: 80 (पत्राचार एवं रेगुलर परीक्षार्थी)**

पाठ्य विषय

व्याख्या एवं विवेचन के लिए निर्धारित

खण्ड-1

इतिहास-दर्शन और साहित्येतिहास।

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा, आधारभूत सामग्री और साहित्येतिहास के पुनर्लेखन की समस्याएँ।

हिन्दी साहित्य का इतिहास : काल-विभाजन, सीमा निर्धारण और नामकरण।

खण्ड-2

हिन्दी साहित्य : आदिकाल की पृष्ठभूमि, सिद्ध और नाथ-साहित्य, रासो-काव्य, जैन-साहित्य।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल का ऐतिहासिक परिदृश्य, साहित्यिक प्रवृत्तियां, काव्य धाराएं, गद्य साहित्य।

प्रतिनिधि रचनाकार और उनकी रचनाएँ।

खण्ड-3

पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक-चेतना एवं भक्ति-आन्दोलन, विभिन्न काव्य-धाराएँ तथा उनका वैशिष्ट्य।

प्रमुख निर्गुण सन्त कवि और उनका अवदान।

भारत में सूफी मत का विकास तथा प्रमुख सूफी कवि और काव्यग्रन्थ, सूफी काव्य में भारतीय संस्कृति एवं लोक जीवन के तत्त्व। राम और कृष्ण काव्य, रामकृष्ण काव्येतर काव्य, भक्तितर काव्य प्रमुख कवि और उनका रचनागत वैशिष्ट्य।

भक्तिकालीन गद्य-साहित्य।

खण्ड-4

उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, काल सीमा और नामकरण, दरबारी संस्कृतिः और लक्षण-ग्रन्थों की परंपरा, रीतिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराएँ (रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, रीतिमुक्त), प्रवृत्तियाँ और विशेषताएँ, प्रतिनिधि रचनाकार और रचनाएँ।

प्राश्निक के लिए निर्देशः

1. निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर प्रत्येक खंड में से दो आलोचनात्मक प्रश्न पूछे जाएंगे जिनमें से एक का उत्तर देना अनिवार्य होगा।
2. सभी खंडों में से बारह अति लघुउत्तरीय प्रश्न पूछे जाएंगे जिनमें से दस के उत्तर देने होंगे।

अंक विभाजन

चार आलोचनात्मक प्रश्न	4 x 20 = 80 अंक
अति लघूउत्तरी प्रश्न	10 x 2 = 20 अंक **(प्राइवेट परीक्षार्थी) कुल अंक : 100**
चार आलोचनात्मक प्रश्न	4 x 15 = 60 अंक
अति लघूउत्तरी प्रश्न	10 x 2 = 20 अंक **(रेगुलर एवं पत्राचार परीक्षार्थी) कुल अंक : 80**

अनुशंसित पुस्तकें :

1. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास : नेशनल प्रकाशन दिल्ली
2. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, का.ना.प्र.स. वाराणसी।
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना।
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्यः उद्‌भव और विकास, राजकमल, दिल्ली।
5. गणपति चन्द्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, भारतेन्दु भवन, इलाहाबाद।
6. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण, दिल्ली।
7. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत, वाणी वितान, वाराणसी।
8. रामसजन पाण्डेय, (सं.) हिन्दी साहित्य का इतिहास, लक्ष्मी पब्लिशिंग हाउस, रोहतक।
9. तारक नाथ बाली, हिंदी साहित्य का आधुनिक इतिहास, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
10. श्यामसुन्दर दास, हिंदी साहित्य, इंडियन लिमिटेड प्रयाग।
11. डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह, हिंदी साहित्य का इतिहास और समस्या, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
12. डॉ. हुकुम चंद राजपाल, हिंदी साहित्य का इतिहास, विकास पब्लिशिंग हाउस, प्रा. लि., नई दिल्ली।

*****

इकाई–1

इतिहास दर्शन और साहित्येतिहास

संरचना

1.1 भूमिका

1.2 उद्देश्य

1.3 इतिहास दर्शन और साहित्येतिहास

1.31 हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की परंपरा

स्वयं आकलन प्रश्न

1.4 सारांश

1.5 कठिन शब्दावली

1.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1.7 संदर्भित पुस्तकें

1.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-1
इतिहास दर्शन और साहित्येतिहास

1.1 भूमिका

स्नातक स्तरीय कक्षाओं में हमने हिन्दी साहित्य के इतिहास की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त की। स्नातकोतर कक्षाओं में हम हिंदी साहित्य के इतिहास की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे। इकाई-1 इतिहास दर्शन और साहित्येतिहास के अन्तर्गत हम इतिहास-दर्शन और साहित्येतिहास तथा हिंदी साहित्येतिहास लेखन की परम्परा का अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् हम यह ज्ञात करेंगे में सक्षम होंगे कि

1. हिंदी साहित्य के इतिहास का दर्शन क्या है ?
2. हिंदी साहित्य का साहित्येतिहास कैसा है ?
3. हिन्दी साहित्येतिहास की लेखन की परंपरा का क्या महत्व है ?

1.3 इतिहास दर्शन और साहित्येतिहास

भारतीय वाङ्मय में विभिन्न मनीषियों का अनंतस्पर्शी ज्ञान फैला हुआ है। इन्होंने विभिन्न तथ्यों को अकाट्य परिभाषाओं में बांधने का भी प्रयास किया इतिहास के स्पष्टीकरण में भी इन्होंने अपने गहन चिंतन के बाद ही कहा कि इतिहास का अर्थ है इति + ह + आस। अर्थात् ऐसा निश्चयपूर्वक हुआ; किन्तु इतिहास के संबंध में यह सामान्य शास्त्र दृष्टि है। महाभारतकार ने अपने ग्रंथ को इतिहास कहा -''जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा'' अर्थात् यह जय नामक इतिहास है जिसे जिज्ञासुओं द्वारा सुना जाना चाहिए। उपनिषदों में इतिहास और पुराण को पांचवां वेद कहा है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इतिहास को वेद समक्ष मानकर उसके महत्व को बताया गया है - ''सामग्यं यजुर्वेदास्त्रयी अथर्ववेदेतिहास वेदौ'' - अर्थात् साम, ऋग, यजु, अथर्व और इतिहास वेद के अंतर्गत माने जाते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने साहित्येतिहास संबंधी अपनी दृष्टि को स्पष्ट करते हुए कहा है। - ''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चितवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चितवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य-परंपरा के साथ उसका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।

यह तो स्पष्ट है कि किसी साहित्य के मूल्यांकन के लिए साहित्य का होना आवश्यक है। साहित्य की सृष्टि समाज सापेक्ष होती है। जिस युग में कोई साहित्यकार होता है वह उस युग की परिस्थिति परिवेश में पलता-बढ़ता है। उससे प्रभावित होता है। कई बार साहित्यकार अपनी रचना से युग और परिवेश पर प्रभाव भी डालता है। यानी साहित्यकार और युग का अन्योन्याश्रय संबंध है। साहित्यकार युग से प्रभावित होता है, वह युग को प्रभावित भी करता है। उसके परिवेश की पहचान के साथ ही उसके समय के इतिहास का अंकन होना चाहिए। यही वस्तुत: साहित्येतिहास की शास्त्र दृष्टि है।

यदि साहित्येतिहास लेखन के संदर्भ में सामाजिक परिवेश और साहित्यकार के व्यक्तित्व का संतुलन बहुत आवश्यक है। साहित्येतिहास लेखक किसी युग विशेष की परिस्थिति का कलात्मक उत्कर्ष व सामाजिक संघर्ष का राजनैतिक मूल्यांकन करता है और अपनी अंतर्दृष्टि, अपनी वैयक्तिकता के स्पंदन से झंकृत नहीं करता तो ऐसा साहित्येतिहास कालक्रम के अनुसार लिखे गए विचारों का संचय मात्र होगा।

इस तरह के साहित्येतिहास ग्रंथों की आलोचना करते हुए रेने बैलेक और ऑस्टिन वारेन ने अपनी 'थियरी ऑफ लिटरेचर' नाम रचना में स्पष्ट अभिमत दिया है- 'साहित्य के अधिकांश इतिहास या तो सामाजिक इतिहास हैं या साहित्य में प्रतिबिंबित विचारों के इतिहास अथवा ये अलग-अलग वृत्तियों से संबंधित प्रभाव और गुण दोष विचार होते हैं, जिन्हें कालक्रमानुसार व्यवस्थित कर दिया जाता है।

साहित्य के इतिहास लेखन का यह प्रकार प्रशंसनीय नहीं माना गया क्योंकि युग विशेष की रचनाओं के माध्यम से अपनी विचारधारा को आरोपित करना भी इतिहास दृष्टि नहीं है। लेखक की अपनी निजी विशिष्टता होती है।

विद्वानों ने साहित्येहितास के दर्शन शास्त्र पर गंभीर विचार किया है। उन्होंने उसमें तीन तत्वों को साहित्य की रचना प्रक्रिया के लिए समाहित किया है – प्रतिभा, परिवेश, परम्परा। डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त ने साहित्येतिहास, दर्शन के पांच तत्व माने हैं – प्राकृतिक सृजन शक्ति, परम्परा, वातावरण, द्वंद्व और संतुलन।

प्रतिभा ही सर्जक की नैसर्गिक शक्ति है। व्याप्त विभिन्नता के आधार पर प्रतिभा का वजन देखने में आता है। एक रामकथा को लेकर अपनी प्रतिभा के बल से अनेक मौलिक ग्रंथों का प्रणयन देखने में आया है।

साहित्येतिहास दर्शन में परंपरा और परिवेश के मूल्य की पहचान भी आवश्यक है। जिस समाज में होकर, जिस सामाजिक–सांस्कृति परिवेश में होकर कोई कृति साहित्य में उभरती है। उसकी एक विकासात्मक स्थिति का चिंतन आवश्यक है। परिवेश वातावरण के अनुसार अभिव्यक्ति के तेवर बदलते हैं। भाषिक संरचना में परिवर्तन आता है।

द्वंद्व भी जीवन का एक सत्य है। सर्जकों की द्वंद्वमय स्थिति के पहाड़ के भीतर ही अनुभूति की अन्तःसलिला प्रवाहित होती है। कोई भी कलाकार जीवन और जंगत की प्रतिकूल परिस्थिति में कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य के द्वंद्व में रह सकता है। वह उसमें टकराव, संघर्ष, पलायन, वेदना, दर्द, दंश को अपने मन में उतारता है और ऐसे मूल्यों की खोज करता है जो उनका परिहार करके एक स्वस्थ दिशा–दृष्टि दे सके।

इस स्थल पर हमें स्पष्ट होता है कि साहित्य का इतिहास, सामान्य इतिहासों से भिन्न होता है। उसमें समय और रचनाओं का इतिवृत्ति मात्र होकर साहित्य सर्जना की परिस्थितिगत विकास यात्रा होती है। इसीलिए साहित्य के इतिहास को वर्तमान में जीता हुआ देखा जाता है। क्रोचे ने इस संबंध में ठीक ही कहा है 'सभी इतिहास समसामयिक इतिहास होते हैं, क्योंकि इतिहास में निबद्ध घटनाएं कितनी ही सुदूर अतीत से संबद्ध क्यों न दिखे, मूलतः वे वर्तमान आवश्यकताओं और परिस्थितियों से संदर्भित होती है।' इसका तात्पर्य यह है कि इतिहास में जो विगत होता है। वह पूर्णतः तिरोहित नहीं होता। उसकी कुछ न कुछ वर्णन वर्तमान में भी रहता है। अतः साहित्य की इतिहास दृष्टि अन्य इतिहास दृष्टियों से भिन्न होती है और होनी भी चाहिए।

1.3.1 हिन्दी साहित्येहितास के लेखन की परंपरा

हिन्दी साहित्य का कलेवर अत्यंत विशाल है, जिसका इतिहास लिखने की आवश्यकता महसूस की गई। यह कार्य बड़ा ही जटिल था किन्तु विज्ञान के इस युग ने सब कुछ सरल कर दिया। विभिन्न आलोचकों एंव इतिहासकारों ने अपनी चिंतन और आलोचना दृष्टि के आधार पर विभिन्न साहित्येतिहास रूप दिए। आज इसकी एक समृद्ध परंपरा है, जो यहां प्रस्तुत है–

हिंदी–साहित्य के इतिहास लेखन के बीज तो हमें 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, नामक ग्रंथों में मिल जाते हैं, पर ये रचनाएं हिन्दी साहित्य के सम्बन्ध में कुछ परिचयात्मक वर्णन है। इसमें निश्चित तिथि और क्रम का ब्यौरा नहीं है, ये रचनाएं इतिहास नहीं है। इतिहास तो अतीत की घटना, स्थिति, प्रवृत्ति और क्रम का क्रमबद्ध ब्यौरा होता है। विद्वानों ने माना है कि राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने भाषा के इतिहास पर एक निबन्ध लिखा था, उसमें ऐतिहासिकता जैसी कुछ चीज थी। हिन्दी साहित्य के विधिवत् इतिहास लेखन की परम्परा जिन ग्रन्थकारों और उनकी रचनाओं से आरंभ होती है, उसका विवरण ध्यान देने योग्य है –

गार्सा द तॉसी का इतिहास – गार्सा द तासी फ्रेंच विद्वान थे। ये एशियाई भाषाओं के जानकार थे। इन्होंने फ्रेंच भाषा में हिन्दी कवियों का इतिहास लिखा है। उसका फ्रेंच में नाम है – 'इस्त्वार द ला लितरेत्युर ऐन्दुई ऐंदुस्तानी' यह ग्रंथ 'दो भागों में निकाला गया था, सन् 1839 और सन् 1847 में। इसके बाद इसका द्वितीय संस्करण सन् 1871 में तीन खण्डों में निकाला गया और पहले संस्करण की अपेक्षा इसमें वृद्धि भी की गई। इस इतिहास की निम्नलिखित विशेषताएं हैं –

1. गार्सा द तासी का यह प्रयत्न हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास माना जाता है।
2. इन्होंने कवियों के रचनाकाल का ब्यौरा दिया है। हिन्दू कवि, मुसलमान कवि-कवयित्रियों सबको संकेतित किया है।
3. इस रचना में कवियों के नाम अंग्रेजी के वर्ण-क्रम से दिए गए हैं, कालक्रम से कवियों के वृत्त नहीं है। रचनाओं का विवरण और उदाहरण भी उन्होंने दिए हैं। इसमें 70 कवियों का विवरण है और 1814 पृष्ठ हैं।
4. हिंदी के साथ हिन्दीतर कवियों के परिचय देने से इसमें व्यवस्था की कमी रह गई है, इतिहास लेखन की परम्परा के आरंभ का इतना प्रयास भी स्तुत्य है।
5. तासी के ग्रंथ की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उन्होंने अपने ग्रंथ के आरंभ में 100 पृष्ठों में बहुत से शब्द और मन्तव्यों को स्पष्ट किया है।
6. गार्सा द तासी ने हिन्दुस्तानी को बोलचाल की भाषा के रूप में एशिया भर की भाषाओं से अच्छा बतलाया है। हिन्दी-हिन्दुस्तानी की प्रशंसा का यह पहला प्रयास है।

शिवसिंह सेंगर का इतिहास - शिवसिंह सेंगर सन् 1883 में 'शिवसिंह सरोज' नामक एक इतिहास ग्रंथ लिखा। इसमें उन्होंने एक हजार कवियों के जीवन-वृत्त और कविताओं के उदाहरण दिए हैं। भारतीय विद्वान द्वारा लिखा गया यह, हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास हैं। यह ग्रंथ हिन्दी के विद्वानों में बहुचर्चित रहा है। इस इतिहास की निम्नलिखित विशेषताएं हैं

1. इस ग्रंथ की तिथियों आदि के बारे में काफी विवाद है और अनेक विद्वान तिथियों की दृष्टि से इसे बहुत विश्वसनीय नहीं मानते हैं।
2. इस ग्रंथ के माध्यम से हिन्दी कविताओं का एक अच्छा संकलन प्रकाश में आया है।
3. कवि-खोज का यह सबसे पहला प्रयास है।
4. कवियों का जीवन परिचय देकर उनकी कविता से उदाहरण भी दिए हैं जिससे कवि-परिचय स्पष्ट और सटीक रूप में सामने आ जाता है।
5. इस इतिहास में भी कवियों का वृत्त अकारादि क्रम से दिया गया है इसलिए इतिहास की वैज्ञानिकता इसमें नहीं है।
6. हिन्दी के परवर्ती इतिहास-लेखकों ने शिवसिंह सरोज की उल्लिखित रचनाओं को और कवियों की जीवनी को अपना आधार बनाया है।

जार्ज ग्रियर्सन का इतिहास - सन् 1889 में जार्ज नियर्सन ने अंग्रेजी में 'द मॉर्डन वर्नेक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुतान' के नाम से एक ग्रंथ निकाला। यह वस्तुत: बंगाल पत्रिका के विशेषांक के रूप में था। ग्रियर्सन ने इतिहास दृष्टि का प्रयोग करके और 'शिवसिंह सरोज' के ग्रंथ के सहारे से इसकी रचना की। हिन्दी-साहित्य की इसमें अच्छी दिशा-दृष्टि को मिलती है। इस इतिहास की निम्नलिखित विशेषताएं हैं -

1. इतिहास लेखन और इतिहास दृष्टि से रखने वाला यह सबसे पहला इतिहास ग्रंथ है। एक तरह से व्यवस्थित रीति से लिखा गया इतिहास ग्रंथ है।
2. यह ग्रंथ कालक्रम के अनुसार वर्गीकरण करके लिखा गया है।
3. इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें काल विशेष की प्रवृत्तियों को स्पष्ट किया गया है।
4. इस ग्रंथ में 952 कवियों की जीवनी, रचनाओं और काव्य संबंधी परिचय को प्रस्तुत किया गया है।

5. संस्कृत, प्राकृत, उर्दू आदि से अलग केवल हिन्दी कवि लिए हैं। चारण काव्य, धार्मिक काव्य, प्रेम काव्य, दरबारी काव्य के रूप में इस रचना में वर्णन किया है। हिन्दी साहित्य के परवर्ती इतिहासकारों ने इससे बहुत कुछ प्रेरणा ली है।
6. इस ग्रंथ की रचना करने में विद्वान लेखक के 18 प्रसिद्ध ग्रंथों का अध्ययन करके उनसे प्रभाव लिया है। उनमें शिवसिंह सरोज, रागकल्पद्रुम, भक्तमाल, दिग्विजय भूषण आदि प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

मिश्रबंधुओं का 'मिश्न बन्धु विनोद' - सन् 1913 में कृष्ण बिहारी मिश्र और शुकदेव बिहारी मिश्र और गणेश बिहारी मिश्र नामक तीन भाइयों ने मिश्र 'बन्धु विनोद' नामक ग्रंथ लिखा। उस समय इसको तीन भागों में निकाला था। सन् 1934 में चौथा भाग भी निकला था। अब यह पुनः दो भागों में छपकर आया है। इस ग्रंथ में हिन्दी के 5000 (पांच हजार) कवियों का विवरण है। सन् 1910 में इन्होंने 'नवरत्न' नाम से हिन्दी के तुलसी, सूर, देव, बिहारी, भूषण, मतिराम, केशव, कबीर, गंग इन नौ कवियों को लिया था। हरिश्चन्द्र की भी आलोचना थी। कहते हैं उसी को इन्होंने 1934 में बढ़ा कर दूसरे रूप में लिखा था। इस इतिहास की निम्नलिखित विशेषताएं हैं -

1. मिश्रबधु विनोद में लेखकों के युगों की पृष्ठभूमि के रूप में राजनैतिक और साहित्यिक गतिविधि के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया है। इससे युग की भूमिका का स्वरूप सामने आ जाता है।
2. इस रचना में अनेक अज्ञात कवि प्रकाश में लाए गए हैं। खोजपूर्ण विवरण अनेक और महत्वपूर्ण हैं।
3. इस ग्रंथ में 8 से अधिक काल खंड बनाए गए हैं और उनके सम्बन्ध में वक्तव्य भी दिए हैं।
4. काव्य समीक्षा भी की है और उसमें परंपरागत सिद्धांत अपनाए हैं।
5. इस रचना में कवियों की रचनाओं और उनके उदाहरणों का एक अच्छा रूप प्रस्तुत किया गया है। उनके कवि पहली बार प्रकाश में आए हैं।
6. हिंदी साहित्य के इतिहास के लिए जिस आलोचनात्मक दृष्टि की अपेक्षा होती है, उसका इसमें अभाव है, फिर भी इस ग्रंथ की महान महता है।

रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास - सन् 1929 में रामचन्द्र शुक्ल का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' प्रकाश में आया है। यह हिन्दी शब्दसागर की भूमिका के रूप में लिखा गया था। उसकी बढ़ाकर भूमिका के रूप में लिखा गया था। इस तरह से इतिहास ग्रंथ के रूप में लाया गया इसमें 1000 के लगभग कवियों लेखकों पर विचार किया गया है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास ग्रंथों में इस इतिहास का बहुत अधिक मूल्य है। इसमें युग विशेष की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थिति के आलोक में हिन्दी साहित्य की रचनाओं को परख बहुत मूल्यवान है। इस इतिहास की निम्नलिखित विशेषताएं हैं -

1. इतिहास के काल विभाजन पर नई दृष्टि से विचार किया उसके नामकरण और युगीन परिवेश को स्पष्ट किया गया है। तर्कपूर्ण मीमांसा द्वारा अपना निर्णय दिया है।
2. साहित्य की उस काल विशेष में होने वाली प्रवृत्तियों पर अधिक ध्यान दिया है। उसके सम्बन्ध में वक्तव्य देकर उसकी विवेचना की है।
3. साहित्यिक समीक्षा को महत्व देकर रचनाकारों के ग्रंथों का मूल्यांकन किया है।
4. इतिहास में उल्लिखित कवियों की काव्य-प्रवृत्ति कवि की दिशा-दृष्टि का मूल्यांकन करके काव्य कृतियों से उदाहरण भी दिए हैं।
5. आचार्य शुक्ल की इतिहास-दृष्टि में हिन्दी के बहुत से आरंभ के कवियों की रचनाओं को साम्प्रदायिक बतलाया, उन्हें मूल्य नहीं दिया। आज उसके मूल्य को ऐतिहासिक संगति से पहचाना गया है।

6. शुक्ल ने पहली बार कुछ ऐसे कवियों की पहचान को उजागर किया है जो अन्य इतिहासकारों की दृष्टि से सामान्य थे परन्तु शुक्ल की दृष्टि में महान, जायसी जैसे ही कवि हैं।
7. आचार्य शुक्ल के इतिहास लेखन में वर्गीकरण की दृष्टि रही है। इतिहास लेखन का मूल्य प्रवृत्ति और वर्गीकरण से बढ़ा है।

नोट : 1917 में रामनरेश त्रिपाठी ने 'कविता कौमुदी' दो भागों में निकाली। इसमें 89+49 कवि हैं। 1918 में एडविन ग्रीव्स का 'स्केच ऑफ हिन्दी लिटरेचर' पांच भागों में 112 पृष्ठों का ग्रंथ लिखा गया है। 1920 में एफ.ई. केई. ने- 'ए हिस्ट्री ऑफ हिन्दी लिटरेचर' 116 पृष्ठों में साहित्य के परिचय जैसी रचना रची। 1930 में श्याम सुन्दर दास ने 'हिन्दी भाषा और साहित्य' लिखा। इसमें कवियों का विवरण मात्र हैं।

1930 में डॉ. सूर्यकांत शास्त्री ने 'हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास' लिखा। इसमें विश्व की भावनाओं के साथ तुलना की है। 1931 में रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' हिन्दी साहित्य का इतिहास, एक बड़ा ग्रंथ लिखा। 1934 में कृष्णशंकर शुक्ल ने 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास' लिखा।

डॉ. रामकुमार वर्मा का इतिहास - सन 1938 में डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास लिखा। शुक्ल जी के बाद यह अधिक महत्व का और बड़ा इतिहास ग्रंथ है। इसकी निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

1. इसमें चारण काल और भक्तिकाल तक का वर्णन है। बीच में संधिकाल भी नाम दिया है।
2. इस इतिहास में काव्यधाराओं के नामों में परिवर्तन किया है- संतकाव्य, प्रेम काव्य इन्हीं के नाम दिए हैं।
3. इन्होंने हिन्दी साहित्य का आदि 693 ई. से माना है और स्वयंभू को हिन्दी का पहला कवि सिद्ध किया है।

नोट : इस बीच में पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, ब्रजरत्नदास, गणेश प्रसाद द्विवेदी, गुलाबराय आदि के और भी इतिहास प्रकाश में आए हैं।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का इतिहास - सन 1940 में 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' के नाम से इनका इतिहास ग्रंथ प्रकाशित हुआ। द्विवेदी जी की खोजपूर्ण दृष्टि इसमें दिखलाई देती है। अनेक स्थलों पर शुक्ल की मान्यताओं का खंडन किया है। इस इतिहास को निम्नलिखित विशेषताएं हैं -

1. इन्होंने अपने इतिहास में नई सामग्री, नई दृष्टि और नई व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं।
2. सिद्धों और नाथों को उभारा है और उनका कबीर आदि संतों पर प्रभाव दिखलाया है।
3. आदिकाल पर अलग से विस्तार से खोजपूर्ण ग्रंथ लिखा है औरों से अलग छपवाया गया है।

आचार्य चतुरसेन का इतिहास- सन् 1940 में आचार्य चतुरसेन ने 'हिन्दी' नाम से एक बड़ा ग्रंथ लिखा है। इस ग्रंथ को लिखने में लेखक ने बहुत परिश्रम किया-इसकी भूमिका की निम्नलिखित विशेषताएं हैं -

1. इस इतिहास ग्रंथ में भाषा, लिपि, ध्वनि, विचार करके तब हिन्दी साहित्य की चर्चा की है।
2. इन्होंने हिन्दी का आरंभ सन् 760 ई. से माना और सिद्ध 'सरहपा' को सबसे पहला ज्ञाता कवि सिद्ध किया है।
3. कुछ नई मान्यताएं और स्थापनाएं भी इन्होंने की हैं।

हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास तथा सामूहिक सहयोग के इतिहास- नागरी प्रचारिणी सभा से 16 भागों में एक बहुत बड़ा इतिहास छपा है। अलग-अलग भागों के अलग-अलग सम्पादक हैं और उसमें अनेक लेखक हैं। इस ग्रंथ का विमोचन मार्च 1984 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने किया था। इस तरह के सामूहिक सहयोग के और भी इतिहास ग्रंथ हिन्दी साहित्य में चर्चित हैं। इनमें कुछ महत्वपूर्ण इतिहास ये हैं-

'हिंन्दी साहित्य का इतिहास' (संपादक डॉ. नगेन्द्र)

'हिन्दी साहित्य' (संपादक डॉ. धीरेंद्र वर्मा)

इस तरह के सामूहिक सहयोग के साहित्य मीमांसकों के विचारों में एकरूपता नहीं मिलती। उसकी अपनी विशेषताएं स्पष्ट हैं परन्तु इन ग्रंथों की हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों के रूप में अपनी सीमाएं भी हैं।

नोट : कुछ और भी इतिहास ग्रंथ सामने आये हैं। वे 'गणपति चंद गुप्त का गणपति चंद गुप्त का 'हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का 'हिन्दी साहित्य का अतीत' (2 भाग) हैं। डॉ. बच्चन सिंह का आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास', श्री कृष्णलाल का 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास', लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का 'आधुनिक हिंदी साहित्य की भूमिका', 'शिवदान सिंह चौहान' का 'हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष', डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का 'हिंदी साहित्य का संवेदनात्मक इतिहास', डॉ. बच्चन का 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' आदि अनेक इतिहास ग्रंथ लिखे गए और लिखे भी जा रहे हैं।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा का सूत्रपात किसने किया था।

प्र. 2 शिवसिंह सेंगर के 'इतिहास ग्रंथ का क्या नाम है।

1.4 सारांश

हिंदी साहित्य के इतिहास - लेखन की आधारभूमि विभिन्न, साहित्यकारों की जीवन वृत्ति संबंधित रचनाएं प्रस्तुत करती है प्रारम्भ में विभिन्न कृतियों का व्यक्तित्व और कृतित्व ही प्रस्तुत किया जाता रहा है। ऐसी प्रारम्भिक कृतियों में 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता', दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता, भक्तकाल आदि प्रमुख है।

1.5 कठिन शब्दावली

(1) डिंडिम - प्राचीन काल का एक प्रकार का ढोल

(2) रणांगण - युद्ध क्षेत्र

(3) हस्तलिखित - हाथ से लिखा हुआ (ग्रंथ)

1.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र.1 उ. गार्सा - द - तासी

प्र.2 उ. शिवसिंह सरोज

प्र.3 उ. पृथ्वीराज रासो

1.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नागेन्द्र

(2) हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

1.8 सात्रिक प्रश्न

(1) हिन्दी साहित्येतिहास की आधारभूत सामग्री का विवेचन कीजिए।

(2) इतिहास, दर्शन पर प्रकाश डालते हुए साहित्येतिहास लेखन परस्परा पर प्रकाश डालिए।

*****

इकाई–2
इतिहास लेखन की परंपरा

संरचना

2.1 भूमिका

2.2 उद्देश्य

2.3 आधारभूत सामग्री और साहित्येतिहास के पुनर्लेखन की समस्याएं

2.3.1 हिंदी साहित्य का इतिहास : काल विभाजन, सीमा निर्धारण और नामकरण

स्वयं आकलन प्रश्न

2.4 सारांश

2.5 कठिन शब्दावली

2.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

2.7 संदर्भित पुस्तकें

2.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-2
इतिहास लेखन की परंपरा

2.1 भूमिका

इकाई-1 के अंतर्गत हमने हिंदी साहित्य के इतिहास दर्शन और साहित्येतिहास एवं हिन्दी साहित्येतिस लेखन की परंपरा का अध्ययन किया। इकाई-2 में हम हिंदी सहित्य की आधारभूत सामग्री और साहित्येतिहास के पुनर्लेखन की समस्याओं, हिंदी साहित्य का इतिहास के काल विभाजन, सीमा निर्धारण और नामकरण के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्‌देश्य

इकाई-2 के अध्ययन के पश्चात हम यह ज्ञान करने में सक्षम होंगे कि

1. हिंदी साहित्य की आधारभूत सामग्री क्या है?
2. हिंदी साहित्य के साहित्येतिहास के पुनर्लेखन की समस्याएँ कौन-कौन सी हैं।
3. हिंदी साहित्य के काल विभाजन का मूल प्रतिपाद्य क्या है?
4. हिंदी साहित्य के इतिहास का सीमा निर्धारण कैसे किया जाता है?
5. विभिन्न विद्वानों के मतानुसार इतिहास का नामकरण किस आधार पर किया गया है।

2.3 आधारभूत सामग्री और साहित्येतिहास के पुनर्लेखन की समस्याएं

विज्ञान के इस युग में देश और काल की सीमाएं छोटी बना दी गई हैं। इसलिए साहित्येतिहास लेखन की सोच भी बढ़ गई है। हिन्दी के साहित्य पर विचार करने का उपक्रम गार्सा द तासी के समय सन् 1939 ई. से होता रहा है। तब से इतिहास ग्रंथ लिखे जा चुके हैं। साहित्य के एक-एक पक्ष को लेकर प्रामाणिक सामग्री का संचयन-विवेचन भी बड़े परिश्रमपूर्वक किया जा रहा है। फिर भी हिन्दी साहित्य का प्रामाणिक और वैज्ञानिक चिन्तन से पुष्ट कोई इतिहास शेष है। यही कारण है कि अनेक विद्वानों के मन में यह समस्या है कि इतिहास की ऐसी सर्वागपूर्ण रचना किस प्रकार की जाए जो विद्वानों के अनेक संभावित प्रश्नों के समाधान करने में सक्षम हो। वैसे तो यह कहा जाता है कि आदर्श वह पकड़ में न आए। यदि आदर्श को किसी ने पकड़ लिया तो वह आदर्श, आदर्श नहीं रहता, यथार्थ में बदल जाता है। इस दृष्टि से तो अच्छा है साहित्येतिहास लेखक के अनवरत प्रयास होते रहें। अत: डॉ. बच्चनसिंह ने ठीक ही कहा है - 'इतिहास' लिखने का क्रम तब तक जारी रहेगा जब तक मानवीय सृष्टि रहेगी।' यही कारण है कि हिन्दी-साहित्य का इतिहास लेखन की समस्याएं बनी हुई है उन समस्याओं के स्वरूप पर यहां पर
विचार किया जाता है।

ज्ञान वाङ्मय और भाव वाङ्मय की समस्या - यूं तो संपूर्ण वाङ्मय ही तर्क की दृष्टि से साहित्य के अंतर्गत आता है। परंतु उसके दो वर्ग एकदम स्पष्ट हैं। वाङ्मय और भाव वाङ्मय वैद्यक, ज्योतिष, गणित, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, समाजशास्त्र, सब ज्ञान वाङ्मय है। साहित्य की दृष्टि से भाव वाङ्मय के अंतर्गत आती है। उसमें हृदय का संवाद होता है, जीवन्तता होती है, रसात्मकता होती है, भविष्योन्मुखता होती है।

विद्वानों ने - रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि ने साहित्य के इतिहास के अंतर्गत रसात्मक साहित्य को ही लिया है और भी अनेक विद्वान इसी के पक्ष में हैं। किन्तु हिंदी साहित्य के इतिहास के लेखकों में से हरिऔध, चतुरसेन शास्त्री आदि ने ज्ञान के साहित्य को भी उसमें समाविष्ट कर दिया है। इस प्रकार साहित्येहितास लेखन के प्रसंग में ग्रह्य और त्याज्य विषयों के चयन की एक समस्या सामने आती है।

अपभ्रंश की स्वीकृति-अस्वीकृति की समस्या - अपभ्रंश का प्रयोग बहुत समय तक हिन्दी के समानान्तर चलता है। अवहट्ठ और देश भाषाओं के साहित्य के साथ अपभ्रंश की रचना होती रही है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपभ्रंश की वृत्तियों का परिचय देते हुए उसकी परम्परा को संवत 1400 तक तो माना ही है। यह दूसरी बात है कि उन्होंने इसको हिन्दी के साथ मिलाकर साहित्येतिहासगत मूल्यांकन की ओर रूचि नहीं दिखलाई। राहुल सांकृत्यायन

सरहपाद की रचना आठवीं शताब्दी से ही हिन्दी को मानते हैं और साहित्येतिहास में उसको समाविष्ट करते हैं। डॉ. शम्भुनाथ सिंह ने तो कहा कि अपभ्रंश कोई भाषा नहीं है उधर गुलेरी जी अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी कहते हैं। इसलिए साहित्येतिहास लेखन में यह समस्या बनी हुई है कि अपभ्रंश को स्वीकार करें या न करें?

खड़ी बोली और इतर भाषाओं के समावेश की समस्या – हिन्दी साहित्य के इतिहास के समय यह एक प्रबल और प्रमुख समस्या है। हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल और मध्यकाल तक राजस्थानी, मैथिली, अवधी और ब्रज भाषा के साहित्य का वर्चस्व देखने में आता है। चंदबरदाई, विद्यापति, जायसी, तुलसी, सूर की भाषाएं क्रमशः ये ही थीं। इनमें से किसी भाषा की प्रधानता रही, कभी किसी की। उसके राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक कारण मूल में हो सकते हैं लेकिन अपभ्रंश को छोड़ती हुई अपना रूप बदलते हुए ये बोलियां या उपभाषाएं भाषा रूप में प्रतिष्ठित होती रहीं। उनका इतिहास भी आदिकाल–मध्यकाल तक बिना किसी दूसरी सोच के लिखा जाता रहा, समझा जाता रहा। आधुनिक काल में आकर खड़ी बोली की प्रतिष्ठा हो गई। आधुनिक काल में कविता हो चाहे गद्य की कोई विधा हो – कहानी, नाटक उपन्यास, निबंध, भोजपुरी, ब्रज आदि उनका प्रचार बन्द तो नहीं हो गया है। वहां की अधिकांश जनता अपनी भाषा बोलती है। उसका साहित्य भी होता है। परन्तु, हिन्दी साहित्य में उसका आधुनिक काल का इतिहास लिखा जाना चाहिए। यह ज्वलंत समस्या है। हिन्दी के अनेक विद्वानों का ध्यान इतिहास लेखन की इस समस्या पर गया है। शिवदान सिंह चौहान ने अपनी रचना हिन्दी–साहित्य के अस्सी वर्ष में इस प्रश्न को उठाया है और कहा है कि क्या सदैव खड़ी बोली ही विकास के शीर्ष पर रहेगी। इस सम्बन्ध में वे अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं – 'क्या मनुष्य का इतिहास अपने विकास के अंतिम चरण में पहुंचकर परिवर्तन का नियम भी झुठला बैठता है? क्या राजस्थान के लोग आज भी राजस्थानी नहीं बोलते? अतः साहित्येतिहास में खड़ी को ही अंतिम रूप मान लें, अन्य को न स्वीकारें।'

हिन्दी के साथ उर्दू के रखने की समस्या – हिन्दी के साथ उर्दू के साहित्य को रखना भी एक समस्या है। कुछ विद्वानों ने तर्क दिए हैं कि हिंदी की यह एक शैली है बहुत से विद्वान हिंदी के इतिहास के साथ उसका समावेश करना ठीक नहीं समझते। इस संबंध में डॉ. नगेंद्र ने कहा कि 'उर्दू का हिंदी साहित्य में अंतर्भाव करना उचित नहीं है–प्रसाद और इकबाल को एक ही भाषा के कवि मानना संगत नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि दोनों में कुछ तत्व समान है परंतु असमान तत्व कहीं अधिक हैं। अतः हिंदी साहित्य में उर्दू के समावेश पर प्रयास करना व्यर्थ है।' इस तरह हिंदी में उर्दू के साहित्य को रखने न रखने की समस्या साहित्येतिहास लेखन के संदर्भ में बनी हैं।

काल विभागन की पुरानी समस्या – हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में काल विभाजन की समस्या पहले से ही उभरती रही है उसके आरंभ का काल आठवीं शताब्दी से या 11वीं शताब्दी से कब से माने, इस संबंध में अनेक तर्क प्रस्तुत किए जाते रहे हैं। कुछ विद्वानों ने यह सुझाव दिया है कि कालों का विभाजन हिंदू शासनकाल, मुस्लिम राज्यकाल, पुनरूत्थान काल– इस रूप में हो परंतु यह भी काल विभाजन का मान्य आधार नहीं हो सकता क्योंकि साहित्य राज्य और काल का मुखाक्षेपी नहीं होता।

गौण कृतिकारों का महत्व – हिंदी साहित्य का इतिहास–दर्शन नामक ग्रंथ में डॉ. आनंद नारायण शर्मा ने इस और ध्यान आकर्षित किया है साहित्येहितास लेखन में प्रमुख कृतिकार ही विवेचित रहते हैं, गौण कृतिकार उपेक्षित रह जाते हैं। साहित्य सर्जना के क्षेत्र में कई बार कम प्रसिद्ध कवि भी अपने युग और परिवेशगत मूल्यों को बड़े महत्वपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करते हैं। परंपरा को अपने ढंग से रूपायित करने में भी कहीं वे आते हैं। इस पक्ष को लक्ष्य करके अज्ञेय जी ने माना है कि 'एक युग की' मुख्य चिंताधारा ऐसे कवियों में लक्ष्य हो जो अपने युग में कभी प्रसिद्धि नहीं पा सके'।

2.3.1 हिन्दी साहित्य का इतिहास काल : विभाजन, सीमा निर्धारण और नामकरण

आज हिन्दी साहित्य अपने प्रर्याप्त समृद्ध और प्रौढ़ रूप से विद्यमान है। यह भारतीय जनता की लगभग एक सहस्र वर्षों की अनुभूमियों एवं चिन्ताओं का प्रतिफलन है। इसके अध्ययन की सुविधा के लिए इसे विभिन्न कालखंडों में विभाजित करना आवश्यक है। डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त साहित्य के काल–विभाजन के उद्देश्य के सम्बन्ध में लिखते हैं

''साहित्य की अंतर्निहित चेतना के क्रमिक विकास, उसकी परम्पराओं के उत्थान-पतन एवं उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों के दिशा-परिवर्तन आदि के कालक्रम को स्पष्ट करना ही काल-विभाजन का लक्ष्य होता है। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक इतिहासकारों गार्सा-द-तासी तथा शिवसिंह सेंगर ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। काल-विभाजन की दृष्टि से सर्वप्रथम प्रयास जार्ज गियर्सन कृत 'माडर्न वर्णाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ हिन्दुस्तान' में मिलता है। इस ग्रन्थ में हिन्दी साहित्य का इतिहास कालक्रम के अनुसार लिखा मिलता है तथा विभिन्न प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन भी क्षीण रूप में हो जाता है। उनका इतिहास ग्यारह कालखण्डों में विभक्त है। गियर्सन का काल-विभाजन तथा नामकरण किन्हीं निश्चित आधारों पर आश्रित नहीं है, फलतः उसमें अनेक असंगतियां हैं। भूमिका में वे स्वयं अपनी न्यूनताओं के विषय में कहते हैं 'सामग्री को यथासम्भव कालक्रमानुसार' प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यह सर्वत्र सरल नहीं रहा है और कतिपय स्थलों पर तो यह असम्भव सिद्ध हुआ है। अतएव वे कवि जिनका समय वे किसी भी प्रकार स्थिर नहीं कर सके, अन्तिम अध्याय में वर्णानुक्रम से एक साथ दे दिए है।''

मिश्रबन्धुओं ने 'मिश्रबन्धु विनोद' में काल-विभाजन का प्रयास किया है। उनका साहित्येतिहास विषयक विभाजन इस प्रकार है।

आरम्भिक काल : पूर्वारम्भिक काल 700 से 1343 वि., उत्तरारम्भिक काल 1344 से 1444 वि.स.

माध्यमिक काल : पूर्वमाध्यमिक काल 1445 से 1560 वि., प्रौढ़ माध्यमिक काल 1561 से 1680 वि. स.

अलंकृत काल : पूर्वअलंकृत काल 1681 से 1790 वि.. उत्तरालंकृत काल 1791 से 1889 वि. स.

परिवर्तन काल: 1890-1925 वि. स.

वर्तमान काल : 1926 वि. से अब तक

मिश्रबन्धुओं द्वारा किया गया हिन्दी साहित्य का उपर्युक्त वर्गीकरण स्पष्ट अवश्य है, परन्तु यह त्रुटिपूर्ण है। इसके आरम्भिक युग में अपभ्रंश तथा हिन्दी के साहित्य को एक ही (हिन्दी का) साहित्य माना गया है, दूसरे माध्यमिक के इतिहास को पूर्व तथा प्रौढ़ दो भागों में बांटना सम्यक् प्रतीत नहीं होता। अलंकृत काल के बाद 35 वर्ष के परिवर्तन काल को पृथक स्थान देना अस्वाभाविक प्रतीत होता है। फिर भी साहित्य के इतिहास की रूपरेखा के विस्तारपूर्वक निर्माण का श्रेय मिश्रबन्धुओं को ही प्राप्त है।

आचार्य शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में वैज्ञानिक ढंग से हिन्दी साहित्य को विभिन्न युगों में विभक्त करने का प्रयास किया है। वे संवत् 1050 (993 ई.) से हिन्दी साहित्य का आरम्भ मानते हैं तथा समस्त हिन्दी साहित्य को चार युगों में विभाजित करते हैं -

1. आदिकाल (वीरगाथा काल, संवत् 1050-1375)
2. पूर्व-मध्यकाल (भक्तिकाल, संवत् 1375-1700)
3. उत्तर-मध्यकाल (रीतिकाल, संवत् 1700-1900)
4. आधुनिक काल (गद्यकाल, संवत् 1900 से)

शुक्ल जी द्वारा किया गया काल-विभाजन बहुमान्य एवं बहुप्रचलित है। यह काल-विभाजन विभिन्न काल को व्यापक सामान्य विशेषताओं, विशिष्ट साहित्यिक परम्पराओं, सामान्य प्रवृत्तियों आदि को ध्यान में रखकर किया गया है।

आचार्य शुक्ल ने काल-विभाजन का मुख्य आधार जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन को बनाया है उनका विचार है कि ''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है।'' शुक्ल ने किसी काल का सीमा निर्धारण करने के साथ उस काल की प्रभावशाली प्रवृत्ति के आधार पर उसका नामकरण भी किया है। नामकरण के लिए उन्होंने काल-विशेष में रचित किसी एक ढंग की रचनाओं की बहुलता को आधार माना है। इस प्रकार आचार्य शुक्ल द्वारा किए गए काल-विभाजन का आधार व्यापक एवं ठोस है। परवर्ती समीक्षकों एवं इतिहासकारों ने थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ इसे ही मान्य ठहराया है।

आचार्य शुक्ल ने वीररस प्रधान रचनाओं के आधार पर हिन्दी साहित्य के आदिकाल का नाम वीरगाथा काल किया और सं. 1050 से 1375 (993-1318 ई.) तक इसकी कालावधि निर्धारित की। शुक्ल जी ने निम्नलिखित बारह रचनाओं के आधार पर इस काल का नामकरण 'वीरगाथा काल' किया है-विजयपाल रासो (नल्हसिंह), हम्मीर रासो (शर्गधर), कीर्तिलता (विद्यापति), कीर्तिपताका (विद्यापति), खुमाण रासो (दलपति विजय), बीसलदेव रासो (नरपति नाल्ह), पृथ्वीराज रासो (चंदबरदाई), जयचंद्र प्रकाश (भट्ट केदार) जयमयंक जसचंद्रिका (मधुकर), परमाल रासो (जगनिक), खुसरों की पहेलियां तथा विद्यापति की पदावली। शुक्ल जी द्वारा गिनाई गई इन रचनाओं में से अधिकांश अप्रमाणिक एवं नोटिस-मात्र हैं। 'हम्मीर रासो', 'खुमाण रासो' 'जयमयंक', जसचन्द्रिका तथा 'जयचन्द प्रकाश' नोटिस मात्र है। 'बीसलदेव रासो' तथा 'पृथ्वीराज रासो' अप्रामाणिक कही गई हैं। इसके अतिरिक्त शुक्ल जी ने तत्कालीन धार्मिक साहित्य को उपदेश-प्रधान मात्र मानकर उसे साहित्य की कोटि में ही नहीं रखा। उधर नई खोजों से जो ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं. उनकी भी प्रवृत्तियों का अध्ययन किया जाना चाहिए। इस प्रकार वीरगाथा काल नाम अब पूर्णतया मान्य नहीं रहा।

परवर्ती इतिहासकारों ने आदिकाल के लिए कई नाम सुझाए है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने इसे 'अपभ्रंश काल' कहा है. जो ठीक प्रतीत नहीं होता। हिन्दी अपभ्रंश दो पृथक भाषाएं हैं अत: हिन्दी साहित्य के आदिकाल को 'अपभ्रंश काल' कहना भाषा-शास्त्र की दृष्टि से कदापि उपयुक्त न होगा। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने भी अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी मानकर यही नामकरण किया था। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'बीजवपन काल' कहा, जो इस परम्परा-प्रेम, रूढिग्रस्त, सजग सचेत कवियों के प्रौढ़ साहित्य के लिए सर्वथा अनुचित हैं। राहुल सांकृत्यायन ने अपभ्रंश तथा हिन्दी के इस युग को 'सिद्ध-सामन्त युग' कहा है। प्रस्तुत नामकरण बहुत दूर तक तत्कालीन साहित्य प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है। इस काल में सिद्धों के साहित्य की प्रधानता है तथा सामन्त शब्द चारण कवियों की राजस्तुतिपरक रचनाओं के प्रेरणा-स्रोत की ओर संकेत करता है। यह नाम अधिक प्रचलित नहीं हो सका। साथ ही इस नाम से जैन साहित्य तथा लौकिक साहित्य का बोध नहीं होता। इस प्रकार 'सिद्ध-सामन्त युग' नाम भी तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों को स्पष्ट करने में पूर्णतया समर्थ नहीं है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने हिन्दी साहित्य के आदिकाल को कालावधि सम्वत् 750 से 1375 (693-1318ई) तक मानकर इसे दो भागों में बांटा है। सन्धि काल (693 से 943 ई.) तथा चारणकाल (943 से 1318 ई.)। उन्होंने 'सन्धिकाल' में जैन सिद्ध तथा नाथ साहित्य को तथा 'चारणकाल' में वीरगाथा काल की रचनाओं को समाविष्ट किया है। सन्धिकाल दो भाषाओं एवं दो धर्मों का सन्धि युग है जो वस्तुत: अपभ्रंश साहित्य ही है। 'चारणकाल' 'वीरगाथा काल' की भांति ही सदोष है क्योंकि इस काल के भीतर गिनाई गई चारणों की रचनाएं अप्रामाणिक एवं परवर्ती हैं। कुछ आलोचकों को यह भी कहना है कि वीरगाथा काव्यों को रचने वाले भाट थे। कुछ अन्य इतिहासकारों ने आदि काल (डॉ. रामखेलावन पाण्डेय, भवानीशंकर शर्मा त्रिवेदी आदि), प्रारम्भिक काल (डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, डॉ. राजकिशोर पाण्डेय), आधारकाल आदि नाम दिए हैं, जिससे इस की प्रवृतियां स्पष्ट नहीं हो पाती। अत: किसी अन्य उपयुक्त नाम के अभाव में इसे 'आदिकाल' की संज्ञा देना ही उचित है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आरम्भ 1000 ई. से मानकर इसका नाम आदिकाल ही रखते हैं। आदिकाल नाम में भ्रांति की सम्भावनाएं बनी हुई हैं तथा युग की समस्त प्रवृत्तियां भी नहीं उभरतीं। आचार्य द्विवेदी इस विषय में लिखते हैं -

'वस्तुत: हिन्दी का आदिकाल शब्द एक प्रकार की भ्रामक धारणा की सृष्टि करता है और श्रोता के चित्त में यह भाव पैदा करता है कि यह काल कोई आदिम मनोभावापन्न, परम्परा-विनिर्मुक्त, काव्य-रूढ़ियों से अछूते साहित्य का काल है यह ठीक नहीं है। यह काल बहुत अधिक परम्परा-प्रेमी, रूढ़िग्रस्त तथा सजग और सचेत कवियों का काल है। यदि पाठक इस धारणा से सावधान रहे तो यह नाम बुरा नहीं है।

मध्यकाल के पूर्वार्ध (पूर्व-मध्यकाल) के नामकरण (भक्तिकाल) तथा सीमावधि से प्राय: विद्वान सहमत हैं। इसे शुक्ल जी ने पर्याप्त व्यापक धरातल पर विवेचित किया है। शुक्ल जी इसे निर्गुण काव्यधारा तथा सुगुण काव्यधारा-इन दो भागों में बांटते ओं में विभक्त करते हैं-

(1) ज्ञानाश्रयी शाखा (2) प्रेममार्गी (सूफी शाखा) (3) रामभक्ति शाखा तथा (4) कृष्णभक्ति शाखा। जहां तक इसके वर्गीकरण का प्रश्न है सगुण काव्यधारा के विभाजन और नामकरण से प्राय: सभी सहमत हैं। निर्गुण साहित्य के 'ज्ञानाश्रयी शाखा' के स्थान पर आचार्य हजार प्रसाद द्विवेदी ने 'निगुण भक्ति साहित्य' तथा डॉ. वर्मा ने 'संत काव्य' नाम दिए हैं। डॉ. कृष्णलाल ने 'ज्ञानाश्रयी शाखा' नाम उपयुक्त समझा है। इनमें से डॉ. वर्मा का मत अधिक संगत प्रतीत होता है। परशुराम चतुर्वेदी तथा डॉ. विनय मोहन शर्मा भी इसे 'संत काव्य' की संज्ञा देते हैं। प्रेमाश्रयी सूफी काव्य के स्थान पर 'प्रेमाख्यानक काव्य' नाम उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि इसके अन्तर्गत सूफी तथा असूफी दोनों प्रकार के काव्य आ सकते हैं। इस प्रकार भक्ति-काव्य की चार शाखाएं हैं (1) सन्त काव्य (2) प्रेमाख्यानक काव्य (3) राम भक्ति काव्य तथा (4) कृष्ण भक्ति काव्य। कुछ लोगों ने भक्तिकाल का नाम 'धार्मिक काल' भी सुझाया परन्तु भक्तिकाल ही अधिक प्रचलित एवं उपयुक्त है।

शुक्ल जी द्वारा निर्धारित उत्तर-मध्यकाल (1643 से 1843 ई.) का 'रीतिकाल' नामकरण भी पर्याप्त विवादग्रस्त रहा हैं। इस युग में साहित्य और भाषा में अलंकरण की प्रवृत्ति को मुख्य मानकर मिश्रबन्धुओं ने इसे 'अलंकृत काल' कहा था। परन्तु अलंकृत काल नाम इस युग का पूरा प्रतिनिधित्व नहीं करता क्योंकि वीरगाथा काल से लेकर आधुनिक काल तक की कृतियां अलंकार-सज्जा से विभूषित हैं। इस आधार पर प्रत्येक काल अलंकृत काल कहलाने का अधिकारी हो जाता है। 'अलंकृत काल की भांति कलाकाल' नाम भी उपयुक्त नहीं है, क्योंकि इस साहित्य का भाव-पक्ष भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने उत्तर-मध्यकाल को 'श्रृंगारकाल' की संज्ञा दी है. लेकिन यह नाम भी सार्थन न था क्योंकि इसका में श्रृंगारेतर (वीर नीति, भक्ति), काव्य भी लिखा गया। अत: इस काल के समस्त कवियों को तीन भागों में बांटा जा सकता है (1) रीति ग्रन्थकार कवि (2) रीतिबद्ध काव्य कवि (3) रीतिमुक्त कवि । रीति शब्द के दो अर्थ हैं- एक लक्षण ग्रंथ दूसरा विशिष्ट पद रचना। रीतिमुक्त कवियों में कवित्वपूर्ण पद रचना का वैशिष्ट्य पाया जाता है। अत: हिन्दी साहित्य के उत्तर-मध्यकाल को रीतिकाल की संज्ञा देना ही अधिक उपयुक्त है।

आचार्य शुक्ल ने 1843 ई, से हिन्दी साहित्य का 'आधुनिक काल' माना है। इस काल में गद्य की प्रधानता के कारण उन्होंने इसे 'गद्यकाल' भी कहा है। परन्तु 'गद्यकाल' नाम सार्थक नहीं है, क्योंकि इस युग में गद्य की तुलना में पद्य किसी भी अवस्था में पीछे नहीं है। आधुनिक काल में छायावाद तथा छायावादोत्तर कविता सशक्त एवं प्रभावकारी रूप से विकसित हुई है। वस्तुत: गद्य और पद्य दोनों दृष्टियों से आधुनिक युग महत्वपूर्ण है। आचार्य द्विवेदी ने भी इसे आधुनिक काल कहा है। वस्तुत: 1850 ई. के बाद हिन्दी साहित्य में मध्यकालीन वैचारिक एवं साहित्यिक धरातल पर रूढ़िवादिता टूटती है तथा आधुनिक नई प्रवृत्तियों का उदय होता है। पारलौकिकता के स्थान पर इहलौकिकता, ईश्वरत्व के स्थान पर मानवता तथा जनजागरण, समाज सुधार, राष्ट्रीयता, वैज्ञानिकता आदि प्रवृत्तियों की प्रतिष्ठा होती है। ब्रजभाषा तथा अवधी के स्थान पर खड़ी बोली साहित्यिक भाषा के पद पर आसीन होती है तथा कलागत उपकरणों में क्रांतिकारी परिवर्तन होता है। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अंग्रेजी अथवा ब्रिटिश शासन होने के कारण इस काल का नाम 'ब्रिटिश काल' सुझाया है, जो सहज मान्य नहीं हो सकता। सन् 1947 के बाद के साहित्य को स्वातंत्र्योत्तर साहित्य की संज्ञा दी जा सकती है।

आधुनिक काल के साहित्य के उपविभाग भी किए गए हैं। कविता के क्षेत्र में भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावादी युग, प्रगतिवादी काव्य, प्रयोगवाद, नई कविता आदि उपविभाग किए गए हैं तथा गद्य क्षेत्र में भी भारतेन्दु पूर्व गद्य युग, भारतेन्दु युग (प्रसार, काल), द्विवेदी युग (स्थैर्य काल) तथा प्रौढ़ युग (शुक्ल, प्रसाद, प्रेमचन्द आदि का गद्य) नाम सुझाए गए हैं। अत: हिन्दी साहित्य के इतिहास का विभाजन निम्नलिखित रूप किया जा सकता है -

1. पूर्व पीठिका : अपभ्रंश साहित्य (1000ई. पूर्ववर्ती और परवर्ती भी।)

2. आदिकाल : सन् 1000 से 1350 ई.।

3. मध्यकाल : सन् 1350 से 1850 ई.।

(क) पूर्व-मध्यकाल (भक्तिकाल) 1350 1650 ई. तक

(ख) उत्तर-मध्यकाल (रीतिकाल) 1650 से 1850 ई. तक

4. आधुनिक काल - सन् 1850 से अद्यावधि।

(क) पूर्व-आधुनिक काल (सन 1850-1947 ई.)

(अ) पूर्व-छायावादी युग (राष्ट्रीय चेतनापरक भारतेन्दु और द्विवेदी युग)।

(ब) छायावादी युग

(स) छायावादोत्तर युग

(प्रगतिवाद-प्रयोगवाद)

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र.1 'द मॉडर्न बर्नास्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' का प्रकाशन वर्ष क्या है ?

प्र.2 'मिश्रबंधु विनोद' में कितने कवियों का परिचय दिया है।

प्र.3 डॉ. गणपति चंद्र गुप्त ने कौन सा इतिहास ग्रंथ लिखा है।

2.4 सारांश

समस्त प्राचीन साहित्य जैसे चौरासी वैष्णवन की वार्ता, दो सौ बावन की वार्ता, कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, मीरा, भारतेंदु हरिचंद्र आदि की रचनाएँ हिन्दी साहित्य के इतिहास, लेखन की आधारभूत सामग्री है। आज हिंदी साहित्यिक विद्वानों और आलोचको के बीच हिंदी साहित्य पुनर्लेखन की समस्या का मुद्दा भी देखने को मिल जाता है। इस समस्या का फलक इतना विस्तृत है कि इसे किसी लेख में बांधना कठिन है।

2.5 कठिन शब्दावली

(1) प्रशस्ति - किसी व्यक्ति या वस्तु की प्रशंसा में लिखा गया ग्रंथ।

(2) न्यस्त - स्थापित

(3) द्विगुणित - जिसे दुगुना किया गया हो

2.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. सन् 1888 ई. में

प्र. 2 उ. लगभग 5000 कवियों का

प्र. 3 उ. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास

2.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नरेश मिश्रा एवं रामसजन पाण्डेय

(2) हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियां, शिव कुमार वर्मा

2.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की प्रमुख समस्याएँ कौन सी हैं?

प्र. 2 हिन्दी साहित्य इतिहास के काल विभाजन एवं नामकरण का वर्णन करें।

****

इकाई-3
हिन्दी साहित्य : आदिकाल

संरचना

3.1 भूमिका

3.2 उद्देश्य

3.3 हिन्दी साहित्य : आदिकाल

3.3.1 आदिकाल की पृष्ठभूमि

- सिद्ध साहित्य
- नाथ साहित्य
- रासो साहित्य
- जैन साहित्य

स्वयं आकलन प्रश्न

3.4 सारांश

3.5 कठिन शब्दावली

3.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

3.7 संदर्भित पुस्तकें

3.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-3
हिन्दी साहित्य : आदिकाल

3.1 भूमिका

इकाई-2 में हमने हिंदी साहित्य की आधारभूत सामग्री और साहित्येतिहास के पूनर्लेखन की समस्याओं, हिन्दी साहित्य के इतिहास के इतिहास का काल विभाजन, सीमा निर्धारण और नामकरण के बारे में विस्तारपूर्वक अध्ययन किया। इकाई -3 के अन्तर्गत हम हिंदी साहित्य के इतिहास के आदि काल की पृष्ठभूमि, जिसके द्वारा सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य रासो साहित्य और जैन साहित्य को अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इकाई 2 के अध्ययन के पश्चात हम यह ज्ञात करने में सक्षम होंगे कि -

1. हिंदी साहित्य के इतिहास के आदिकाल की पृष्ठभूमि क्या है ?
2. सिद्ध साहित्य का आदिकाल में क्या महत्व है?
3. नाथ साहित्य की साहित्यिक प्रवृत्तियां क्या है।
4. आदिकाल की प्रतिनिधि काव्य धाराएँ कौन-कौन सी हैं ?
5. जैन साहित्य और रासों साहित्य की प्रवृतियाँ क्या है।

3.3 हिन्दी साहित्य : आदिकाल

आदिकाल (वीरगाथा काल)-संवत् 1050 से 1375 तक- आचार्य शुक्ल ने आदिकाल को वीरगाथा काल का नाम दिया। शुक्ल से पहले मिश्र बन्धु भी काल-विभाजन और उसके नामकरण के बारे में चर्चा कर चुके थे, लेकिन आचार्य शुक्ल ने ही पूर्ण तथा वैज्ञानिक दृष्टि से आदिकाल का नामकरण और काल-निर्धारण किया। परन्तु शुक्ल जी द्वारा दिया गया नाम वीरगाथा काल अधिकांश विद्वानों को स्वीकार्य नहीं है। शुक्ल जी ने आदिकाल को वीरगाथा काल नामकरण देते हुए तत्कालीन ऐतिहासिक परिवेश को प्रमुखता प्रदान की। उनका विचार था कि अधिकांश आदिकालीन कवियों ने वीर रस प्रधान काव्य-रचनाएं लिखी हैं। अधिकांश कवि दरबारी कवि थे, इसलिए तत्कालीन ऐतिहासिक वातावरण तलवार की छाया में विकसित हो रहा था। यद्यपि इस काल में कुछ धार्मिक रचनाएं भी उपलब्ध हुई हैं। लेकिन शुक्ल जी ने उनको साम्प्रदायिक रचनाएं कहकर उन्हें साहित्य की परिधि से बाहर कर दिया। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'बीजवपनकाल' कहा है। इसी प्रकार डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त ने इसे 'संक्रमण काल' नाम दिया है।

उपर्युक्त नामों की विवेचना करने के पश्चात् हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि इस युग में श्रृंगार, वीर, शान्त, भक्ति आदि सभी रसों का आधार बनाकर काव्य रचनाएं लिखी गई हैं। इसलिए इन विविध प्रवृत्तियों को आधार बनाकर इस काल-खण्ड को आदिकाल कहना ही अधिक उचित प्रतीत होता है। अधिकांश विद्वानों में भी इसी नाम को स्वीकार किया है।

आदिकाल के नामकरण की समस्या पर विचार करने से पूर्व हमें इस बात पर विचार करना होगा कि नामकरण की समस्या क्या है। जिस प्रकार किसी घर में बच्चा पैदा होने पर परिवार के विभिन्न सदस्य इस बच्चे का नामकरण अपने-अपने मतानुसार कर देते हैं तथा उस बच्चे के लिए एक स्थायी नाम की समस्या उत्पन्न हो जाती है, उसी प्रकार जब विभिन्न साहित्यकार किसी अध्याय अथवा काल का नामकरण अपने-अपने मतानुसार करने लगते हैं, तब वहां भी उस अध्याय अथवा काल के स्थायी नाम की समस्या उत्पन्न हो जाती है। अस्तु, साहित्य में किसी काल, खण्ड, अध्याय अथवा विषय के नाम के बारे में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत होना ही तत्संबंधी नामकरण की समस्या कहलाती है।

हिन्दी साहित्य की धारा कहां से निकली तथा इसका नामकरण कैसे और क्या किया जाए। यह जानने की उत्सुकता लेकर यदि चिन्तन और अध्ययन करें तो हमें अब से लेकर लगभग एक हजार वर्ष का इतिहास पलटना होगा। हिन्दी साहित्य का नामकरण करने वाले विद्वानों की एक लम्बी श्रृंखला रही है। अत: समय-समय पर उनके द्वारा किए गए इसके नामकरणों पर प्रश्न उठते रहे हैं। हालाकि सभी विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा किया गया हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन जो इस प्रकार है-

1. वीरगाथा काल	सं. 1050-1375 (ई. 933-1318)
2. मध्यकाल-1 भक्तिकाल	सं. 1375-1700 (ई. 1318-1643)
मध्यकाल-2 रीतिकाल	सं 1700-1900 (ई 1643-1843)
3. आधुनिक काल	सं. 1900 से सतत् (ई. 1843 से अब तक)

उचित है। परन्तु यह जानने के लिए कि इस काल का सबसे उपयुक्त नाम क्या हो सकता है, हमें विभिन्न विद्वानों द्वारा किए गए इस काल के नामकरणों पर दृष्टिपात करना होगा।

सामान्यत: किसी काल अथवा विशेष समयावधि के काव्य/साहित्य का नामकरण दो आधारों पर किया जाता है-

1. प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्ति के आधार पर।
2. किसी विशिष्ट व्यक्ति के कृतित्व के आधार पर।

जहां तक हिन्दी साहित्य के 'आदिकाल' के नामकरण का प्रश्न है, विभिन्न विद्वानों ने इसका नामकरण करने का प्रयास किया है। सर्वप्रथम मिश्र बन्धुओं द्वारा चार भागों में प्रकाशित हिन्दी साहित्य का इतिहास 'मिश्रबन्धु-विनोद' जिसके तीन भाग 1913 में और चौथा भाग 1934 में प्रकाशित हुआ, में उन्होंने इस काल को प्रारंभिक काल का नाम दिया है। हालाकि हिन्दी साहित्य का यह प्रारम्भ ही था। अत: बाद में कुछ बदलाव के साथ यही नाम 'आदिकाल' के रूप में प्रकट हुआ। परन्तु इस बीच जिन हिन्दी विद्वानों ने इस प्रश्न को उलझाने का प्रयत्न किया उनके मत पर भी प्रकाश डालना तथा उनका खण्डन करते हुए सही नामकरण करना उचित है।

1. वीरगाथा काल- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 1929 ई. में प्रकाशित अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में उस काल के 12 प्रमुख ग्रंथ (विजयपाल रासो, हम्मीर रासो, कीर्तिलता, कीर्ति-पताका, खुमान रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, जयचन्द-प्रकाश, जयमयंक लस चन्दिका, परमाल रासो, खुसरो की पहेलियाँ, विद्यापति को 'पदावली') चुनें तथा इन ग्रंथों में 'वीरता काल' रख दिया।

परंतु उनकी यह धारणा खरी नहीं थी, क्योंकि नवीन शोधों के अनुसार शुक्ल जी द्वारा बताए गए 12 ग्रन्थों में से आरम्भ के चार अपभ्रंश साहित्य से सम्बद्ध हैं। बीसलदेव रासो, खुमान रासो 15वीं शताब्दी के बाद की रचनाएं साबित हुई हैं। जयचन्द प्रकाश और जयमयंक जस चन्द्रिका ऐसे ग्रन्थों के नाम हैं जो आजतक उपलब्ध नहीं हैं। पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो की ऐतिहासिकता संदेहास्पद है। खुसरो की पहेलियों में हिन्दी का प्रारम्भिक स्वरूप अवश्यक दिखाई देता है, परन्तु उसमें वीरगाथा सम्बन्धी कोई प्रवृत्ति नहीं है। शेष, विद्यापति की 'पदावली' का रचनाकाल स्वयं रामचन्द्र शुक्ल ने सं. 1460 स्वीकार किया है। अत: जबकि इस काल में सभी प्रवृत्तियाँ कम-ज्यादा रूप में विद्यमान थीं, इसे वीरता की प्रवृत्ति के आधार पर वीरगाथा काल नाम देना उचित नहीं है।

2. सिद्ध सामन्त काल- महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने इस काल को सिद्ध सामन्त काल नाम दिया है। उनके विचार में इस काल में सिद्धों और नाथों द्वारा लिखित साहित्य ही प्राप्त होता है। परन्तु इन नाम को स्वीकार करने से उस काल की समूची प्रवृत्तियों का बोध नहीं होता। संदेश रासक, विद्यापति पदावली, **पउमचरिउ** तथा **खुसरो** के साहित्य को नजरअंदाज करके ही इस नाम को स्वीकारा जा सकता है। अत: यह नामकरण भी विद्वानों को नहीं जचा।

3. चरण काल- डॉ. रामकुमार वर्मा ने (सं. 1000 से 1375) के इस काल को चारण काल कहा है। परन्तु यह नाम भी असंगत है क्योंकि यह बहुत सीमित है। इस नाम से ऐसा ध्वनित होता है जैसे उस काल में राजाओं के

दरबारों में रहने वाले कवियों के अतिरिक्त अन्य किसी ने भी साहित्य रचना नहीं की। नवीन अनुसंधानों से यह सिद्ध हो चुका है कि तत्कालीन साहित्य में चारण प्रवृत्ति आंशिक रूप से भले ही विद्यमान रही हो, किन्तु उनकी प्रमुखता नहीं है, जिसके आधार पर इस युग का नाम चारण काल रखा जाए।

4. बीजवपन काल– आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस कालखण्ड का नामकरण बीजवपन काल किया है। यह नाम भी पूर्णतया असंगत है। चूंकि बीजवपन का अर्थ बीज का बोना है। उनके अनुसार हिन्दी साहित्य का बीज इस काल में बोया गया। परन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि इस काल में अपने पूर्ववर्ती साहित्य की प्राय: सभी काव्य रूढ़ियों और परम्पराओं का सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है।

इसके अलावा डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने इसे प्रारम्भिक काल तथा डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा ने इसे दो भाषाओं एवं साहित्य के मिलने के कारण संक्रमण काल कहा है। परन्तु हमारी दृष्टि में ये नाम भी उपयुक्त नहीं हैं क्योंकि प्रारम्भिक काल तो आदिकाल के समीप ही है एवं चूंकि हमें केवल हिन्दी साहित्य का अध्ययन करना है, अत: इसे संक्रमण काल कहना भी उचित नहीं है।

5. आदि काल– डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने विभिन्न आचार्यों के विभिन्न नामकरणों पर विचार करने के बाद इस काल में किसी विशिष्ट प्रवृत्ति के अभाव में इसका नाम आदिकाल रखा है। उनके अनुसार **''वस्तुत: हिन्दी साहित्य का आदिकाल शब्द भ्रामक धारणा पैदा करता है और श्रोता के चित्त में यह भाव उत्पन्न करता है कि यह काल कोई आदिम मनोभावापन्न, परम्परा विनिर्मुक्त काव्य रूढ़ियों से अछूते साहित्य का काल है। यह ठीक नहीं है। यह काल बहुत ही अधिक परम्परा प्रेम, सजग, सचेत कवियों का काल है। यदि पाठक इस धारणा से सावधान रहें तो यह नाम बुरा नहीं है।''** डॉ. नगेन्द्र ने भी उनके द्वारा दिए इस नाम का समर्थन किया है। उनके अनुसार **''वास्तव में, आदि ही ऐसा नाम है जिसे किसी न किसी रूप में सभी साहित्यकारों ने स्वीकार किया है तथा जिससे हिन्दी साहित्य के इतिहास की भाषा, भाव, विचार, शिल्प आदि विषयों की सहज अनुभूति प्राप्य है।''**

अत: उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि चूंकि आदिकाल के उपलब्ध साहित्य के आधार पर काल में किसी विशिष्ट साहित्यिक प्रवृत्ति तथा किसी विशिष्ट व्यक्ति के कृक्तित्व के दर्शन नहीं होते हैं, इसलिए इसे आदिकाल नाम देना ही उपयुक्त है।

3.3.1 आदिकाल की पृष्ठभूमि

किसी भी युग के साहित्य को समझने के लिए उनकी पृष्ठभूमि को जानना अति आवश्यक होता है। आदिकाल के नामकरण पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसे समय सीमा के आधार पर आदिकाल और प्रवृत्तियों के आधार पर वीरगाथा का नाम आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा दिया गया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा इसे आदिकाल नाम दिया गया और यही नाम विद्वानों ने सर्वमान्य किया। इस युग के साहित्य में साहित्य के विविध रूपों का संयोजन होता है। आदिकाल साहित्य का वह पहला काल है, जहां से हिन्दी साहित्य की शुरूआत होती है। जब भी कोई साहित्यकार साहित्य रचना करता है तो उसके पीछे तत्कालीन समय की तमाम परिवेशगत घटनाएं एवं परिस्थितियां रहती हैं। साहित्य का वातावरण शून्य में निर्मित नहीं होता। साहित्यिक रचनाओं के पीछे ऐतिहासिक शक्तियों और सामाजिक संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य को जनता की चित्तवृत्तियों का प्रतिबिम्ब कहा है। इस तर्क के पीछे यही धारणा निश्चित है कि प्रत्येक युग का साहित्य उसके समाज, धर्म विचार, अर्थव्यवस्था, राजनीति आदि से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। यह सभी परिस्थितियां साहित्यिक रचना का आधार बनती है।

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक युग को हम आज तक आदिकाल के नाम से पुकार रहे हैं। यह नाम आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का दिया है। उनके अनुसार यह काल हिन्दी भाषा और साहित्य का आदिकाल था। हिन्दी साहित्य में भक्ति, रीति, नीति, श्रृंगार आदि की जो भी प्रवृत्तियां विकसित हुई, वे इस काल में मौजूद थी। इस काल में किसी एक प्रकार के साहित्य का विस्तार न होकर अनेक प्रवृत्तियों का साहित्य लिखा जा रहा था। इसलिए इस काल को आदिकाल कहा गया। जार्ज ग्रिर्यसन ने आदिकाल की समय सीमा 700 ई से 1300 ई. तक मिश्रबन्धुओं ने 700 वि. से 1444 वि.

तक, आचार्य शुक्ल ने सं. 1050 से सं. 1375 तक, डॉ. रामकुमार वर्मा ने सं. 750 से सं. 1375 तक तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आदिकाल की समय सीमा सं. 1000 से सं. 1400 तक मानते हैं। इनमें से आचार्य शुक्ल का मत अधिक मान्य है। अत: आदिकाल की काल सीमा सं. 1050 से सं. 1375 मानी गई।

- **सिद्ध साहित्य :** सिद्ध कवियों की परम्परा सातवीं शती से तेरहवीं शती तक मानी जाती है। सिद्धों की परम्परा वज्रयानी बौद्धों से सम्बन्धित हैं। वज्रयान का प्रमुख तत्त्व शून्यवाद है जिसको वज्रयानी शून्य, विज्ञान तथा महासुख तीन तत्त्वों से युक्त मानते हैं।

सिद्धों की संख्या चौरासी मानी जाती है। राहुल सांकृत्यायन ने चौरासी सिद्धों की नामावली दी है। सिद्धों के नाम के पीछे 'पा' (पाद) शब्द सम्मान का द्योतक है इनकी रचनाओं की भाषा पूर्वी अपभ्रंश है। सरहपा, शबरपा लूईपा, दारिकपा, कण्हपा आदि इसके प्रमुख सिद्ध माने जाते हैं।

सरहपा सिद्धों में सर्वप्रथम हैं। राहुल सांकृत्यायन ने इनका समय 760 ई. माना है। राहुल भद्र तथा सरोज वज्र इनके नाम हैं। 'दोहाकोश' विशेष प्रसिद्ध है। इन्होंने चर्या-गीतों की भी रचना की है। रहस्यवाद, पाखण्डों का खण्डन, गुरुमहिमा, सहज-मार्ग आदि इनकी कविता के विषय हैं। शबरपा सरहपा के शिष्य थे। लूईपा शबरपा के शिष्य थे। राहुल ने इनके सात ग्रन्थों का संकेत किया है। इन्होंने इन्द्रिय एवं चित्तनिग्रह आदि का उपदेश रहस्यमयी भाषा में दिया है। विद्या की दृष्टि से कण्हपा सबसे बड़े सिद्ध माने जाते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सिद्धों की वाणी को सैद्धान्तिक बतलाते हुए उसे काव्य-परिधि से बाहर निकाल दिया है। ऐसा करना समुचित नहीं। सिद्धों ने अपने विचारों को जनसाधारण में प्रसारित करने के लिए जनसाधारण की भाषा को कविता का माध्यम बनाया है रहस्यात्मक भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक भाषा के माध्यम से होने के कारण अनेकत्र उनकी भाषा का जटिल एवं अस्पष्ट रूप भी मिलता है। सिद्धों की इस भाषा को 'संधा भाषा' कहा जाता है।

सिद्ध-साहित्य की परम्परा पर विचार करने से पहले सिद्ध व सिद्ध-साहित्य से परिचित होना आवश्यक है। महात्मा बुद्ध ने जिस बौद्ध धर्म की स्थापना की थी, उसने उनके काल में अत्यधिक उन्नति की। परन्तु कालान्तर में यह दो शाखाओं में बंट गया- महायान और हीनयान। उत्तरी भारत में धीरे-धीरे वैष्णव धर्म व भक्ति का प्रसार होता रहा था। शंकराचार्य, कुमारिल भट्ट जैसे महापुरुषों के प्रभाव से बौद्ध धर्म को अत्यधिक हानि उठानी पड़ी। इसके बंटने का एक दूसरा कारण यह भी था कि इस काल तक आते-आते महायान शाखा में भी अनेक विकृतियां उत्पन्न हो चुकी थीं। अन्तत: बौद्ध धर्म की महायान शाखा भी पुन: दो भागों में विभाजित हो गई-वज्रयान तथा सहजयान। ये बौद्ध उपासक जादू, टोना टोटका आदि के सिद्धि प्राप्त करना चाहते थे। अत: वे **सिद्ध** कहलाए। **'श्रीपर्वत'** इन सिद्धों का मुख्य केन्द्र था।

इन सिद्धों ने अपने विचारों, मतों आदि को जनसाधारण तक पहुंचाने के लिए तत्कालीन युग में प्रचलित जनसामान्य भाषा का प्रयोग किया और उसी भाषा में अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तों, विचारधारा आदि को लिपिबद्ध कराया। चूंकि वे सिद्ध वाद्य-पूजन, जाति-पाति, तीर्थाटन आदि का विरोध करते थे और उन्होंने उसके स्थान पर अनेक रूपकों द्वारायोग-साधना के तत्वों का निरुपण किया। उन्होंने अपने सम्प्रदाय के नियमों, सिद्धांतों का दिग्दर्शन कराने के लिए जिस साहित्य का निर्माण किया उसे ही **'सिद्ध साहित्य'** कहा जाता है। चर्चापद, योगचर्या, डोम्बि गीतिका आदि सिद्ध-साहित्य के प्रमुख ग्रंथ हैं।

सिद्धों की संख्या चौरासी मानी जाती है। जिनमें लुईपा, शबरपा, सरहपा, कण्हपा, जालंधरपा, कपालपा आदि प्रमुख हैं। इन सिद्धों ने अपने रचनाओं में योग-साधना के द्वारा अन्तकरण की शुद्धि आदि पर बल दिया, रूढ़ियों एवं ब्राह्माचारों का विरोध किया। परन्तु इसके साथ-साथ उन्होंने उपभोगवाद व तांत्रिक-साधना के रूप में मद्य-मैथुन का सेवन भी स्वीकार किया। उन्होंने निर्वाण के सुख को सहवास-सुख के समान बताया। सिद्धि प्राप्त करने के लिए किसी स्त्री (जिसे वे शक्ति-योगिनी या महा मुद्रा कहते थे) का योग या सेवन भी आवश्यक था। रहस्यवाद तो इनकी मूल प्रवृत्ति थी। सिद्ध-साहित्य की प्रवृत्तियों को निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है-

1. पाखंड, रूढ़ियों एवं ब्राह्माचारों का खण्डन- सिद्धों ने समाज में प्रचलित पाखंड, आडम्बर, रूढ़ि, ब्राह्माचार आदि का विरोध किया है। डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते हैं, ''निराशावाद के भीतर से आशावाद का संदेश देना, संसार की क्षणिकता में उसके वैचित्र्य का इन्द्रधनुषी चित्र खींचना इन सिद्धों की कविता का गुण था और उनका आदर्श था-जीवन की भयानक वास्तविकता की अग्नि से निकलकर मनुष्य को 'महासुख' के शीतल सरोवर में अपाहच करना।'' उदाहरण के लिए सरहपाद की निम्न पंक्तियाँ देखिए जिनमें वे पंडितों के शास्त्र-ज्ञान का विरोध करते हैं-

पंडित सअल सत वक्खाणई

दै दहि बुद्ध बसंत न जाणइ।

अमणागमण बातेन दिखडिय,

तोवि णिज्जइ भगइ हॅउ पंडिय।।

इस प्रकार सिद्धों ने ब्रह्म, ईश्वर, जाति-पाति, वेद, यज्ञ आदि का खण्डन किया है क्योंकि उनकी दृष्टि में ये सभी पखण्ड ऐसी बंधी-बंधाई लीक पर चलकर किसी की मुक्ति नहीं हो सकती।

2. रहस्य-भावना- सिद्धों ने आत्मा एवं परमात्मा के मिलन के लिए अनेक प्रतीकों यह है कि आध्यात्मिक व आत्मिक अनुभवों को सीधे, सरल, स्पष्ट शब्दों में तथा व्यावहारिक भाषा में व्यक्त नहीं किया जा सकता। रहस्य को अनुभूति अन्य अनुभवों से बिल्कुल भिन्न है, अत: इसे अभिव्यक्त करने के लिए सिद्धों में उलटबासियों व प्रतीकों का अधिक प्रयोग किया है। यहां पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इन उलटबासियों व प्रतीकों का प्रयोग योग-साधना के अंगों के अनुरूप ही हुआ है। यथा-

विशि अंधारी मूसा करअ अचारा।

अमिअ-भखअ करण अहारा।।

मार रे जोइया! मूसा पवना।

जूण तुटइ अवणा-गवणा।।

भग बिन्दारअ मुसा खनअ गाती।

चंचल मूसा कलियाँ नाशक थाती।

3. अन्तर्मुखी साधना पर बल- सिद्धों ने जहाँ पाखण्ड, मूर्ति-पूजा, जाति-पाति, वेद, ब्राह्माचार आदि का विरोध किया है, वहीं वे मनुष्य को अन्तर्मुखी-साधना अपनाने का भी आह्वान करते हैं। अन्तर्मुखी-साधना के लिए शरीर की शुद्धि आवश्यक है। उनके अनुसार मनुष्य के शरीर में जो सहस्रार व कुण्डलिनी है, वही वास्तव में शिव और शक्ति है। उदाहरण के लिए विरुपा की बारुणी प्रेरित अन्तर्मुखी-साधना की पद्धति को देखिए-

सहजे थिर करि वारुणी साथ।

अजरामर होइ दिट काँध।।

दशमि दुआरत चिह्न देखइआ।

आइल गराहक अपणे बिहआ।।

चउशठि घड़िए देर पसारा।

पइठल गराहक नहि निसारा।।

4. तांत्रिक साधन में मद्य-मैथुन का उपभाग- सिद्ध साहित्य में मद्य-मैथुन के उपभोग का समावेश किया गया है। तांत्रिक साधना के अंतिम चरणों में तो 'महासुखवाद' ने 'सहवास-सुख' का ही रूप धारण कर लिया था। गुह्य-समाज की स्थापना के साथ-साथ इन सिद्धों ने मदिरा व मैथुन की अनिवार्यता को स्वीकार कर लिया गया। अब सिद्धि की प्राप्ति के लिए किसी योगिनी का साहचर्य आवश्यक हो गया। इन तांत्रिक सिद्धों की साधनाओं में डोमिनी,

रजकी, महामुद्रा आदि के नाम ऊँच-नीच वर्ग की स्त्री के साथ व्याभिचार किया जाता था। उदाहरण के लिए सिद्ध कण्डपा अपनी कुण्डलिनी को जाग्रत करने के लिए डोमिनी का आह्वान करते हैं-

नगर बाहिरे डोंबी तोहरि कुड़िया छइ। छोई जाद सो बाम्ह नाड़िया॥

'आलो डोंचि! तोए सम करिब म सांग। निधिण कण्ह कपाली जोड़ लाग॥

एक्क सो परमा चौषट्टि पाखुड़ी। तढ़ि चढ़ि नाचअ डोंबी बापुड़ी॥

हालो डोंबि! तो पुछनि सद्भावे। अइससि जासि डोंबी काहरि नावे॥

5. गुरु की महत्ता का प्रतिपादन- सिद्धों ने गुरु की महत्ता को स्वीकार किया है। उनके अनुसार सहज सुख अथवा महासुख (निर्वाण) की प्राप्ति के लिए गुरु का होना अनिवार्य है। सद्गुरु के बिना साधक अपनी योग-साधना में सफल नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए डोम्मिपा की निम्न पंक्तियों में गुरु की महत्ता का वर्णन हुआ है-

गंगा जउना माझेर बहर नाइ।

तांहि बुड़िली मातंगि पोइआली ले पार करई॥

बाहुत डोम्बी बाह लो डोम्बी वाट भइलउछारा।

सदगुरु पाऊ पए जाइब पुणु जिणउरा॥

6. शांत एवं श्रृंगार-रस का प्राधान्य- चूंकि सिद्ध मूल रूप से साधक थे अत: उनकी रचनाओं में मुख्य रूप से शांत रस का परिपाक हुआ है। वे अपनी रचनाओं में उच्च-नीच के भेदभाव, ब्रह्मचारी, वाक्संयम, आन्तरिक शुद्धि आदि पर बल देते हैं। अत: उनकी रचनाओं में ऐसे स्थलों पर शांत-रस का निर्वाह हुआ है। यथा- वे कहते हैं गंगा, यमुना, प्रयाग आदि में स्नान करने से शरीर में पवित्रता नहीं आती, मन को पवित्र करने से ही तन पवित्र होता है-

एत्थु में सुरसरि जमुणा एत्थु ले गंगा साअक।

एत्थु पयाग वणारसि, एत्थु से चन्द्र दिवाअक।

परन्तु जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है कि सिद्धों ने तांत्रिक-साधना के अन्तर्गत नारी को शक्ति, महामुद्रा या डाकिनी कहकर उसके उपभोग को भी स्वीकारा है, अत: उनके काव्य में अनेक स्थानों पर दाम्पत्य-युग्मों की क्रीड़ा, उनके कार्य-व्यापार आदि का भी चित्रण हुआ है। उन्होंने प्रतीकों के द्वारा अपनी श्रृंगार-भावना को निरूपित किया है। यथा-

जिमिउ लोण विलिज्जइ पाणिएहि, तिमिधरणी लई चित्त।

समरस जाई तक्खणे, जई पुणु हो सब चित्त॥

7. उपभोगवादी दृष्टिकोण - सिद्धों ने अपने साहित्य में उपभोगवादी दृष्टिकोण का भी परिचय दिया है। उन्होंने बौद्ध धर्म के दु:खदायी व कष्ट कारण साधनों के स्थान पर सुख और भोग से युक्त जीवन को अपना ध्येय बताया है। उन्होंने न तो भोगों को महत्त्वहीन बताया है और न ही स्वाभाविक प्रवृत्तियों का दमन करने का संदेश दिया है। सिद्ध कण्हपा तो स्पष्ट कहते हैं- **''जब तक अपनी गृहिणी का उपभोग न करेगा, तब तक पंचवर्ण की स्त्रियों के साथ विहार क्या होगा।''**

8. शून्यवावद की प्रतिष्ठा- सिद्धों ने शैव और शाक्ततंत्र से प्रभावित होकर शून्यवाद की महत्ता को स्वीकारा तथा उसे अपने साहित्य में स्थान दिया है। उन्होंने शून्य को 'प्रज्ञा' के रूप में स्वीकार किया है। उनके मतानुसार शून्य चार प्रकार के हैं- शून्य, अतिशून्य, सर्वशून्य तथा महाशून्य। साधक अपनी कुण्डलिनी को जाग्रत कर इसी महाशून्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है। सिद्ध तिलोपा इसी महाशून्य की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं-

सहज महातरु तिलोए, ख-सम स्वभाव रे बाणत का कोए,

जिमि जल पाणिड टालिका भेड़ न जाऊ, तिन गण रअनारे समरसे गगन समाऊ।

9. भाषा एवं शैली– सिद्धों ने अपनी रचनाओं में मुख्यत: अवहट्ठ भाषा का प्रयोग किया है जिसे डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'संधा भाषा' भी कहा है। आचार्य शुक्ल ने सम्पूर्ण सिद्ध–साहित्य को 'अपभ्रंश–काव्य' की श्रेणी में सम्मिलित किया है। विभिन्न भाषाओं के जिन विद्वानों अथवा साहित्येतिहासकारों ने सिद्धों की प्रमुख रचनाओं को अपनी–अपनी भाषा की निधियां बनाने का प्रयास किया है उनमें बंगाली, उड़िया, आसामी आदि भाषाओं के विद्वान् प्रमुख हैं। परन्तु सच यह है कि सिद्ध–साहित्य की जिस भाषा में रचना हुई है, उसमें सक्रांतिकालीन आधुनिक आर्यभाषा के स्वरूप निहित हैं। इसी कारण इसमें सभी आधुनिक आर्यभाषाओं के प्रारम्भिक स्वरूप के दर्शन होते हैं। परन्तु उनकी रचनाएं अवहट्ठ भाषा में ही रचित माननी चाहिए।

सिद्धों ने अपनी अवहट्ठ भाषा में तत्कालीन युग में प्रचलित लोक भाषा के शब्दों के साथ–साथ अनेक पारिभाषिक एवं सांकेतिक शब्दों का भी प्रयोग किया है। इसमें प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों में नाद, पद्म, निर्वाण, सहज, नाड़ी आदि उल्लेखनीय हैं तो सांकेतिक शब्दावली में गंगा, यमुना, रवि, ससि आदि प्रमुख हैं।

सिद्ध–साहित्य में मुख्य रूप से गीति शैली का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त उनमें उपदेशात्मक, व्यंग्यात्मक आदि शैलियों का भी प्रयोग हुआ है। उनके काव्य में दोहा, चौपाई, सोरठा, अरिल्ल, रोला आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। अत: उनके साहित्य में प्रयुक्त छन्दों में विविधता देखने को मिलती है। परन्तु यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि उन्हें काव्यशास्त्रों के छन्द–विधानों का अक्षरश: पालन नहीं किया है। अत: उनके मात्रिक छन्दों में सही मात्राओं का प्रयोग तथा वार्णिक छन्दों में उचित वर्णों का प्रयोग नहीं हुआ है।

सिद्ध–साहित्य की भाषा प्रतीकात्मक है। उसमें गूढ़ भावों को प्रकट करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया गया है। सिद्धों ने अपनी भाषा को अलंकारों से सुसज्जित करने का प्रयास तो नहीं किया है, फिर भी उनकी काव्य भाषा अंत्यानुप्रास से युक्त है। कहीं–कहीं उपमा, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग भी हुआ है।

अत: संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सिद्ध–साहित्य मूलत: बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा से सम्बन्धित है जिसमें शून्यवाद को महत्व दिया गया है, सामाजिक कुरीतियों, पाखण्डों आदि पर प्रहार किया गया है, गुरु की महत्ता को स्वीकार किया गया है, अन्तर्साधना पर बल दिया गया है तथा तांत्रिक–साधना के अनुरूप मद्य–मैथुन को स्वीकार किया गया है। सिद्धों ने तत्कालीन युग की जनभाषा को अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है और उसमें पारिभाषिक व सांकेतिक शब्दावली का भी प्रयोग हुआ है।

• **नाथ–साहित्य** - बौद्धों की वज्रयानी शाखा से ही सम्बन्धित गोरखनाथ का 'नाथ पन्थ' है। नाथ–सम्प्रदाय ने सिद्धों के योग को तो ग्रहण किया परन्तु भोग का त्याज्य माना। इस सम्प्रदाय को मुख्य धर्म ही योगाभ्यास है। मत्सयेन्द्रनाथ (गोरखनाथ के गुरू) इस परम्परा के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। नाथ पन्थियों का मुख्य सम्प्रदाय गोरखनाथी योगियों का ही है। इन्हें 'कनफटा', 'बारहपंथी योगी' तथा 'दर्शन साधु' भी कहा जाता है।

गोरखनाथ की रचनाएं पद्य और गद्य दोनों में मिलती है। इनके नाम से हिन्दी में चालीस तथा संस्कृत में अट्ठाइस रचनाएं कहीं जाती है। डॉ. बड़थ्वाल ने 'गोरखवानी संग्रह' नाम से इनकी रचनाओं का संकलन किया है। गोरख की वाणी में साधना, नैतिकता, गुरु महिमा, संयम, पवित्रता, मांसादि का परित्याग आदि विषयों का प्रतिपादन हुआ है। गोरखनाथ की भाति चर्पटीनाथ ने भी योग–साधना पर बल दिया है। चर्पटीनाथ ने अपनी चटपटी वाणी में कोरे अपदेशों, भीख मांगकर जीने तथा अन्य पाखण्ड़ों का खण्डन किया है– 'हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के पूर्व नाथ मत ही सबसे प्रबल लोकधर्म था। परवर्ती काल में भक्ति की प्रचण्ड धारा में यद्यपि बहुत सी पुरानी स्मृतियां बह गई, परन्तु नाथ–पंथियों के विश्वास और साहित्य अपना अमिट चिह्न इन पर छोड़ गए हैं। कबीर, दादू, नानक आदि सन्तों के प्रवर्तित सम्प्रदाय पर उनके द्वारा लिखित और संगृहीत साहित्य पर नाथपंथी संप्रदाय का बड़ा प्रभाव है। कबीर आदि सन्तों के अनेक पद थोड़े–बहुत परिवर्तन के व पूर्ववर्ती नाथ–सिद्धों की रचना है।'

नाथ शब्द का अर्थ है स्वामी अथवा पति। वैसे नाथ शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। यूं तो महात्मा बुद्ध के लिए भी नाथ शब्द का प्रयोग किया जाता है। पाशुपत शैव मत में शिव के लिए नाथ शब्द का प्रयोग हुआ है। परन्तु आदिकाल में नाथ शब्द का प्रयोग उस धार्मिक सम्प्रदाय के लिए हुआ जिसका विकास बौद्ध धर्म में हुआ। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने स्वीकार किया है कि आदिनाथ स्वयं शिव ही है। इसका मतलब यह हुआ कि नाथ सम्प्रदाय के अधिकांश लोग मूलत: शैव थे और उनके उपास्य देवता शिव हैं। आदिनाथ अर्थात् शिव के पश्चात् मत्स्येन्द्र नाथ का नाम आता है जिनके नाम से पांच रचनाओं का भी उल्लेख किया गया है। इसी परम्परा में गोरखनाथ नाथ सम्प्रदाय के सर्वश्रेष्ठ योग माने जा सकते हैं।

नाथ साहित्य की परम्परा का आरम्भ कब और कहां से हुआ, इस प्रश्न को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद देखा जा सकता है। राहुल सांस्कृत्यायन ने नाथ पंथ को सिद्ध परम्परा का एक विकसित रूप माना है। लेकिन कुछ अन्य विद्वानों का विचार है कि व्रजयान सिद्ध वामाचार की ओर अग्रसर हुए तो उसकी प्रतिक्रिया के रूप में नाथ पंथ का विकास हुआ। लेकिन यह भी एक सत्य है कि सिद्ध मत और नाथ मत दोनों आपस में सम्बन्धित हैं और दोनों ने योग साधना के मार्ग को अपनाया। इस सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा भी है–नाथ पंथ या नाथ सम्प्रदाय के सिद्ध मत, सिद्ध मार्ग, योग मार्ग, योग सम्प्रदाय, अवधूत मत एवम् अवधूत सम्प्रदाय नाम भी प्रसिद्ध है। लेकिन हमें इसका अर्थ यह नहीं निकालना चाहिए कि सिद्ध मत और नाथ मत एक ही हैं। सत्य तो यह है कि जब सिद्धों में अनेक प्रकार के विकास उत्पन्न हो गए और वे मद्य, मांस और मैथुन को ही महत्त्व देने लगे तो प्रतिक्रियास्वरूप नाथ मत का उदय हुआ, क्योंकि नाथों में इन्द्रिय निग्रह, ब्रह्मचर्य, सदाचार, कठोर साध ना आदि पर विशेष बल दिया गया है।

नाथ परम्परा– नाथों में सर्वाधिक प्रमुख कवि गोरखनाथ हैं। इन्होंने सिद्धों के वामाचार का संस्कार किया। ईश्वर प्राप्ति के लिए उन्होंने पतंजलि के हठयोग को अपनाया। ये बड़े संयमी व्यक्ति थे और ओजस्वी भाषा द्वारा जनसाधारण को प्रभावित करते थे। इनके जन्म काल के बारे में पर्याप्त मतभेद हैं। आचार्य शुक्ल और डॉ. राजकुमार वर्मा ने इनका काल 13वीं शताब्दी बताया है। नवीन शोधों से भी पता चलता है कि गोरखनाथ का रचनाकाल 13वीं शताब्दी ही था। इनके ग्रन्थों की संख्या 40 के लगभग मानी गई है। **'अवधूतगीता, गोरक्षगीता, गोरक्षशास्त्र, ज्ञानप्रकाश शतक, नाड़ी ज्ञान प्रदीपिका, योगचिन्तामणि, दति, हठ्योग और हठसंहिता'** आदि उनकी रचनाएं हैं। इस परम्परा के अन्य आचार्यों में नागार्जुन, चौकड़नाथ, चर्पटी नाथ, गोपीचन्द्र, अजयपाल, विरूपा, चोलीनाथ, पखनाथ, हेठनाथ, नागनाथ, धर्मनाथ, लक्ष्मणनाथ, गरीबनाथ आदि के नाम आदर से लिए जाते हैं।

चौरासी सिद्धों के समान नवनाथ भी प्रसिद्ध हैं। नवनाथों में **मत्स्येन्द्रनाथ, जालन्धरनाथ, गोरखनाथ, चौरंगीनाथ, कणेरीनाथ, चरपटीनाथ, भर्तृहरिनाथ, कन्थड़ीनाथ** और **गहनीनाथ** आदि के नाम गिनवाए जा सकते हैं। नाथों की रचनाओं का सम्पादन डॉ. पीताम्बर दत्त बडथ्वाल के प्रयलों से 1942 ई. में हुआ। गोरखनाथ ही नाथ सम्प्रदाय के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और समर्थ विद्वान माने जा सकते हैं। **डॉ. राजकुमार वर्मा** ने उनके बारे में लिखा भी है– **''गोरखनाथ ने नाथ सम्प्रदाय को जिस आन्दोलन का रूप दिया, वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ है। उसमें जहां एक ओर ईश्वरवाद की निश्चित धारणा उपस्थित की गई है, वहां दूसरी ओर विकृत करने वाली समस्त परम्परागत रूढ़ियों पर भी आघात किया। जीवन को अधिक-से-अधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए सहज मार्ग की व्यवस्था करने का शक्तिशाली प्रयोग गोरखनाथ ने किया।''** नाथ साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियां/विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. हठयोग साधना पर बल– नाथ पंथियों की हठयोग साधना बहुत कुछ पतंजलि के योग दर्शन से मिलती-जुलती है। काया साधन के अन्तर्गत वायु, निरोध और प्राणायाम करने की जो प्रक्रिया नाथों द्वारा अपनाई गई, वह भी हठयोग से ही सम्बन्धित है। इस साधना में सहज समाधि या शून्य समाधि की चर्चा की जाती है। नाथ योगी अलख जगाकर षट्चक्रों या अष्टचक्रों का बोध प्राप्त करते थे। वे प्राणवायु को उर्ध्वगामी करके इस प्रक्रिया को पूरा करते थे।

''उलटिया पवनं षट्चक्र बोधिया,

तांते लोहे सोषिया पांणी।

चन्द्र सूर दाऊ निज धरि राष्या,

ऐसा अलष विनांगणी॥''

हठयोगी अपने हठयोग के बल पर ही प्राणायाम की प्रक्रिया को अपनाकर कुण्डलिनी को जागृत करते थे। इस प्रकार वे सहज दशा को प्राप्त करते थे। इनकी रचनाओं में यत्र-तत्र इड़ा, चन्द्र, सुषुम्ना आदि की चर्चा की गई है।

2. शून्यवाद में विश्वास- नाथ पंथी ईश्वर को शून्य मानते हैं। इन्होंने शून्य को परम तत्त्व, निरंजन और परम शिव भी कहा है। नाथ योगी इस शून्य साधना को प्रज्ञा, उपाय, वज्र तथा सहज मार्ग द्वारा पूरा करता है। इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम इड़ा, पिंगला को मिलाकर कुण्डलिनी को जगाया जाता है। तत्पश्चात् षट्चक्रों को भेद कर आज्ञाचक्र में पहुंचा जाता है। इस स्थिति को पाकर योगी एकाग्र हो जाता है और वह सहस्त्रास्र चक्र में प्रवेश करके सहज दशा को पा लेता है। यही सहज दशा ही महादशा कहलाती है। जहाँ पहुंचकर जीवन और शून्य की द्वैतता समाप्त हो जाती है और आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है। गोरखनाथ एक स्थल पर कहते भी हैं-

'बसती न सुन्यं सुन्यं न बसती अगम अगोचर ऐसा।

गगन सिषर महिं बालक बोले ताका नॉव धरहुगे कैसा॥''

3. शैव मत का प्रतिपादन- नाथ पंथियों का वज्रयानी सम्प्रदाय के सिद्धों से ही विकास हुआ है। अतः उन्हें शैव मत विरासत में मिला। नाथों के विचारानुसार जब परम शिव की सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा हुई तब शिव और शक्ति नामक दो तत्त्व उत्पन्न हुए। शिव का धर्म ही शक्ति है। शिव-शक्ति कभी अलग नहीं रह सकते। इसलिए मत्स्येन्द्रनाथ ने कहा कि शिव के बिना शक्ति और शक्ति के बिना शिव का कोई महत्त्व नहीं। नाथ सम्प्रदाय में शक्ति के तीन रूपों की चर्चा की गई है। ये हैं- चित्त शक्ति, माया शक्ति और जीव शक्ति। माया शक्ति जब चित्त शक्ति को दूषित कर देती है तब यह जीव संसार में उलझकर रह जाता है। सृष्टि की उत्पत्ति भी शिव और शक्ति के मिलन से हुई है। परन्तु शिव संसार का निर्विकार तत्त्व है। जब यह शक्ति चित्त रूप में स्थित हो जाती है तब उसमें सृजन और रक्षा की प्रक्रिया क्रियाशील हो जाती है। गोरखनाथ ने शिव शक्ति के संयोग को परा, ज्ञान, इच्छा, क्रिया और कुण्डलिनी के रूप में ग्रहण किया। वे कहते भी हैं

1. **'सक्ति रूपी रज आछै, शिवरूपी व्यंद।**
   बारह कला रव आछै, सोलह कला वंद॥'
2. **'चारि कला रवि की, जो ससि धरि आवे।**
   तो शिव शक्ति संमि हौवे, अन्त कोई न पावे।''

4. रूढ़ियों और बाह्य आडम्बरों का खण्डन- यद्यपि नाथ योगियों ने हठ योग साधना तथा शून्यवाद की प्रतिष्ठा की स्थापना की है, लेकिन उन्होंने बाह्य आडम्बरों तथा पाखण्डों का डटकर विरोध किया है। इन योगी कवियों का विचार कि यदि मानव का मन पवित्र है तो वह योग साधना के द्वारा सहज दशा को पा सकता है। इसलिए नाथ पंथी तीर्थ, व्रत, मूर्ति पूजा, उपवास आदि का खण्डन करते हैं। उनका तो स्पष्ट कहना है कि अड़सठ तीर्थ मानव के शरीर में ही निवास करते हैं। अतः तीर्थ यात्रा करना व्यर्थ है।

पंथि चलै चलि पवना तूटै, नाद बिंदु अरुझाई।

घट ही भीतरि अठसठ तीरव, कहां भ्रमै रे भाई॥

नाथों ने वेद, कुरान, मन्दिर, मस्जिद आदि का भी विरोध किया है। ये लोग केवल निर्गुण और निराकार ब्रह्म की उपासना करते थे। इसके साथ-साथ उन्होंने सहज और सरल जीवन-यापन का भी समर्थन किया है।

5. गुरु का महत्त्व – नाथ योगियों ने ज्ञान प्राप्ति के लिए गुरु को नितान्त आवश्यक माना है। लेकिन गोरखनाथ ने सच्चे गुरु को अपनाने की सलाह दी है। गुरु वह है जो स्वयं प्रकाश्य है। अर्थात् यदि गुरु को स्वयं ज्ञान नहीं होगा तो वह शिष्य का क्या मार्गदर्शन करेगा। गोरखनाथ के अनुसार सच्चा गुरु कोई बिरला ही होता है। उनका कथन है– **अधिक तत्त गुरु बोलिए, हीन तत्त से चेला।**

उनका यह भी कहना है कि गुरु के बिना हमें जो ज्ञान मिलता है, वह अधूरा ही होता है। वे स्पष्ट घोषणा करते है कि गुरु के बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। गोरखवाणी में वे कहते भी हैं–

नाथ निरंजन आरती गाऊं।

गुरुदयाल आज्ञा जो पाऊं।।

6. मद्य तथा मांस के सेवन का बहिष्कार – जहां सिद्ध कवियों ने मद्य, मांस आदि के सेवन पर अधिक बल दिया था, वहां नाथ पंथ योगियों ने मद्य, मांस आदि के सेवन का विरोध किया है। नाथ पंथियों का विचार है कि मांस और मदिरा का सेवन करने से मानव में तामसी वृत्तियां उत्पन्न होती हैं। फलस्वरूप मानव काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या आदि से ग्रस्त हो जाता है। ये विभिन्न प्रकार के मनोविकार योगी की साधना में बाधा का काम करते हैं। इसलिए सच्चे साधक को मांस, मदिरा से दूर ही रहना चाहिए। गोरखनाथ ने अवधूत योगियों की इसलिए निन्दा की है क्योंकि वे मांस, मदिरा का निरन्तर सेवन करते हैं। एक स्थल पर वे कहते भी हैं –

'अवधू मांस भषन्त दया धरम का नास।

मद पीयत तहां प्राणं निरास।।

भांगि भषंत ग्यानं ध्यानं षेवतं।

जम दरबारी ते प्राणी रोवतं।।

7. भाव रस– नाथ पंथी योगी होने के साथ–साथ वैरागी भी थे। इसलिए इनकी कविता में निर्वेद भाव होने के कारण शान्त रस का परिपाक देखा जा सकता है। उनके विचारानुसार गृहस्थ लोग गृहस्थ आश्रम में फंसे हुए दयनीय जीवन होते हैं। उनका स्पष्ट कहना है कि गृहस्थी का ज्ञान, नशेबाज का ध्यान, बूचे का कान, वेश्या का मान और वैरागी को माया को खोजना व्यर्थ है। गोरखनाथ लिखते भी हैं–

'गिरही को ग्यानं अमली को ध्यान।

बूचा को कान, बेस्या को मान।।

वैरागी अर माया स्यूं हाथ।

या पांचों का एकै साथ।।

यद्यपि नाथ साहित्य में कुछ स्थलों पर श्रृंगार रस का भी परिपाक हुआ है। लेकिन इन कवियों ने शान्त रस को ही सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है।

8. सदाचार और नैतिकता पर बल– नाथ पंथी योगियों ने सहज एवं सरल जीवन पद्धति को अपनाने की सलाह दी है। वे कथनी में विश्वास नहीं करते थे, करनी में विश्वास करते थे। उनके विचारानुसार शीलवान ही श्रेष्ठ योगी होता है। सच्चे योगी को अहंकार और वाद–विवाद के झमेले में नहीं पड़ना चाहिए। काम, क्रोध, लोभ, मोह को छोड़कर चित्त को सुदृढ़ करना चाहिए तथा सुख–दुःख में एक समान रहना चाहिए। मद्य, मांस का सेवन नहीं करना चाहिए और सांसारिकता से दूर रहना चाहिए, इसी प्रकार कठोर ब्रह्मचर्य, वाणी का संयम, ज्ञान में विश्वास, मानसिकता शुद्धता आदि नाथ योगी के कुछ अन्य उल्लेखनीय गुण हैं। नाथों ने नैतिकता को भी आवश्यक माना है। उनका विचार था कि नैतिकता के बिना ब्रह्म की साधना नहीं हो सकती। एक स्थल पर गोरखनाथ लिखते भी हैं–

'हबकि न बोलिबा ठबकि न चलिबा धीरे-धरिबा का पांव।

गरब न करिबा सहज रहिबा भणत गोरवं रांव॥'

9. नारी के प्रति उपेक्षा भाव- सिद्धों ने अपने मठों में हीन जाति की नारियाँ रखी हुई थीं। वे नारी को योगिनी अथवा महामुद्रा कहकर उसे योग साधना का अनिवार्य अंग मानते थे। लेकिन सच्चाई यह है कि वे अपनी काम वासना को तृप्त कर रहे थे। गोरखनाथ ने सिद्धों के इस नैतिक पतन को देखा। इसलिए उन्होंने नाथ योगियों को नारी से दूर रहने का उपदेश दिया। नाथ पंथियों ने नारी को माया कहा और उसकी उपेक्षा की। उन्होंने नारी को कामिनी कहकर उसकी निंदा की और उससे दूर रहने की सलाह दी। नाथ पंथियों का विचार है कि नारी योग साधना में बाधा का काम करती है, यही कारण है कि नाथ योगियों ने ब्रह्मचर्य, संयम इन्द्रय निग्रह पर विशेष बल दिया। नाथ पंथी कठोर परीक्षा लेकर ही किसी व्यक्ति को अपने मत में दीक्षा देते थे। नारी निंदा करते हुए गोरखनाथ ने लिखा भी है -

चरपट कहे सुणों रे अवधू, कामणि संग न कीजै।

जिद बिन्द नौ नाड़ी सोषे, दिन-दिन कार्य छीजै॥

10. भाषा-शैली- नाथ साहित्य में प्रयुक्त भाषा को संध्या भाषा कहा जाता है। लेकिन यह भाषा तत्कालीन सधुक्कड़ी भाषा के अधिक निकट है, क्योंकि इसमें प्राचीन पश्चिमी हिन्दी की बोलियां का अत्यधिक मिश्रण हुआ है। नाथ योगी जनसाधारण में अत्यधिक लोकप्रिय थे। अत: उन्होंने लोगों की भाषा में ही अपने मत का प्रचार-प्रसार किया। उनको भाषा में अवधी, भोजपुरी, राजस्थानी, पंजाबी, मगही आदि बोलियों के शब्दों का पर्याप्त मिश्रण हुआ है। सिद्धों के समान इन्होंने भी अपनी भाषा में नाद, बिन्दु, इड़ा, पिंगला, शून्य, सहज, सुरति आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है। नाथ योगियों की भाषा के बारें में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते भी हैं- **''उनकी भाषा देशी भाषा-मिश्रित अपभ्रंश अर्थात् पुरानी काव्यभाषा है। उन्होंने भरसक उसी सर्व सामान्य व्यापक काव्य-भाषा में लिखा है, जो गुजरात, राजपूताना और मण्डल से लेकर बिहार तक लिखने-पढ़ने की भाषा थी।''**

नाथों ने प्राय: प्रतीकमूलक, रहस्यात्मक तथा सांकेतिक शब्दों का अधिक प्रयोग किया है। फलस्वरूप इनके काव्य उलटबासियों का प्रयोग भी देखा जा सकता है। नाथों के काव्य में गाय यदि इन्द्रिय का प्रतीक है तो मृग ब्रह्म में आसक्त प्रतीक है। इस प्रकार नागिन का प्रयोग कामिनी के लिए हुआ है, मेघ का करुणा के लिए, हंस का आत्मा के लिए मीन का वायु के लिए। चूंकि नाथ पंथी सरल और स्पष्ट ढंग से बात कहने के आदि थे, इसलिए उनकी काव्य रचनाअ में अभिधा शक्ति का ही अधिक प्रयोग देखा गया है।

11. छन्द और अलंकार - नाथ साहित्य में श्लेष, वक्रोक्ति, अनुप्रास आदि शब्दालंकारों का प्रयोग देखा जा सकता है। लेकिन अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सांगरूपक, प्रतीप, विरोधाभास आदि अलंकारों का सफल प्रयोग हुआ है कहीं-कहीं उलटबासियों तथा विरोधमूलक अलंकारों के कारण इनका काव्य बड़ा ही मनोहारी बन गया है। एक उदाहरण देखिए-

''ऊजड़ बेड़ा नगर मझारी, तालि गागरि ऊपर पनिहारी।

कामिनी जलै अंगीठी पापै, बिचि बैंसन्दर थर-थर कांपैं॥

नाथों ने भी सिद्धों के समान गीति शैली का अधिक प्रयोग किया है। उनके भी काव्यों में दोहा, चौपाई, सोरठा, रोला आदि छन्दों का प्रयोग देखा जा सकता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि नाथ मत का उद्‌भव विकारग्रस्त सिद्धों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। इनकी कुछ बातें तो सिद्धों से मिलती-जुलती हैं। लेकिन सिद्धों की अपेक्षा नाथों को जनता में अधिक सम्मान प्राप्त हुआ। कारण यह है कि मत्स्येन्द्रनाथ, जालन्धरनाथ, गोरखनाथ तथा भर्तृहरिनाथ जैसे नाथ पंथी योगियों ने एक आन्दोलन के रूप में नाथ पंथ को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। साथ ही उन्होंने धर्म को विकृत करने वाली परम्परागत रूढ़ियों, संस्कारों, बाह्य आडम्बरों तथा अधिक प्रभाव देखा जा सकता है।

• **रासो काव्य**

रासो शब्द का अर्थ एवं स्वरूप– रासो काव्य परम्परा को समझने से पूर्व हमें सर्वप्रथम 'रासो' शब्द का व्युत्पत्ति पर विचार करना होगा। रासो के अर्थ और स्वरूप को समझे बिना हम इस काव्य परम्परा का सही मूल्यांकन नहीं कर पायेंगे। फ्रेन्च विद्वान गार्सा–द–ताँसी ने 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति राजसूय से मानी है। उनका विचार है कि पृथ्वीराज रासो की कुछ प्राचीन प्रतिलिपियों पर 'प्रियुराज–राजसु' लिखा हुआ है। राजसूय से बिगड़कर ही 'राजसु' शब्द बना है। लेकिन यह मत अधिक तर्कसंगत नहीं लगता। कुछ विद्वानों ने रासो शब्द का संबंध रहस्य तथा रसायन से जोड़ने का प्रयत्न किया है।

रासो काव्य– रासो काव्य परम्परा को समझने से पूर्व हमें सर्वप्रथम 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करना होगा। रासो के अर्थ और स्वरूप को समझे बिना हम इस काव्य परम्परा का सही मूल्यांकन नहीं कर पाएंगे। विद्वान **गार्सा-द-तॉसी** ने 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति **राजसूय** से मानी है। उनका विचार है कि पृथ्वीराज रासो की कुछ प्राचीन प्रतिलिपियों पर '**प्रियुराज-राजसु**' लिखा हुआ है। इस राजसूय से बिगड़कर ही '**राजसु**' शब्द बना है। लेकिन यह शब्द अधिक तर्कसंगत नहीं लगता। कुछ विद्वानों ने रासो शब्द का संबंध रहस्य तथा रसायन से जोड़ने का प्रयत्न किया आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने '**रासो**' शब्द का सम्बन्ध रहस्य तथा '**रासायन**' से माना है। इधर चन्द्रबलि पाण्डेय ने '**रासो**' शब्द की व्युत्पत्ति रासक से मानी है, जो कि रूपक का ही एक भेद है। इस सम्बन्ध में राम बिहारी शुक्ल और भगीरथ मिश्र ने स्वीकार किया है– **'पहले गेय काव्य को रासक कहते थे पीछे इसका प्रयोग चरित्र काव्य और कथा काव्य के लिए होने लगा। रासो नाम के चरित काव्यों में कुछ का प्रयोग गाने के लिए अधिकतर होने लगा।'** पण्डित हरिप्रसाद शास्त्री तथा विंध्येश्वरी प्रसाद पाठक ने '**रासो**' शब्द की उत्पत्ति राजयश से मानी है। इस विषय में हमें डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत अधिक तकपूर्ण प्रतीत होता हैं उनका विचार है कि रासक एक छन्द भी है और काव्य भेद भी। काव्य के इस छंद में अनेक प्रकार के छंदों का प्रयोग होता था। उदाहरण के रूप में पृथ्वीराज रासो में अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। अत: आदिकाल वीरगाथाओं में चारण कवियों ने चरित काव्यों के लिए 'रासो' शब्द का ही प्रयोग किया है।

रासो काव्य परंपरा– रासो काव्य का श्रीगणेश किस काल से हुआ, इसके बारे में स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं होते। अन्य शब्दों में कह सकते हैं कि रासो परंपरा का आदि ग्रंथ अभी तक अप्राप्य है। फिर भी रासो, साहित्य के अंतर्गत जिन रचनाओं को समाहित किया जाता है उनके कवियों के बारे में थोड़ी बहुत सूचना उपलब्ध है, लेकिन जहां तक इन रचनाओं के पाठ, काल और तिथियों का प्रश्न है यह आज भी विवादास्पद हैं। रासो काव्य को संदिग्ध कहना अधिक तर्कसंगत होगा। रासो काव्य परंपरा में दो की रचनाएं उपलब्ध होती हैं–प्रथम कोटि की रचनाएं इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन की घटनाओं से सम्बन्धित है। यथा पृथ्वीराज रासो तथा दूसरी कोटि की रचनाएं लोक प्रचलित कथाओं पर आधारित है। जैसे संदेश रासक। लेकिन ऐतिहासिक कही जाने वाली रचनाओं में भी ऐतिहासिक और पौराणिक घटनाओं का विचित्र मिश्रण कर दिया गया है जिससे उनकी ऐतिहासिकता सन्देहास्पद बन गई है। विद्वानों का एक ऐसा वर्ग भी है जो दलपित विजय को काव्य परंपरा का प्रथम कवि घोषित करते हैं और उनकी काव्य रचना खुमान रासों को इस परंपरा का प्रथम ग्रंथ स्वीकार करते हैं। आचार्य शुक्ल तथा डॉ. नगेंद्र ने खुमान रासो का रचनाकाल नौंवीं शताब्दी माना है। रासो काव्य परंपरा के ग्रंथ निम्नलिखित है–

1. खुमान रासो– इसका रचयिता नौंवी शताब्दी का दलपति विजय माना जाता है। काव्य–सौष्ठव की दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण रचना मानी गई है। इस विशालकाय ग्रन्थ में डिंगल भाषा का प्रयोग है तथा इसके छन्दों की संख्या 5000 है। यही नहीं, इसमें वीर रस के साथ–साथ श्रृंगार रस का भी प्रयोग हुआ है। यद्यपि आचार्य शुक्ल ने सर्वप्रथम इस ग्रन्थ का उल्लेख किया लेकिन उन्होंने स्वयं इसकी प्रामाणिकता के बारे में सन्देह व्यक्त किया है। इसके रचयिता को लेकर भी विवाद बना हुआ है। यह अभी तक निर्णय नहीं हो पाया कि खुमान रासो के रचयिता ब्रह्म भट्ट हैं अथवा

दलपति विजय। कुछ विद्वान दलपति विजय को ही इसका रचयिता मानते हैं, क्योंकि इस काव्य ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतिलिपियों पर दलपति विजय का नाम ही लिखा हुआ है। इस काव्य रचना में बप्पा से लेकर राजसिंह तक की राजाओं की वीरता का वर्णन किया गया है। इसमें राजाओं के युद्धों विवाह आदि के साथ-साथ नायिका भेद, षट्ऋतु वर्णन आदि का भी प्रभावशाली वर्णन किया गया है। इसका रचना काल संवत 1730 से संवत 1760 के मध्य स्वीकार किया गया है। लेकिन यह उचित फिर भी इसमें दोहा, सवैया, कवित्त तोटक आदि के छन्दों का सफल प्रयोग देखा जा सकता है। प्रस्तुत श्रृंगार रस का एक उदाहरणं देखिए

''पिउ चितौड़ न आविऊ, सावण पहिली तीज।

जोवै बाट विरहिणी, खिण खिण अणवै खीज॥

संदेश पिउ साहिबा, पाछो फिरिय न देह।

पंछी घाल्लया पीज्जरे, घूटण रो संदेह॥''

2. बीसलदेव रासो- यह रासो काव्य परंपरा का एक महत्वपूर्ण काव्य ग्रंथ है। इसका रचनाकाल संवत् 1272 स्वीकार किया गया है। लेकिन कुछ विद्वान इसका रचनाकाल संवत् 1212 से 1220 तक मानते हैं। वे बीसलदेव के शिलालेखों को इसका मुख्य आधार मानते हैं।

''बारह सै बहोत्तरा मंझारि जेठ बदी नवमी बुधवारि।

नाल्ह रसायण आरंभह, सारठा तूठी ब्रह्मकुमारी॥''

इसके रचनाकार का नाम नरपति नाल्ह है। सच्चाई तो यह है कि यह वीर काव्य न होकर एक काव्य है जिसमें विवाह के पश्चात् अपनी पत्नी के प्रेम को विकसित होते दिखाया गया है। प्रस्तुत काव्य रचना चार खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में राजमति और बीसलदेव के विवाह का वर्णन है। दूसरे खण्ड में राजमति और बीसलदेव के वाद-विवाद तथा उड़ीसा पर हुए आक्रमण का वर्णन है। तीसरे खण्ड में राजमति के वियोग तथा चौदह वर्षों के बाद बीसलदेव के आगमन का वर्णन है और चतुर्थ खण्ड में राजा द्वारा राजमति को वापस लाने का वर्णन है।'

यह एक श्रृंगार प्रधान काव्य रचना है जिसमें संदेश परम्परा का भी निर्वाह हुआ है। बारहमासा वर्णन पद्धति पर नायिका की विरह व्यथा का वर्णन किया गया है। एक स्थल पर राजमति विरह को व्यक्त करते हुए कहती है-

''अस्त्रीय जनम काई दीघऊ महेस।

अवर जनम थारई घणा रे नरेस।

राजि न सिरजीय धउलीय गाइ।

वणषण्ड काली कोइली

हंउबइसती अबांनइचंपाडीकाल''

3. हम्मीर रासो- इस काव्य रचना की प्रामाणिकता अभी तक सिद्ध नहीं हो पाई। 'प्राकृत पैंगलम्' में हम्मीर नरेश से सम्बन्धित कुल आठ छन्द मिले हैं। इन्हीं छन्दों के आधार पर आचार्य शुक्ल ने एक स्वतंत्र ग्रन्थ 'हम्मीर रासो' को उद्भावना की थी तथा शाङ्र्गधर कवि को इसका रचयिता बताया है। लेकिन राहुल सांकृत्यायन ने जज्जल कवि को इसका रचयिता माना है। यह 1300 ई. के आसपास की रचना मानी जाती है। हम्मीर रासो से सम्बन्धित एक छन्द सिद्ध करता है कि इस ग्रन्थ रचयिता जज्जल कवि हैं।

'दम्मीर कज्जु जज्जल भणह, कोलाहल मुंह मह जलउ।

सुरताण सीस कर बाल दई, तेज्जि कलेवर दिअ चलउ॥'

4. परमाल रासो- रासो काव्य परम्परा में यह एक महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ है जिसकी हस्तलिखित प्रतिलिपि अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। उत्तर प्रदेश में यह आल्हा खण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। इसके रचयिता जगनिक हैं, जो कि राजा परमर्दि देव या परमाल देव के आश्रित कवि थे। यह तेरहवीं शताब्दी की रचना मानी जाती है। यह एक प्रसिद्ध काव्य है जिसमें आल्हा और ऊदल की वीरतापूर्ण कथा को गेय रूप में प्रस्तुत किया गया है। स्वतंत्रता पूर्व काल में फर्रुखाबाद के कलैक्टर चार्ल्स इलियट ने आल्हा खण्ड के नाम इसे फिर से छपवाया भी था। यह तेरहवीं शताब्दी की रचना मानी जाती है। कुछ समय तक विद्वान परमाल रासो को पृथ्वीराज रासो का मोहबा खण्ड कहते रहे। लेकिन अन्ततः डॉ. श्यामसुन्दर दास ने इसे एक स्वतंत्र रचना घोषित की। इस काव्य रचना की भाषा और छन्द विधान के बारे में प्रामाणिक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह रचना मौखिक रूप से ही प्राप्त हुई है। लेकिन इतना अवश्य कह सकते हैं कि परमाल रासो वीर रस की सर्वश्रेष्ठ रचना कही जा सकती है।

एक उदाहरण देखिए -

''बारह बरस लै कूकर जीवै, अरू तेरह लै जिय सियार।
बरस अठारह क्षत्रिय जीवै, आगे जीवन को धिक्कार।''

5. विजयपाल रासो- यह एक अन्य गीत गाथात्मक रासो काव्य है। इसकी रचनाकाल के बारे में भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने इसे 16वीं शताब्दी के बाद की रचना सिद्ध करने का प्रयास किया है। लेकिन मिश्र बन्धुओं का कहना है कि इसका रचनाकाल 1298 ई. के आस-पास है। इसके रचयिता नल्हसिंह माने जाते हैं तथा इसमें केवल 42 छन्द ही मिलते हैं। इस लघु काव्य में राजा विजयपाल सिंह के छंदों का ओजपूर्ण शैली में वर्णन किया गया है।

6. पृथ्वीराज रासो- यह रासो काव्य परम्परा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके रचयिता चन्दबरदाई थे जो दिल्ली नरेश पृथ्वीराज चौहान के मित्र तथा दरबारी कवि थे। ऐसा माना जाता है कि चन्दबरदाई इस रचना को पूरा नहीं कर पाये। अतः उनके पुत्र जल्हण ने ही उसे पूरा किया। जब शहाबुद्दीन गौरी पृथ्वीराज चौहान को गजनी ले जा रहा था तब चन्दबरदाई ने इस काव्य रचना को अपने पुत्र के हाथों सौंप दिया।

''पुस्तक जलहन हाथ दै
चलि गजन नृप काजा।''

इस ग्रन्थ में कुल 69 समय (खण्ड) हैं। अभी तक इसके केवल चार संस्करण मिले हैं। सबसे बड़े संस्करण में 16306 छन्द हैं और सबसे छोटे में 1300 छन्द हैं। इसमें पृथ्वीराज चौहान की. वीरता, संयोगिता स्वयंवर आदि घटनाओं का मार्मिक वर्णन किया गया है। लेकिन इसकी प्रामाणिकता काल को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. बूलर तथा श्यामल दास मुरारी दास ने इसे अप्रामाणिक घोषित किया है। इधर मिश्र बन्धु, कर्नल टॉड तथा डॉ. श्यामसुन्दर दास आदि इसे प्रमाणिक मानते हैं। परन्तु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. दशरथ शर्मा, डॉ. सुनीति कुमार चटजी इसे अर्द्धप्रामाणिक रचना घोषित करते हैं।

7. सन्देश रासक- कुछ विद्वान सन्देश रासक को रासो काव्य परम्परा का प्रथम ग्रन्थ मानते हैं। अपभ्रंश में रचित होने के बावजूद यह ग्रन्थ काफी लोकप्रिय है। इसके रचयिता मुल्तान के निवासी अब्दुर्रहमान है जो कि जाति के जुलाहा थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसका रचनाकाल 11 वीं शताब्दी माना है। विरह से सम्बन्धित इस खण्ड काव्य की कथा काल्पनिक है। इस विरह काव्य में विरहिणी नायिका की विरह व्यथा का मार्मिक वर्णन किया गया है। तीन प्रक्रमों में विभक्त इस लघु काव्य रचना में कुल 223 छन्द हैं। इसकी नायिका एक पथिक के माध्यम से स्तम्भ तीर्थ जाकर अपनी प्रेमिका को भूलने वाले प्रियतम के पास संदेशा भेजती है। इसी लघु कथानक द्वारा कवि ने सामौर नगर की षड् ऋतुओं का ह्दयग्राही वर्णन किया है।

8. अन्य फुटकर रचनाएं – रासो काव्य परंपरा में कुछ ऐसी रचनाओं को भी सम्मिलित किया जाता है जिनके नाम के आगे रासो शब्द का प्रयोग नहीं हुआ। लेकिन इन काव्यों में 'रासो' काव्य की सभी विशेषताएं देखी जा सकती हैं। पुन: ये रचनाएं आदि काल में ही रचित हैं। इनमें भट्ट केदार रचित **'जयचन्द प्रकाश'**, मधुकर कवि रचित **'जयमयंक जस चन्द्रिका'** तथा श्रीधर रचित **'रंगमंच'** आदि उल्लेखनीय रचनाएं हैं। 'जयचन्द प्रकाश' और 'जयमयंक जस चन्द्रिका' में कन्नौज नरेश जयचन्द की वीरता का प्रभावशाली वर्णन उपलब्ध होता है। लेकिन ये दोनों रचनाएं अभी तक अप्रकाशित हैं।

रासो काव्य की प्रवृत्तियाँ– रासो काव्य रचनाओं के कवि प्राय: दरबारी कवि थे। उन्होंने 'स्वान्त: सुखाय' काव्य रचना न करके 'स्वामिन: सुखाय' काव्य रचना की है। प्राय: तत्कालीन सभी राजपूत राजाओं के दरबारों में आश्रित कवि (चारण या भाट) रहते थे जो अवसर आने पर अतिशयोक्तिपूर्ण शैली में अपने–अपने आश्रयदाता का यशोगान करते थे। यही नहीं, वे अपने आश्रयदाता राजा और उसके सैनिकों को युद्ध के लिए प्रेरित भी करते थे। शान्तिकाल में ये कवि राजा के भोग–विलास और श्रृंगारमय जीवन का वर्णन करते थे। रासो काव्य परम्परा को प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं–

1. संदिग्ध रचनाएं– इस काल में प्राप्त होने वाली वीरगाथात्मक रचनाओं की प्रामाणिकता संदिग्ध है। इस काल के चार प्रमुख ग्रन्थ है–पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, खुमान रासो तथा परमाल एसो। इन काव्य रचनाओं में अनेक शताब्दियों तक परिवर्तन होते चले गए। परवर्ती कवियों ने भी अपने आश्रयदाताओं के वीरतापूर्ण प्रसंगों को इनमें जोड़ दिया। इस सन्दर्भ में बीसलदेव रासो का उदाहरण दिया जा सकता है। इसके कवि नरपति नाल्ह ने यूं तो स्वयं को बीसलदेव का समकालीन कहा है लेकिन काव्य रचना में कुछ ऐसी घटनाओं को भी जोड़ दिया है जो बीसलदेव के बाद घटित हुई हैं। पृथ्वीराज रासों में भी कुछ ऐसी घटनाएँ जोड़ दी गई। जो किसी भी दृष्टि से प्रामाणिक प्रतीत नहीं होती। यूं तो 'खुमान रासो' परम्परा की प्रथम रचना कही जा सकती है, लेकिन इसमें 16वीं शताब्दी तक की घटनाएं जोड़ दी गई है। उधर परमाल रासो का स्वरूप आल्हा के मूल रूप में बदला हुआ प्रतीत होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन सभी रचनाओं की घटनाएं किसी भी दृष्टि से प्रामाणिक नहीं कही जा सकती।

2. ऐतिहासिकता का अभाव – कहने को तो ये काव्य रचनाएं ऐतिहासिक हैं, लेकिन इनमें ऐतिहासिकता का पूर्ण अभाव है। इन रचनाओं में केवल इतिहास प्रसिद्ध राजाओं की वीरता का अतिश्योक्तिपूर्ण शैली में वर्णन किया गया है। लेकिन कवि ने बहुत कुछ ऐसा भी जोड़ दिया है जिसका इतिहास से कोई संबंध नहीं है बल्कि हम कह सकते है कि इन काव्य रचनाओं में ऐतिहासिक तथ्यों की सर्वथा कमी है। इस सन्दर्भ में **डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं ''भारतीय कवियों ने इतिहास नामभर को लिया शैली उनकी वही पुरानी रही, जिसमें काव्य निर्माण की ओर अधिक ध्यान था, विवरण संग्रह की ओर कम। कल्पना विलास का अधिक मान था, तथ्य निरूपण का कम''॥** पुन: इन रचनाओं जो तिथियां और संवत् दिए गए हैं वे भी इतिहास से मेल नहीं खाते। अत: इनको ऐतिहासिक रचनाएं कहना पूर्णतया असंगत है

3. युद्धों का सजीव वर्णन– इस काल के चारण कवि केवल कलम के ही धनी नहीं थे बल्कि तलवार के भी धनी थे। आवश्यकता पड़ने पर वे युद्धक्षेत्र में भी अपनी वीरता का परिचय देते थे। ये कवि अपने आश्रयदाता के युद्ध कौशल को अतिशय कल्पना के आधार पर प्रस्तुत किया करते थे। हमें इस तथ्य को स्वीकार कर चलना होगा कि युद्धों का चित्रण ही इन ग्रन्थों का मुख्य विषय रहा है और यह वर्णन सजीव, सुन्दर और यथार्थपरक बन पड़ा है। विशेषकर, पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज, जयचन्द और गौरी के युद्ध उल्लेखनीय हैं। चन्दबरदाई तथा अन्य चारण कवियों ने बड़ी स्वाभाविकता के साथ युद्ध का चित्रण किया है। परमाल रासो में आल्हा ऊदल की 52 लड़ाइयों का जो चित्रण किया गया है, वह बेमिसाल बन पड़ा है। इस संदर्भ में **डॉ. हुकुम चन्द राजपाल लिखते भी हैं– ''इस काल के चारण कवि केवल मसिजीवी ही नहीं थे, करवाल-ग्राही भी थे। वे स्वयं युद्ध स्थलों में जाकर युद्धों को अपनी आँखों से देखते थे और अपने आश्रयदाता को उत्साहित एवं प्रेरित करने के लिए काव्य सृजन करते थे। इतना**

ही नहीं, आवश्यकता पड़ने पर वे स्वयं भी कलम फेंक तलवार उठा अपने आश्रयदाता और अपनी मातृभूमि की रक्षार्थ रणभूमि में कूद पड़ते थे। वे कवि होने के साथ-साथ अच्छे योद्धा भी थे। उनका युद्ध ज्ञान व्यावहारिक ज्ञान था। इसे युग की विशिष्टता माना जा सकता है।'' सत्य तो यह है कि आदिकालीन वीर गाथात्मक साहित्य युद्धों के वर्णन में अपना कोई सानी ही नहीं रखता। जब दोनों ओर की सेनाएं युद्ध क्षेत्र में एकत्र होकर युद्ध करती हैं। और एक-दूसरे पर आक्रमण करती हैं तब पाठक भी इस वर्णन को पढ़कर दंग रह जाता है। युद्ध के चरमोत्कर्ष का एक उदाहरण देखिए -

1. थकि रहे सूर्य कौतिक गगन, रगन मगन भई सोन घर।
हरद हरषि वीर जग्गे, हुलसि हुरेउ रंग नब रत बर॥

2. पर उप्पर भर परत करत अति जुद्ध महा भर।
कहां कमध अरू खग्ग, कहीं कर चरन अन्तरूरिग।
कहौं दंत-मंत हयपुर उपरि कुम्भ, मुसुण्डसि खंड सब।
हिन्दुवांन राने भय मान मुष गही तेग चहुवांन जब॥

डॉ. श्यामसुंदर दास ने भी इस सन्दर्भ में उचित ही लिखा है-**''इस काल के कवियों का युद्ध वर्णन इतना मार्मिक तथा सजीव हुआ है कि उनके सामने पीछे के कवियों की अनुप्राप्त गर्भित किंतु निर्जीव रचनाएं नकल सी जान पड़ती हैं। कर्कश पदावली के बीच वीर भावों से भरी हिंदी के आदियुग की यह कविता सारे हिंदी साहित्य में अपनी समता नहीं रखती।''**

4. अतिशयोक्तिपूर्ण शैली में आश्रयदाताओं का यशोगान - इस काल के प्रायः सभी कवि दरबारी कवि थे और उन्होंने अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए अतिश्योक्ति शैली अपनाते हुए उनका यशोगान किया है। वे अक्सर ओजस्वी भाषा द्वारा अपने आश्रयदाता की वीरता उसके युद्ध कौशल और ऐशवर्य का वर्णन करते हुए दिखाई देते हैं। 'जिसका खाना उसका गाना' उक्त के अनुसार अपने चरित्रनायक की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते थे और शत्रु राजा को हीन सिद्ध करते थे। ये कवि आश्रयदाताओं के मित्र भी होते थे। अतः उनकी अजीविका आश्रयदाता पर ही निर्भर होती थी। दूसरा इस युग में सौ-पचास गांवों को ही राजा अपना राष्ट्र मान लेता था उस समय राज शब्द का प्रयोग बड़े सीमित अर्थ में होता था। पड़ोसी राज्य के पतन को देखकर राजा और राजकवि दोनों ही प्रसन्न होते थे। यही कारण है कि इस युग में कुछ ऐसे भी कवि हुए हैं जिन्होंने जयचंद की प्रशंसा में भी अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन किया है। इस संदर्भ में डॉ. हुक्मचंद राजपाल ने उचित ही लिखा है **''आदिकालीन काव्य में राष्ट्रीयता का अभाव है। उस समय देश छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था और राष्ट्रीय भावना का पूर्ण अभाव था। राष्ट्र शब्द उस समय सम्पूर्ण भारतवर्ष के लिए नहीं, बल्कि अपने-अपने प्रदेश एवं राज्य के लिए प्रयुक्त होता था।''**

5. वस्तु वर्णन और प्रकृति वर्णन- रासो काव्य के कवियों की रुचि प्रायः अनेक प्रकार के वर्णन में रही है। इन कवियों ने अपनी रचनाओं में अपने आश्रयदाता राजाओं को शूरवीरती, पराक्रमः विजय, रण-सज्जा, आखेट आदि का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। इन कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं को सिंह के समान वीर माना है। जब ये धरती पर कदम रखते हैं तो मानो धरती कांपने लगती है। चारण कवि प्रायः नाम-परिगणन शैली का ही अनुसरण करते हैं। निम्न पंक्तियों में एक कवि ने महाराज पृथ्वीराज चौहान के कुल, पराक्रम और शिक्षा का वर्णन इस प्रकार किया है -

''संचरि नरेगस चहुंआंन थानं, पृथिराज तहं बाजंत भानं।
बैसह बरीस षोडस नरिदं, आजानु बाहु भुअलोक यंदं।
सम्भरि नरेस सोमेस पूत, देवन्त, रूप अवतार दूत।
तासु मंसूर सबै अपार भूजानं भीम जिम सार भार॥

भारतीय काव्यों में प्रकृति-वर्णन सर्वाधिक हुआ है। रासो काव्य भी इसका अपवाद नहीं है। रासो काव्य के भाट कवियों की प्रकृति में बड़ी रुचि रही है। इन्होंने प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन दोनों रूपों का वर्णन किया है। इन कवियों ने प्राकृतिक दृश्यों का मानवीकरण भी किया है। ये प्रकृति को दूती के रूप में और आलंकारिक रूप में प्रस्तुत करते हैं। संयोगावस्था में जहाँ प्रकृति का सुखद चित्रण किया गया है, वहीं वियोगावस्था में प्रकृति-चित्रण दु:खदाई हो जाता है। कवि ने जहाँ प्रकृति के वर्णन में नाम परिगणन शैली का प्रयोग किया है, वहां वर्णन में नीरसता आ गई है। उदाहरण के रूप में निम्न पंक्तियों में प्रकृति को आलम्बन रूप का चित्रण किया गया है-

''भवरि अंब फुल्लिंग, कदंब रयनी दिध दींस।
भंवर भव भुल्ले, भ्रमंत मकरंदव सींस।
बहत बात उज्जलति, मोर अति विरह अगति किय।
कुलकहंत कल कंठ, पत्र राषरत रति अग्गिया।''

6. जन जीवन के प्रति उपेक्षा भाव- 'रासो काव्य' की रचना करने वाले कवियों ने जन-सामान्य के दु:ख-सुख, आदि का कहीं चित्रण नहीं किया। इसका कारण यह है कि इस युग के कवि प्राय: किसी राजा या सामन्त के आश्रय में रहते थे। ये सदैव अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में ही काव्य लिखा करते थे। इन कवियों ने केवल 'स्वामिन : सुखाय' के सिद्धान्त पर ही रचनाएं लिखी थीं। ये कवि इन राजाओं के यश का गान करते थे और उनसे इनाम पाते थे। अत: रासो काव्य के रचयिता चारण और भाट कवि राजदरबारी कवि होने के कारण राजदरबार तक ही सीमित रह गये। उदाहरण के लिए 'पथ्वीराज रासो' और 'परमाल रासो' रचनाओं में केवल आश्श्रयदाता राजाओं के ही चरित्र का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया गया है। केवल एक-आध स्थल ही ऐसा दिखाई देता है जिसमें खेतों में काम करने वाली जाटनी या पानी भरने वाली पनिहारिनों का उपमान के रूप में वर्णन है। इस सम्पूर्ण रासो काव्य में सामान्य जन-जीवन के प्रति उपेक्षा के भाव दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु फिर ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि से रासो काव्य का महत्त्व असंदिग्ध है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी यह काव्य आज बड़ा ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो रहा है।

7. रसों का प्रयोग- रासो काव्य में वीर रस के साथ-साथ श्रृंगार रस का सुंदर मिश्रण किया गया है। इस काल में रचित वीरगाथात्मक रचनाओं में वर्णित युद्धों का मुख्य कारण कोई न कोई राजकुमारी ही होती थी। अत: इन काव्यों में वीर रस और श्रृंगार रस दोनों का स्वाभाविक रूप से समावेश हो जाता था। इन रचनाओं में श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों रूपों का प्रयोग मिलता है। उदाहरण के लिए 'बीसलदेव रासो' में श्रृंगार के दोनों पक्षों का प्रयोग प्राप्त होता है। संयोगश्रृंगार में कवि ने षड्ऋतु वर्णन, रूप सौन्दर्य वर्णन, वय: सन्धि नखशिख वर्णन आदि का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। इसी प्रकार से 'पृथ्वीराजरासो' में पद्मावती की वय: सन्धि का चित्रण भी बड़ा मनोहारी है। 'पृथ्वीराज रासो' में पद्मावती के सौन्दर्य का वर्णन देखिए।

'मनहु कला सम भन कला सोलह सो बन्निय।
बाल बैस, ससि ता समीप, अम्रित रस पिन्निय।'

वस्तुत: रासो काव्यों में वीर और श्रृंगार दोनों रसों को इकट्ठा देखकर यह कहा जा सकता है कि सभी राजपूत राजाओं का एक ही लक्ष्य था-

'ध्येय जीविते लभ्यते लक्ष्मी, मृते चापि सुरांगना।'

इन वीर काव्यों में वीर रस का भी प्रभावशाली चित्रण किया गया है। बल्कि वीर रस तो इन काव्य-रचनाओं का प्रधान रस है। उसके सहायक रसों के रूप में रौद्र, वीभत्स, भयानक आदि रसों का भी परिपाक देखा जा सकता है। सभी रासो प्रबन्ध काव्य-रचनाएं हैं। इसलिए इनमें वीर रस के पश्चात श्रृंगार रस को ही महत्त्व प्रदान किया गया है। वीर काव्यों के नायकों का एक ही लक्ष्य था किसी राजा की सुन्दर राजकुमारी को प्राप्त करना। सुन्दरीहरण अथवा बलपूर्वक विवाह के कारण ही युद्ध होते थे और दो पक्षों में से किसी एक की मृत्यु के बाद ही कथानक का अंत होता था। इनका तो एक ही लक्ष्य था।

'जाकी कन्या सुन्दर देखी, ता पे जाय धरी तलवार।'

विवाह के पश्चात् भोग-विलास का वर्णन भी अनिवार्य था, अन्यथा प्रबन्ध काव्य कैसे पूरा होता। इसलिए इन काव्य-रचनाओं में संयोग और संभोग श्रृंगार के दृश्यों के साथ-साथ वियोगश्रृंगार के चित्र भी अंकित किए गए हैं। युद्ध काव्य होने के कारण इनमें शांत रस की संभावना खोजना व्यर्थ है।

8. काव्य रूप और भाषा- आदि काल में प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकार की काव्य रचनाएं प्राप्त होती है। 'बीसलदेव रासो' आदि काल का प्राचीनतम प्रबन्ध काव्य है, जिसमें नायिका की विरह-व्यथा का सुन्दर वर्णन किया गया है। 'पृथ्वीराज रासो' एक अन्य प्रबंध काव्य है।

रासो काव्य में प्राय: देशी भाषा का प्रयोग हुआ है। इसे हम डिंगल-पिंगल भी कह सकते हैं। डिंगल भाषा तत्कालीन राजस्थानी भाषा है। राजस्थान में उस समय मारवाड़ी, ढूंढाड़ी, मेवाती, मालवी और बागड़ी पाँच बोलियाँ प्रचलित थीं। मारवाड़ी को ही डिंगल भाषा कहा जाता है। तत्कालीन चारण और भाट कवियों ने डिंगल भाषा में ही भावाभिव्यक्ति की है। वैसे भी, डिंगल भाषा ही वीर रस प्रधान कविताओं के सर्वथा अनुकूल मानी जा सकती है। डिंगल भाषा का एक उदाहरण देखिए -

''बज्जिय घोर निसान रान हुहान चहुँ दिसि।
सकल सूर सामंत समरि बल जंत्र मंत्र तिसि ॥
उठ्ठि राज प्रथिराज बाग लग्ग मनो वीर नट।
कढ़त तेग मन बेग लगत मनो बीजु झट्ट घट॥
थकि रहे सूरकौतिक गगन, रंगन मगन भई शोन धर।
द्वि हरषि वीर जग्गे हुलासि हु रेउ रंग नव रत्त वर॥''

इसके अतिरिक्त रासो काव्य में पिंगल भाषा का भी सफल प्रयोग देखा जा सकता है। पिंगल भाषा तत्कालीन ब्रजभाषा कही जा सकती है। वैसे भी राजस्थान और ब्रज क्षेत्र की सीमाएं आपस में मिलती हैं। फलस्वरूप चारण कवियों ने जहां डिंगल भाषा को वीर रस की अभिव्यक्ति का साधन बनाया, वहाँ श्रृंगार-वर्णन के लिए उन्होंने पिंगल भाषा का ही प्रयोग किया। पिंगल भाषा का एक उदाहरण देखिए-

'कुंजर उप्पर सिंह। सिंह उप्पर दोय पब्बय।
पचय उप्पर मन्थ। मन्थ उप्पर ससि सुम्भय॥
ससि उप्पर इक की। कीर उप्पर मृग विट्ठौ।
अहि मयूर महि उप्परहि। हेम सरिस हेमन जर्‌यौ।
सुन भुवन छंडि कवि चंद कहि। तिहि धोखे राजन परयौ॥'

9. छन्द एवं अलंकार- कहने को तो ये सभी रासो काव्य हैं जिसकी व्युत्पत्ति 'रासक' नामक छन्द से हुई है, लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं लिया जाना चाहिए कि इन रासो काव्यों में केवल गहन 'रासक' छन्द का ही प्रयोग हुआ है। दोहा, तोटक, तोमर, पद्धरि, उल्लाला, छप्पय, कवित्त, भुजंगी, आल्ह, मालती, भुजंगप्रयात, नाराच दर्मिल, अरिल कण्डिलय आदि असंख्य छन्दों का प्रयोग इन काव्य रचनाओं में किया गया है। अकेले 'पृथ्वीराज रासो' में अड़सठ (68) छन्दों का प्रयोग हुआ है। रासो काव्यों को छन्दों का जंगल भी कहा गया है। इस सन्दर्भ में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा भी है- **'वैसे तो तलवार ही हर झंकार में तोटक, तोमर और पद्धति पर उतर आते हैं, पर जमकर वे छप्पय और दोहा में लिखते हैं। रासो के छन्द जब बदलते हैं तो श्रोता के चित्त में प्रसंगानुकूल संदेह नवीन कम्पन उत्पन्न करते हैं।'**

रासो काव्यों में कवियों ने अलंकारों का प्रयोग केवल साधन के रूप में किया है, साध्य रूप में नहीं। इन कवियों ने शब्दालंकारों के साथ-साथ अर्थालंकारों का भी सफल प्रयोग किया है। परन्तु उनका अलंकार प्रयोग स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक है। अलंकार प्रयोग के कारण इन रचनाओं के सौन्दर्य में पर्याप्त अभिवृद्धि हुई है। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति आदि का सफल प्रयोग देखा जा सकता है। लेकिन अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह, दीपक, दृष्टान्त, रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकारों की प्रधानता देखी जा सकती है। यमक अलंकार का एक उदाहरण देखिए-

'अंग सुलच्छिन हेम तन, नग धरि सुदरि सीस।

गौरी ग्रहि गोरी गयौ, बिना जुद्ध बुझि रीसा'

इसी प्रकार से संयोगिता के रूप-वर्णन का वर्णन करते समय कवि ने रूपकातिशयोक्ति अलंकार का जो प्रयोग किया है, वह काफी आकर्षक बन पड़ा है-

'कुंजर उप्पर सिंह। सिंह उप्पर दोय पब्बय।

पब्बय उप्पर मन्थ। मन्थ उप्पर ससि सुम्भय ।।

ससि उप्पर इक कीर। कीर उप्पर मृग विट्ठौ।

मृग उप्पर कोदण्ड। संघ कदन्थ बचहो।।'

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य की आदिकालीन रासो-काव्य परम्परा अप्रामाणिक होते हुए भी पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। श्रृंगार और वीर रसों से आप्लावित ये रचनाएँ पाठक को निश्चय से आनन्दित करती हैं।

पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता एवं अप्रामाणिक।

पृथ्वीराज रासो हिन्दी साहित्य के आदिकाल की सर्वाधिक प्रमुख रचना है। इसे हिन्दी का प्रथम महाकाव्य भी कहा गया है। लेकिन इस काव्य रचना की प्रामाणिकता को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद देखा जा सकता है। सबसे पहले फ्रांसीसी विद्वान गार्सा-द-ताँसी ने इसे प्रामाणिक रचना घोषित किया। फलस्वरूप कर्नल टॉड ने इसे प्रामाणिक मानकर इसके लगभग तीन हजार छन्दों का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया। इधर बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसायटी ने इसका प्रकाशन भी आरंभ कर दिया। परन्तु इसी बीच सन् 1857 ई. में डॉ. बूलर को कश्मीर से जयानक भट्ट द्वारा रचित **'पृथ्वीराज बिजय'** नामक संस्कृत की काव्य रचना मिली। डॉ. बूलर ने 'पृथ्वीराज विजय' का जब गहन अध्ययन किया तो उसे लगा कि 'पृथ्वीराज विजय' में वर्णित घटनाएं और तिथियाँ पृथ्वीराज रासो की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक हैं। इसलिए उन्होंने रासो का प्रकाशन बन्द करवा दिया और इसकी प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता का विवाद आरम्भ हो गया। इस सम्बन्ध में विद्वानों के तीन वर्ग हैं। प्रथम वर्ग इसे अप्रामाणिक रचना मानता है, दूसरा अर्धप्रामाणिक तथा तीसरा प्रामाणिक मानता है।

(क) अप्रामाणिक मानने वाले विद्वान- इस वर्ग के विद्वानों का यह कथन है कि पृथ्वीराज चौहान और चन्दबरदाई समकालीन नहीं थे, बल्कि इन विद्वानों ने चन्दबरदाई के चरित्र के बारे में भी संदेह उत्पन्न किया है। ये लोग पृथ्वीराज रासो को पूर्णतया अप्रामाणिक घोषित करते हैं। पृथ्वीराज रासो को अप्रामाणिक रचना मानने वालों में डॉ बूलर, गौरी शंकर हीरानंद ओझा, मुंशी देवी प्रसाद, कविराज में श्यामल दास तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के नाम उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों ने निम्नलिखित तर्क देकर का यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि पृथ्वीराज रासो एक अप्रामाणिक रचना है-

1. पृथ्वीराज रासो में वर्णित अनेक घटनाएं ऐतिहासिक प्रमाणों, ताम्रपत्रों, शिलालेखों तथा पृथ्वीराज विजय में वर्णित इतिहास से मेल नहीं खातीं। पुन: इस ग्रन्थ में चौहान, चालुक्य तथा परमार राजपूतों को अग्निवंशीय माना गया है. जबकि इतिहास इनको सूर्यवंशी सिद्ध करता है।

2 इसी प्रकार चौहानों की वंशावली, पृथ्वीराज की माँ का नाम, माँ का वंश तथा सामन्तों के नाम ऐतिहासिक शिलालेखों से मेल नहीं खाते। उदाहरण के रूप में पृथ्वीराज की माँ का नाम कर्पूर देवी के स्थान पर कपला बताया गया है।

3. इतिहास के अनुसार न तो अनंगपाल दिल्ली का शासक था और न ही उसने पृथ्वीराज को गोद लिया था। पर पृथ्वीराज रासो में अनंगपाल को दिल्ली का शासक बताया गया है जिसने पृथ्वीराज को गोद लिया था।

4. पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज के सौलह विवाहों की चर्चा की गई है। इतिहास की दृष्टि से यह प्रसंग पूर्णतया अशुद्ध है।

5. ऐतिहासिक दृष्टि से जयचन्द अनंगपाल का दोहित्र नहीं था और न ही वह राठौर वंशीय था। इसके विपरीत शिलालेख के अनुसार जयचन्द गहरवार क्षत्रिय था।

6. पुनः पृथ्वीराज और जयचन्द की शत्रुता तथा संयोगिता स्वयंवर को डॉ. दशरथ शर्मा ने काल्पनिक घोषित किया है।

● **जैन साहित्य**- वस्तुतः हिन्दी के प्रारम्भिक रुप का सूत्रपात करने में जैन धर्म का महत्वपूर्ण योग है। आठवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शती तक जैन कवियों द्वारा निर्मित अपभ्रंश साहित्य की अविच्छिन्न धारा मिलती है। इस काल में जैन कवियों द्वारा विपुल साहित्य रचा गया होगा, परन्तु वह अपने समग्र रूप में प्राप्त नहीं है। जैन साहित्य के प्रमुख कवि निम्नलिखित हैं -

स्वयंभू - अपभ्रंश के साहित्यकारों में महाकवि स्वयंभू का नाम सर्वाधिक उल्लेख है। इनका समय आठवीं सदी है। इनकी तीन कृतियां प्राप्त हैं (1) पउमचरिउ (2) रिट्ठनेमिचरिउ तथा (3) स्वयंभू छन्द। 'पउमचरिउ' स्वयंभू की कीर्ति का आधार स्तम्भ है। इसमें 5 काण्ड, 90 सन्धियां तथा 12,000 के लगभग श्लोक हैं। 'पउमचरिउ' में राम की कथा को नवीनता प्राप्त हुई है। कवि ने राम-कथा को जैन धर्मानुकूल रूप देकर जैन सिद्धांतों की पुष्टि की है। स्वयंभू के राम साधारण मानव की भांति सुख-दुःख अनुभव करने वाले हैं।

पुष्पदन्त - स्वयंभू के अनन्तर जैन साहित्य के प्रतिष्ठित कवि पुष्पदंत हैं। कहा जाता है कि ये पहले शैव-मतानुयायी थे। बाद में दिगम्बर जैन हो गये। इनकी चार कृतियां प्रति महापुराण, नयकुमार चरिउ, जसहरचरिउ तथा कोषग्रंथ। पुष्पदंत को अपनी कवित्व-शक्ति पर अभिमान था। अपने लिए कविकुल तिलक, काव्यरत्नाकर, अभिमान आदि उपाधियां धारण की थीं। इनका समय ईसा की दसवीं शती माना जाता है। इन्होंने राम तथा कृष्ण की कथाओं को धर्म के अनुसार ढाला है।

देवसेन - (933 ई.) की रचनाओं में 'सावयधम्म दोहा' विशेष प्रसिद्ध है। इसमें उपदेश-प्रवृत्ति की ही प्रधानता है। जैन कवियों में मुनि रामसिंह 'पाहुड़ दोहा' के लिए प्रसिद्ध हैं। मुनि रामसिंह को जैन रहस्यावाद का कवि माना जाता है। अन्य जैन कवियों में हेमचन्द्र सूरि, जोइन्दु, धनपाल, सोमप्रभ सूरि, मेरुतुग, शालिनद सूरि, मुनि कनकामर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। हेमचन्द्र सूरि के 'कुमारपाल चरित्र' तथा 'हेमचन्द्र शब्दानुशासन' दो ग्रन्थ मिलते हैं। इन्होंने प्राचीन हिन्दी के जीवित उदाहरण सुरक्षित करके साहित्य को उपकृत किया है। जोइन्दु के दोहों का संकलन 'परमात्म प्रकाश' नाम से प्राप्त होता है। सोमप्रभू सूरि की रचना 'कुमारपाल प्रतिबोध' में जैन धर्म विषयक उपदेश है। **धनपाल** जैन-साहित्य के विशिष्ट कवि है। इनका 'भविसयत्त कहा' नामक ग्रंथ विशेष प्रसिद्ध है। **मेरुतुंग** के- **'प्रबन्ध चिन्तामणि'** में ऐतिहासिक व्यक्तियों के चरित्र का कथारूप में संकलन हुआ है। मुनि कनकामर कृत करकडचरिउ कृत करकडुचरिउ एक खण्डकाव्य हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से शाङ्गर्धर का महत्व पर्याप्त है। चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इनका 'शाङ्गर्धर पद्धति' नामक सुभाषिता संग्रह मिलता है। 'शाङ्गर्धर पद्धति' को अपभ्रंश रचना पद्धति की समाप्ति का सूचक माना जाता है।

आदिकालीन अपभ्रंश साहित्य में जैन काव्य परम्परा का स्थान काफी महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार आदिकालीन सिद्धों ने भारत के पूर्वी क्षेत्र को अपने सम्प्रदाय का केन्द्र बनाया और वहां सिद्ध मत का प्रचार-प्रसार किया, उसी प्रकार तत्कालीन भारत के पश्चिमी क्षेत्र में जैन कवियों और आचार्यों ने अपने धर्म का प्रचार-प्रसार करते हुए साहित्य का निर्माण किया। चूंकि इस साहित्य में अपभ्रंश भाषा का प्रयोग हुआ है, अतः इसे अपभ्रंश साहित्य कहा जाता है। इसमें धर्म के साथ-साथ साहित्य का सुन्दर समन्व्य किया गया है। जैन मुनियों द्वारा रचित साहित्य में धार्मिक रीति-नीति, सहिता, कष्ट-सहिष्णुता, वैराग्य, सदाचार आदि को विशेष महत्व दिया गया। कुछ गृहस्थ जैन भी हुए हैं जिन्होंने धार्मिक साहित्य की रचना की। अन्य कुछ महत्वपूर्ण जैन कवियों ने राम कथा और कृष्ण कथा को आधार बनाकर जैन काव्य में रचना की ओर अपने ही दृष्टिकोण से शील और सदाचार का प्रतिपादन किया। ये कवि प्रायः धार्मिक दृष्टि से सहिष्णु थे। इसलिए इन्होंने अन्य किसी धर्म की आलोचना नहीं की, बल्कि मानव हृदय को स्पर्श करने वाली सहज अनुभूतियां व्यक्त की हैं।

जैन काव्य परम्परा के प्रमुख कवि- जैन काव्य परम्परा में कविवर स्वयंभू का स्थान प्रमुख है। इनका समय 8वीं सदी माना जाता है। साथ ही इन्हें अपभ्रंश भाषा का बाल्मीकि भी कहा गया है। 'पउम चरिउ', 'रिट्टनणेमि चरिउ', 'स्वयम्भू छन्द' तथा 'णायकुमार चरित' इनकी प्रमुख काव्य रचनाएं हैं। इनकी कीर्ति का आधार स्तम्भ 'पउम चरित' पदम् चरित है। यह राम कथा को आधार बनाकर लिखी गई है। 'रिट्ठणेमि चरिउ' में 'अरिष्टनेमि' के साथ कृष्ण की कथा दी गई है। 'पुष्पदन्त' जैन काव्यधारा के दूसरे प्रमुख कवि हैं। मूलतः पुष्पदन्त कश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे। लेकिन बाद में उन्होंने जैन धर्म में दीक्षा ले ली। ये स्वभाव के बड़े अक्खड़ थे। इसलिए इनको 'अभिमान मेरू' भी कहा गया है। ये अपभ्रंश के व्यास कहे जाते हैं। 'महापुराण', 'णाय कुमार चरिउ', 'जसहर चरिउ' तथा 'कोष ग्रन्थ' इनकी काव्य रचनाएं हैं। राम कथा की अपेक्षा कृष्ण कथा में इनको अधिक सफलता मिली है। **हेमचन्द्र सूरि** जैन काव्य-परम्परा के एक अन्य उल्लेखनीय आचार्य कवि हैं। इनको जैन धर्म का शंकराचार्य भी कहा गया है। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के ये प्रकाण्ड पंडित थे। 'कुमारपाल चरित' तथा 'हेमचन्द्र शब्दानुशासन' इनकी प्रमुख रचनाएं हैं।

अन्य जैन कवियों में **मुनि रामसिंह, जोइन्दु, धनपाल, सोमप्रभ सूरि, जिनप्रिय, मेरूतुंग तथा कनकाभर** के नाम गिनवाए जा सकते हैं। 'पाहुड़ दोहा' मुनि रामसिंह की प्रसिद्ध काव्य रचना है। जोइन्दु की रचना का नाम है 'परमात्म प्रकाश' इसमें नीति सम्बन्धी कुछ बातें लिखी गई हैं। धनपाल जैन काव्यधारा के सर्वाधिक प्राचीन कवि हैं। इनकी रचना का नाम है 'भविष्य दत्त कथा'। इस रचना में इन्होंने धार्मिक नियमों के साथ-साथ काव्य सौन्दर्य का भी मिश्रण किया है। सोमप्रभ सूरि की प्रसिद्ध रचना 'कुमारपाल प्रतिबोध' है जिसमें हेमचन्द्र द्वारा कुमारपाल को दिए गए उपदेशों का वर्णन है। 'प्रबन्ध चिंतामणि' मेरुतंग की प्रसिद्ध काव्य रचना है तथा इसमें प्राचीन ऐतिहासिक पात्रों के चरित्रों पर प्रकाश डाला गया है। यशकीर्ति और श्रुतिकीर्ति दो अन्य जैन कवि हैं जिन्होंने क्रमशः 'पाण्डव पुराण' और 'हरिवंश पुराण' की रचना की। इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन कवियों ने धर्म और साहित्य का मिश्रण करते हुए कुछ सफल रचनाएं अपभ्रंश और प्राकृत भाषा में लिखी हैं।

जैन काव्य की विशेषताएं

1. जैन धर्म सिद्धान्तों का प्रतिपादन - जैन साहित्य को हम धार्मिक साहित्य भी कह सकते हैं। इसमें जैन धर्म जैन के सिद्धान्तों और नियमों का प्रतिपादन किया गया है। निःसन्देह जैन कवियों ने अपने धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए काव्य रचना कीं। इस साहित्य में जैन तीर्थकरों की जीवनियों का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त जैन धर्म में शिक्षा-दीक्षा लेने वाले श्रावकों के जीवन चरित का वर्णन किया गया है। वस्तुतः जैन कवि अपने धर्म को लोकप्रिय बनाना चाहते थे इसलिए उन्होंने जैन धर्म संबंधी परिचय पाठकों को देना चाहा है। **'जसहर चरिउ'**, **'णेमिणाह चरिउ'** आदि रचनाएं इसी प्रकार की हैं। इसी प्रकार से **पउमसिरि चरिउ, भविसयत चरिउ** आदि ग्रन्थों के भी नाम गिनवाए जा सकते हैं। जैन कवि अपने पाठकों को सत्य, अहिंसा, कष्ट-सहिष्णुता तथा ज्ञान का उपदेश देना चाहते थे। कुछ जैन कवियों ने वैष्णव धर्म की कथाओं को लिया, लेकिन उन्होंने रामायण, महाभारत आदि पुराणों को अपने धार्मिक रंग में रंगकर प्रस्तुत किया।

2. ब्राह्य आडम्बरों तथा धार्मिक रूढ़ियों का खण्डन– वस्तुत: जैन धर्म का उद्‌भव हिन्दी धर्म के ब्राहा आडम्बरों के विरोध में हुआ। उस समय हिन्दू समाज बाह्य उपासना, मन्दिर, तीर्थ यात्रा, व्रत, मूर्ति पूजा, जाति–पाति आदि विकार से ग्रस्त था। शूद्रों की स्थित बड़ी दयनीय थी। वर्णाश्रम धर्म के कारण समाज का एक बहुत बड़ा भाग समाज से प्राय: अलग–थलग था। इस अवसर पर जैन कवियों ने केवल चारित्रिक गुणों और मन की शुचिता को महत्व देते हुए अपने धर्म का प्रचार–प्रसार किया। भले ही कुछ जैन कवियों ने गृहस्थ जीवन की निंदा भी की हो, क्योंकि यह साधक के मार्ग में बाधा का काम करता है। लेकिन उन्होंने धर्म का पालन करने वाले गृहस्थ जीवन का कदापि विरोध नहीं किया। जैसे साधु और कवि धन–सम्पत्ति, शरीर तथा सांसारिक बंधनों को तुच्छ मानते हैं। वे जीवन की नश्वरता का वर्णन करते हुए मोक्ष प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य सिद्ध करते हैं। एक स्थल पर वे लिखते भी हैं–

''देउल देवु वि सत्थु गुरु है तित्थु वि केउविकबु।
बन्धु जु दीसइ कुसुमियउ इंधणु होसइ सब्बु॥
शुद्ध आत्मा ही तीर्थ है अन्य तीर्थ मत जाओ
अण्णु जि तित्थु म जाहि जिय अण्णु जि गुरुउ म सेवि।
अण्णु जि देउ न चिंति तुहुं अप्पा विमल मुएवि।''

3. रहस्यानुभूति– अधिकांश जैन कवियों ने चरित शैली और रास शैली को अपनाते हुए साहित्य का निर्माण किया है लेकिन मुनि रामसिंह, सोमप्रभ सूरि आदि कुछ अन्य कवियों ने रहस्यानुभूति को अपनाते हुए काव्य रचनाएं लिखी हैं। ये कवि मानव शरीर को मंदिर की संज्ञा देते हैं। अत: तीर्थ यात्रा का विरोध करते हुए कहते हैं कि शरीर रूपी मन्दिर में बैठे हुए ईश्वर के दर्शन करने की कोशिश करनी चाहिए। इसी सन्दर्भ में इन कवियों ने बाह्य आचारों तथा कर्मकाण्डों का भी विरोध किया है। ये कहते है कि जिस प्रकार लकडी में आग छिपी रहती है, पुष्प में पराग तथा मधु छिपा रहता है, उसो प्रकार शरीर में जीव निवास करता है। लेकिन कोई बिरला व्यक्ति ही इस सच्चाई को जान पाता है। सच्चे गुरु की कृपा से ही हम शरीर में निवास करने वाले परमात्मा को जान सकते है।

'जिम बइसाणर कट्‌ठ महिं, कुसुमई परिमलु होई।
तिह तेहमइ बसइ वि, आणदा, बिरला बुझड़ कोइ।'

4. आत्मानुभूति पर बल– जैन कवि साधना का लक्ष्य आत्मानुभूति को मानते हैं और इसके लिए शुभ–अशुभ कर्मों के क्षय को आवश्यक मानते हैं। इनका विचार है कि जो आत्मा है, वही परमात्मा है। दोनों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। जब साधक को इस प्रकार का आत्म ज्ञान हो जाएगा तब वह परमात्म पद को प्राप्त करने में समर्थ होगा। इस सन्दर्भ में जैन कवियों ने यह भी प्रतिपादित किया है कि प्रगति मार्ग पर चलते हुए मानव को सांसारिक आकर्षणों से निर्लिप्त रहना चाहिए। जैन साधकों ने त्याग प्रधान अहिंसा को अपनाने की सलाह दी है। इन कवियों के अनुसार आत्मा के धार में इन्द्रिय रूपी गांव बसा हुआ है। आत्मा का घर तो स्वच्छ मन है। यदि मन स्वच्छ है तो सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है। जो व्यक्ति आत्मस्वरूप में रमण करता है, वही निर्वाण को पा सकता है, दूसरा नहीं।

वज्जिय सवल वियप्पहं परम समाहि लहंति।
अं बिदिह साण्दुं कवि सो सिब सुक्ख भंणति॥

5. रूप चित्रण– जैन कवियों ने अपने काव्य में नर की अपेक्षा नारी के रूप का अधिक चित्रण किया है। ये कवि प्रकृति और नारी में कोई भेद नहीं मानते थे। जो सौन्दर्य प्रकृति में है, वही नारी में भी है। स्त्री के विभिन्न अंगों की तुलना वे प्राकृतिक उपमानों से करते हैं। 'पउम चरिउ' में पद्‌म श्री के रूप का जो वर्णन किया गया है वह बड़ा ही आकर्षक बन पड़ा है। इस रचना में नारी के रूप का तीन प्रकार से वर्णन किया गया है– शास्त्रों के आधार पर, प्रादेशिक आधार पर और चरित्र के आधार पर। इन कवियों के काव्य को मुख्य विशेषताएं हैं कि ये विशेष परिस्थिति में उत्पन्न पाव के भाव को लक्षित कर नारी के यश का वर्णन करते हैं। उदाहरण के रूप में स्वयंभू ने केकैयी के रूप का वर्णन उस समय किया जब वह राजदरबार में राजा दशरथ से तीन वर मांगने जाती है।

''पदा सोम वच्छच्छया छाप पाणी।
वरालविणी कोइलालाव वाणी॥
महा भोर पिच्छोह संकास केसा॥
अंणगस्स मल्लीव पच्छण्ण वेंसा॥''

6. प्रकृति वर्णन– प्रकृति वर्णन में तो इन कवियों को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। सम्भवत: आदिकालीन अपभ्रंश साहित्य में जैन कवि ही हैं जिन्होंने प्रकृति के विभिन्न रूपों का प्रभावशाली वर्णन किया है। इन कवियों ने प्रकृति का वर्णन पृष्ठभूमि रूप में, आलंकारिक रूप में, मानवीकरण रूप में, उद्दीपन रूप में, उपदेशात्मक रूप में, आलम्बन रूप में तथा रहस्यात्मक रूप में किया है। इन कवियों ने बड़ी सूक्ष्मता के साथ प्राकृतिक पर्यावरण को देखा है। अत: वन, उद्यान, पर्वत, ऋतु, आकाश आदि का वर्णन करने में इन्हें विशेष सफलता प्राप्त हुई है। बसन्त ऋतु की पृष्ठभूमि में प्रकृति वर्णन का एक उदाहरण देखिए–

''डोला-तोरण बारे पई हरे-पइटठु वसंतसिरी-हरे।
सरसइ-वासहरेहि ख-पणेउरू-आवसिउ महुअरि अन्तेपुरू॥
कोयल कामिणीउ उज्जाणेहिं सुय सामंत लवाहर बाणेहि॥''

इस प्रकार जैन कवि प्रकृति पर मानवीय चेतना का आरोप करने में भी सिद्धहस्त है। उदाहरण के रूप में 'पउम चरिउ' में कवि नदी पर अभिसारिका नायिका पर आरोप करते हुए लिखते हैं–

''धव धवेति जे जलपठभारा तेजि नाई णेउर झंकारा।
पुलिणई जाहिं बेवि सच्छायई ताई जे उइठणांइ ठां जायई॥''

7. भाव रस– जैन काव्यधारा के कवियों ने भाव व्यंजना में भी अत्यधिक सफलता प्राप्त की हैं। नायकों के युद्ध वीर होने के कारण ये कवि गर्व की व्यंजना अत्यधिक करते हैं। इसी प्रकार निर्वेद, आवेग, अमर्ष, चिन्ता, शोक, ईर्ष्या, करुणा आदि भावों का भी इन कवियों ने सफल चित्रण किया है। 'सन्देश रासक' की विरहिणी नायिका खंभात जाने वाले पावक से कहती हैं– **'ठहरो-ठहरो आधे क्षण के लिए जो मैं कहती हूं उसे सुस्थिर होकर और मन लगाकर सुनो, हे पथिक क्षण भर दिल से पसीज जाओं।'**

जैन साहित्य में श्रृंगार, शान्त और करुण रसों का सुन्दर वर्णन हुआ है। श्रृंगार के अतिरिक्त इन्होंने संयोग और वियोग दोनों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। यद्यपि इनकी अभिव्यक्ति का ढंग शास्त्रीय है, लेकिन इन कवियों ने लोक रुचि का भी ध्यान रखा है। यही नहीं, इन कवियों ने वियोग श्रृंगार के पूर्व राग, मान, प्रवास और करुण चारों भेदों की सुन्दर और मार्मिक व्यंजना की है। इसके करुण रस की अभिव्यक्ति अंतत: शान्त रस में हो जाती है। **'पउम चरिउ'** तथा **''भविष्यदत्त कथा''** जैसे ग्रन्थों में वात्सल्य रस की व्यंजना देखी जा सकती है। वैसे जैन साहित्य का प्रधान रस तो शान्त ही है जिसके आलम्बन रूप में संसार की नि:सारता, क्षणभंगुरता और भोगों की अतृप्ति का चित्रण है। विरक्ति, स्मरण, दया, करुणा आदि इसके संचारी भाव हैं।

8. प्रेम के विविध रूपों का वर्णन– जैन साहित्य में प्रेम को विशेष महत्व दिया गया है। इन कवियों ने प्रेम के पांच रूपों का वर्णन किया है– विवाह के लिए प्रेम, विवाह के बाद का प्रेम, असामाजिक प्रेम, रोमांटिक प्रेम तथा विषम प्रेम। उदाहरण के रूप में कर्कण्ड चरिउ में नायक अपनी पत्नी मदनावती से प्रगाढ़ प्रेम करता था। लेकिन बाद में वह उससे विरक्त हो गया और उसने रति वेगा नामक नायिका से दूसरा विवाह कर लिया। इसी प्रकार पउम चरिउ में समुद्र और पद्म श्री के विवाह का वर्णन किया गया है। जसहर चरिउ में अमृतमयी एक कुबड़े से प्रेम करती है जिसे हम असामाजिक प्रेम कह सकते हैं। तत्कालीन सामन्तवादी युग में बहुपत्नी प्रथा प्रचलित थी। दूसरा धर्म का अत्यधिक प्रभाव था। इसलिए इन कवियों ने रोमांटिक प्रेम का अधिक वर्णन नहीं किया। प्रेम की विषमता का उदाहरण 'पउम चरिउ' में वर्णित रावण का प्रेम है। इसी प्रकार जसहर की रानी का कुबड़े से प्रेम भी असामाजिक ही कहा गया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

''वव दड्ढ थाणु संकास तुण जो दीह दंत दंतुर वयणु।
कद्दम बुब्बअ संणिह णायणुअइ अड्ड वियड्ड हड्ड विसमु।
फिर फुट्टपाथ कयणस विरमु।''

9 विरह का मार्मिक वर्णन– जैन कवियों को विरह वर्णन करने में विशेष सफलता प्राप्त हुई है। इस सन्दर्भ में हम 'सन्देश वाहक' का उदाहरण दे सकते हैं। लेकिन अधिकांश कवियों ने नारी के विरह वर्णन को ही अधिक महत्व प्रदान किया है पुरुष के विरह वर्णन की ओर इनका ध्यान नहीं गया। फिर भी जैन कवियों द्वारा वर्णित विरह वेदना में सजीवता, संवेदना और मार्मिकता देखी जा सकती है। 'सन्देश रासक' तो मानों एक विरह काव्य ही है। इसकी नायिका खंभात नगर में जाने वाले अनजान पथिक से सन्देश ले जाने के लिए प्रार्थना करने लगती है, क्योंकि उसका पति उसे विरह में तड़पता छोड़कर खंभात नगर में चला गया है। वह पथिक के समक्ष रो-रोकर अपनी विरह का वर्णन करती है। वियोग जनित उसके प्रेम में सघनता और मार्मिकता है। वह अपने पति को संदेश देते हुए कहती है कि हे पतिदेव! तुमने मेरे जिन अंगों के साथ विलास किया था, हव आज वही तुम्हारी विरहाग्नि में जल रहे हैं। नायिका यह भी कहती है कि विरह रूपी अग्नि ने उसके शरीर की हेमरूपी आभा को जलाकर काला कर दिया है। उसे देखकर ऐसा लगता है कि मानो राहु ने पूरे चांद को ग्रस लिया हो।

''विरहा ग्गिहि कणयंत्रितणु तह सामलिपवन्नु।
पाज्जइ राहि विडंक्विअउ ताराहिबइ सउन्नु॥''

10. गीति तत्व की प्रधानता– जब हम काव्य रूप की दृष्टि से जैन काव्य के बारे में चिन्तन करते हैं तो हमें पता चलता है कि यह गीति काव्य के अधिक निकट है। गेयता इस युग के काव्य की प्रमुख विशेषता थी। इस विशेषता को ध्यान में रखते हुए जैन कवियों ने अपने छन्दों में लय और गेयता का विशेष ध्यान रखा है। पुष्पदन्त और स्वयम्भू ने तो अपने काव्यों के छन्दों में संगीत का पुट भी दिया है। जैन कवियों ने जिस कड़वक छन्द का प्रयोग किया है, वे वस्तुतः नृत्य गीत हैं। यहां तक कि प्रबन्ध काव्य में भी गीति तत्व का समावेश किया गया है। यही नहीं, इन काव्य रचनाओं में चारण गीत के भी उदाहरण देखे जा सकते हैं। स्वयं राम नर्तक के वेश में अनन्त वीर्य के दरबार में गीत गाते हुए चित्रित किए गए हैं। फिर भी इन कवियों ने प्रबन्ध काव्य, मुक्तक काव्य आदि में भी रचनाएं लिखी हैं। प्रबन्ध काव्य के भी दो रूप हैं– चरित काव्य और रोमांटिक काव्य। संक्षेप में इन कवियों का साहित्य में सर्वत्र गीति तत्व देखा जा सकता है।

11. भाषा शैली– जैन कवियों द्वारा रचित प्रबन्ध काव्यों की भाषा शुद्ध साहित्यिक अपभ्रंश है। लेकिन आरम्भिक रचनाओं में अवहट्ठ भाषा का प्रयोग किया गया है, जिसे हम उस समय की लोग भाषा कह सकते हैं। इन काव्यों की भाषा प्रायः नियमों और सिद्धान्तों में बंधी हुई है। परन्तु आरम्भिक ग्रन्थों की भाषा स्वच्छन्द सी दिखाई पड़ती है। आचार्य हेमचन्द्र ने आरम्भिक भाषा को ग्राम्य अपभ्रंश कहा है और बद की भाषा को शिष्ट अपभ्रंश। जैन काव्यों की अभिव्यक्त करने के लिए ये कवि ध्वनि के अनुसार शब्दों का निर्माण कर लेते हैं। इससे भावाभिव्यंजना बड़ी प्रभावशाली बन गई है। वस्तुतः जैन काव्यधारा हिन्दी भाषा के विकास के लिए काफी सहायक है। संवत् 1000 से लेकर संवत् 1500 तक के काल की भाषा सम्बन्धी बाधाओं को दूर करने के लिए जैन साहित्य को पढ़ना नितान्त आवश्यक है।

12. छन्द और अलंकार– जैन साहित्य में शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों का खुलकर प्रयोग किया गया है। विशेषकर अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, उल्लेख, उदाहरण, निदर्शना, विरोधाभास, स्वाभावोक्ति, सन्देह, भ्रान्तिमान आदि अलंकारों का प्रयोग जैन साहित्य में देखा जा सकता है। इसकी उपमाएं बड़ी ही सटीक और सुन्दर बन पड़ी हैं। उदाहरण के रूप में उपमा का एक उदाहरण देखिए–

''रहई द्युमे वणमाल फिह, घणे विज्जु जिंह।''

छन्द विधान की दृष्टि से भी जैन साहित्य काफी समृद्ध है। 'स्वयंभू छन्दस' तथा 'हमेचन्द्र रचित' 'छन्दानुशासन' दोनों ग्रन्थों में अनेक प्रकार के छन्दों का विवेचन किया गया है। इस साहित्य में गण प्रधान, महा प्रधान, माता प्रधान आदि अनेक प्रकार के छन्द देखे जा सकते हैं। प्रायः इन कवियों ने प्रबन्ध काव्यों में कड़वकों का प्रयोग किया है। इसी प्रकार वदनक, अड़िल, विलासिनी, स्कन्दक, दोहा, चौपाइयां, उल्लाला आदि छन्दों का प्रयोग भी देखा जा सकता है। इन साहित्य प्रबन्ध और मुक्तक दो काव्य रूपों में रचित है। प्रबन्ध काव्यों में तो केवल चरित काव्य तथा खण्ड काव्य ही मिलते हैं लेकिन मुक्तक काव्यों में जैन धर्म के नियमों और सिद्धान्तों को आधार बनाकर पाठकों को उपदेश दिए गए हैं। कहीं-कहीं श्रृंगार वर्णन में भी दोहाबद्ध मुक्तक काव्य रचे गए हैं। **'हेमचन्द्र शब्दानुशासन'** से दोहा छंद का एक उदाहरण देखिए-

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि म्हारा कंतु।

हे बहिन! लज्जेंत तु व्यंसि अहु जई भग्गा धरू एंतु॥

अर्थात् ''भला हुआ जो हमारा कंत (पति) मारा गया। यदि वह भाग हुआ घर आता तो मैं अपनी समव्यस्काओं में लज्जित होती।''

लौकिक साहित्य - उपर्युक्त धार्मिक एवं साम्प्रदायिक साहित्य से भिन्न अपभ्रंश साहित्य की भी है। इस धारा के कवियों में अब्दुर्रहमान तथा विद्यापति के नाम उल्लेखित है।

अब्दुर्रहमान (अदहमाण) कृत 'संदेशरासक' क्षीण प्रबंध धर्मा मुक्तक काव्य है। इसमें एक प्रोषितपतिका विरहिणी के विरह का वर्णन है। विरहिणी एक पथिक द्वारा अपने प्रियतम को संदेश भेजती है। वियोगिनी नायिका का संदेश अत्यन्त करुण बन पड़ा है। वह छः ऋतुओं के विरहजन्य कष्टों का वर्णन करती है।

विद्यापति की 'कीर्तिलता' तथा 'कीर्तिपताका' अपभ्रंश की दो उल्लेखनीय कृतियां हैं। 'कीर्तिलता' की रचना कवि ने कीर्तिसिंह के कीर्ति-कीर्तिन के लिए की थी और 'कीर्तिपताका' में शिवसिंह का यशोगान है। विद्यापति ने अपनी भाषा को अवहट्ठ भाषा कहा है। इसमें तत्कालीन मैथिली का भी समावेश है। विद्यापति की भाषा लोक-भाषा से प्रभावित पूर्वी अपभ्रंश का नमूना प्रस्तुत करती है।

आदिकालीन लौकिक काव्यधारा- अपभ्रंश साहित्य में जैनियों, सिद्धों, नाथों तथा अन्य कवियों द्वारा बहुत सा साहित्य किसी-किसी संप्रदाय विशेष या सिद्धांत विशेष से संबंधित है। जैनियों ने अपने द्वारा लिखित साहित्य में जैन धर्म के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया और जन धर्म को और अधिक गौरवपूर्ण स्वरूप प्रदान करने का प्रयत्न किया। सिद्धों और नाथों ने बौद्ध धर्म के सिद्धांतों को अपने साहित्य के माध्यम से जन सामान्य तक पहुंचाया। जहां जैनी अपने धर्म प्रचार में लीन थे तथा सिद्ध और नाथ अपने मतपंथ की प्रतिष्ठा करने में रत थे, वहीं इस युग में ऐसे साहित्य का भी सृजन हुआ जिसे हम शुद्ध साहित्य या लौकिक साहित्य कह सकते हैं। मत-मतान्तरों के प्रतिपादन से दूर लौकिक साहित्य या शुद्ध साहित्य में केवल मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति की गई है। मानव जीवन से संबंधित सूक्ष्म मनोभावों की अभिव्यक्ति के कारण यह काव्य अमर है।

इस युग में अनेक शुद्ध साहित्यिक रचनाओं का प्रणयन हुआ, लेकिन वे अनुपलब्ध हैं। उपलब्ध रचनाओं में सबसे महत्वपूर्ण है अब्दुर्रहमान कृत **'संदेश रासक।'** 'संदेश रासक' में विरहिणी नायिका की पीड़ा का प्रकाशन किया गया है। यह एक विरह काव्य है जिसमें वियोगिनी नायिका एक पथिक के माध्यम से अपनी दयनीय, बेबस अवस्था का संदेश अपने पिय्रतम के पास पहुंचाती है। मार्मिक भाषा में नारी के कोमल मनोभावों का अंकन इस काव्य की उपलब्धि है। अनुभूति की सघनता और अभिव्यक्ति की उत्कृष्टता के कारण यह काव्य बेजोड़ है।

विद्यापति की 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' अपभ्रंश की उल्लेखनीय कृतियां हैं। 'कीर्तिलता' की रचना कवि ने कीर्ति सिंह के कीर्ति-कीर्तन के लिए की थी और 'कीतिपताका' में शिव सिंह का यशोगान है। 'कीर्तिकला' कृति में कवि विद्यपति ने ऐतिहासिक तथ्यों को कहीं भी तोड़ा-मरोड़ा नहीं है। यह कृति तत्कालीन वातावरण का पूरा चित्रण

करती है। कवि ने उस समय की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक स्थितियों का यथार्थ अंकन किया है। सेना, युद्व वर्णन आदि के अतिरिक्त कवि ने नगर, बाजार, वेश्या-विलास आदि के प्रामाणिक चित्र उपस्थित किए हैं। 'कीर्तिलता' में बीच-बीच में गद्य का प्रयोग मिलता है। विद्यपति ने 'कीर्तिलता' की भाषा को अवहट् भाषा कहा है। विद्यापति की भाषा लोक-भाषा से सम्पृक्त होने के कारण अत्यधिक जीवन्त और सप्राण है।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 आदिकाल की सर्वमान्य समय सीमा क्या है।

प्र. 2 किन रचनाकारों की भाषा को संध्याभाषा कहा है।

प्र. 3 'ढोला मारु-रा-वूहा' की नायिका कौन है।

3.4 सारांश

हिंदी साहित्य के आदिकाल में नाथ, सिद्व एवं जैन साहित्य धर्माश्रित होने के कारण तथा रासो साहित्य राजाश्रित होने के कारण सुरक्षित रह गया। परंतु इस काल में इन दोनों काव्य धाराओं से भिन्न लोक साहित्य की भी रचना हुई लेकिन वह लोकाश्रित होने से सुरक्षित नहीं रह सकी। अनेक कारणों से वह साहित्य लुप्त हो गया।

3.5 कठिन शब्दावली

(1) माहुर - विष

(2) वाङ्मय - साहित्य

(3) राउर - आपको

3.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र.1 उ. वि. सं. 1050 से 1375

प्र.2 उ. बौद्ध-सिद्ध

प्र.3. उ. मालवणी

3.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) हिंदी साहित्य उद्भव और विकास - हजारी प्रसाद द्विवेदी जी

(2) हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नरेश मिश्र एवं रामभजन पाण्डेय

3.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 हिंदी साहित्य के आदिकाल का नामकरण स्पष्ट कीजिए।

प्र. 2 आदिकालीन जैन साहित्य पर प्रकाश डालिए।

*****

इकाई-4
आदिकाल का ऐतिहासिक परिदृश्य

संरचना

4.1 भूमिका

4.2 उद्देश्य

4.3 हिन्दी साहित्य के आदिकाल का ऐतिहासिक परिदृश्य

- राजनीतिक परिस्थितियाँ
- सामाजिक परिस्थितियाँ
- सांस्कृतिक परिस्थितियाँ
- धार्मिक परिस्थितियाँ
- साहित्यिक परिस्थितियाँ

स्वयं आकलन प्रश्न

4.4 सारांश

4.5 कठिन शब्दावली

4.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

4.7 संदर्भित पुस्तकें

4.8 सात्रिक प्रश्न

पाठ-4
आदिकाल का ऐतिहासिक परिदृश्य

4.1 भूमिका

इकाई-3 में हमने हिन्दी साहित्य के साहित्य के आदिकाल की पृष्ठभूमि के द्वारा सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य, रासो साहित्य और जैन साहित्य के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की। इकाई-4 के अन्तर्गत हम हिन्दी साहित्य के आदिकाल का ऐतिहासिक परिदृश्य में इतिहास की राजनीतिक परिस्थितियाँ, सामाजिक परिस्थितियाँ, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ, धार्मिक परिस्थितियाँ तथा साहित्यिक परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इकाई-4 के अध्ययन के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि -

1. हिन्दी साहित्य के आदिकाल का ऐतिहासिक परिदृश्य क्या है ?
2. हिंदी साहित्य के इतिहास की राजनीतिक परिस्थितियाँ क्या है?
3. हिंदी साहित्य की सामाजिक परिस्थितियाँ कैसी रही हैं?
4. सांस्कृतिक परिस्थितियाँ क्या है ?
5. धार्मिक परिस्थितियाँ और साहित्यिक परिस्थितियाँ क्या हैं ?

4.3 हिन्दी साहित्य के आदिकाल का ऐतिहासिक परिदृश्य

हिन्दी साहित्य के इतिहास की काल सीमा को लेकर पर्याप्त मतभेद देखा जा सकता है। कुछ विद्वान हिन्दी साहित्य का आरम्भ संवत् 700 से मानते हैं और कुछ संवत् 1050 से। लेकिन जब हम आदिकालीन परिस्थितियों की चर्चा करते हैं, तो प्रायः सभी विद्वान 7वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी तक की परिस्थितियों की विवेचना करते हैं। युगीन परिस्थितियां तत्कालीन साहित्य को अवश्य प्रभावित करती हैं क्योंकि साहित्य ही समाज का दर्पण कहलाता है। साहित्य समाज को और समाज साहित्य को अवश्य प्रभावित करते हैं, यदि किसी समाज की विशेष परिस्थितियों में परिवर्तन होता है तो उसके साहित्य में भी अवश्य परिवर्तन देखने को मिलेगा। अतः हम कह सकते हैं कि परिस्थितियां किसी भी भाषा के साहित्य के लिए आधार कही जा सकती है। जिस समाज अथवा देश में जैसा राजनीतिक और सामाजिक वातावरण होगा, वैसा ही हमें साहित्य पढ़ने को मिलेगा। ऐसी स्थिति में किसी भी युग के साहित्य को भली प्रकार समझने तथा उसका मूल्याकंन करने के लिए तत्कालीन परिस्थितियों की जानकारी नितान्त आवश्यक है। अतः आदिकालीन साहित्य को भली प्रकार समझने के लिए तत्कालीन परिस्थितियों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-

- **राजनीति परिस्थितियां**- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आदिकाल का समय संवत् 1050 से संवत् 1375 तक निर्धारित किया है। कुछ अन्य विद्वान साचार्य रामचन्द्र शुक्ल को तक आदिकाल का काल निर्धारण करते हैं। यह अवधि लगभग 700 वर्षों की बैठती है। आदिकाल की काल सीमा कुछ भी निर्धारित की जाए, लेकिन यह एक कटु सत्य है कि राजनीतिक दृष्टि से यह युग अव्यवस्था, अराजकता, गृह कलह तथा पराजय का युग था। एक ओर विदेशी आक्रमणकारियों का प्रवाह जारी था, दूसरी ओर भारतीय सामन्त परस्पर वैमनस्य के शिकार बने हुए थे। फलस्वरूप भारत की जनता संत्रस्त और उदासीन हो चुकी थी। 647 ई. में सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु हो गई। फलस्वरूप उत्तरी भारत में केन्द्रीय शक्ति का ह्रास होने लगा। उसके काल में भारत पूर्णतया संगठित था। लेकिन अब राजपूतों और जाटों के वैर-भाव के कारण संघर्ष आरम्भ हो चुका था। केन्द्रीय सत्ता के अभाव में पूरा भारत खण्ड-खण्ड राज्यों में विभक्त हो गया।

दूसरी ओर अरब क्षेत्र में नवोदित इस्लाम धर्म सुदूर पश्चिम तथा पूर्व की ओर बढ़ने लगा। उस समय आज का अफगानिस्तान भारत का ही एक अंग था। मुहम्मद बिन कासिम ने मुसलमानों की एक विशाल सेना बनाई और सिंध के राजा दाहिर को पराजित कर वहां अपनी सत्ता स्थापित कर दी। यूं तो विदेशी आक्रमणकारी भारत पर पहले भी

आक्रमण करते रहते थे। लेकिन मुहम्मद बिन कासिम ने देश की भावी राजनीति को अत्यधिक प्रभावित किया। स्थानी राजपूत राजाओं और जाटों ने राजा दाहिर की सहायता नहीं की और वह पराजित हो कर मारा गया। यही नहीं, कुछ सामन्तों ने तो वैयक्तिक स्वार्थों के कारण मुहम्मद बिन कासिम की सहायता भी की। भारत में इस्लाम धर्म के प्रादुर्भावा का प्रथम चरण पूरा हो गया। तत्पश्चात् नवीं शताब्दी तक मुसलमानों ने आगे बढ़ने का साहस नहीं किया। इसका प्रमुख कारण यह था कि भारत की पश्चिमोत्तर सीमाओं पर अभी भी कुछ शक्तिशाली राजा विद्यमान थे। इस युग से यह भी पता चलता है कि जनसाधारण राजाओं के युद्धों में अधिक रुचि नहीं लेता था, क्योंकि तत्कालीन शासक जनता के प्रति पूर्णतया उदासीन बने रहते थे।

दसवीं शताब्दी में गजनी के राज्य पर महमूद गजनबी बैठा। उसने भारत पर अनेक आक्रमण किए। उसने सुन रखा था भारत सोने की चिड़िया है। अतः अपनी सेनाओं को लेकर वह भारत की सीमाओं में प्रेवश कर गया। पंजाब, कांगड़ा, मथुरा, कन्नौज, ग्वालियर और कालिंजर आदि को लूट कर वह अपार धनराशि अपने साथ लेकर गजनी लौट गया। इसके बाद उसने सौराष्ट्र के मन्दिर की अपार धनराशि को लूटा और वापसी गजनी चला गया। वस्तुतः वह भारत में अपने राज्य की स्थापना नहीं करना चाहता था। उसका एकमात्र लक्ष्य था– यहां की धनराशि को लूटकर ले जाना।

दक्षिण भारत का चोल राजा राजेन्द्र इन्हीं दिनों पूर्वी भारत में अपने राज्य का विस्तार कर रहा था। वह यदि गजनवी का सामना करता तो संभवतः गजनवी इतनी लूटमार न कर पाता। ग्यारहवीं–बारहवीं शताब्दी में दिल्ली में तोमर, अजमेर में चौहान तथा कन्नौज में गहड़वालों का सशक्त राज्य था। परन्तु इन तीनों में एकता की भावना नहीं थी अन्दर ही अन्दर तीनों परस्पर वैर–वैमनस्य रखते थे। 12वीं शताब्दी में मुसलमानों और मंगोलों ने एक बार पुनः आक्रमण करने का आरम्भ कर दिए थे। दूसरी ओर गजनी में तुर्की को पराजित करके शहाबुद्दीन मुहम्मद गौरी ने वहां की शासन सत्ता संभाल ली। शीघ्र ही उसने भारत को विजय करने का निश्चय किया। उसने अनेक बार दिल्ली पर आक्रमण किए। परन्तु अंततः कन्नौज के राजा जयचन्द की सहायता से दिल्ली के शासक पृथ्वीराज चौहान को पराजित करने में सफल हो गया। उसने बाद में जयचन्द को मारकर दिल्ली पर मुस्लिम सत्ता को स्थापित कर दिया। वस्तुतः राजपूतों की पराजय का मुख्य कारण उनका वैयक्तिक वैमनस्य था। उनमें व्यक्तिगत वीरता का अभाव नहीं था, परन्तु वे दूरदर्शी नहीं थे।

उपरोक्त विवेचन से यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाती है कि आदिकालीन राजनीतिक परिस्थितियां गृह कलह से युक्त थीं। भले ही स्थानीय हिन्दू राजाओं में वीरता थी, लेकिन वे अपने पड़ोसी राजा से हमेशा वैरभाव रखते थे। संकुचित राष्ट्रीयता संकुचित राष्ट्री के कारण दस–बीस गांवों को ही वे राज समझते थे।

● **सामाजिक परिस्थितियां**– आदिकालीन सामाजिक वातावरण भी पूर्णतया अव्यवस्थित था। कारण यह है कि समय की राजनीतिक परिस्थितियां सामाजिक परिस्थितियों को भी प्रभावित कर रही थीं। तत्कालीन समाज विभिन्न वर्गों जातियों में पूरी तरह से विभक्त हो चुका था। मुसलमानों के आगमन से पूर्व शूद्रों को अस्पृश्य समझा जाता था, लेकिन ब्राह्मणों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। यही नहीं, सामाजिक रीति–रिवाजों और विधि–विधानों का बड़ी कट्टरता से पालन किया जाता था। सच्चाई तो यह है कि समाज की संगठन शक्ति पूर्णतया नष्ट–भ्रष्ट हो चुकी थी। हाल ही में इतिहासकारों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि उत्तरी भारत के ब्राह्मण पूजा–पाठ को छोड़कर खेती आदि अन्य व्यवसायों में भाग लेने लग गए थे। फिर भी समाज में ब्राह्मणों का सम्मान यथावत् बना हुआ था। ब्राह्मणों के पश्चात् क्षत्रियों को समाज में दूसरा स्थान दिया जाता था। लेकिन कहीं–कहीं तो क्षत्रिय ब्राह्मणों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण माने जाते थे। समाज का तीसरा वर्ग वैश्य मुख्यतया व्यापार करते थे। वैश्यों ने भी ब्राह्मणों के अनुसार गौत्र पद्धति को अपनाया। इसी काल में बौद्धों और जैनों ने समाज सुधार के कार्य को अपने हाथों में लिया। इन्होंने अछूत और नीच कही जाने वाले जातियों को अपनाना शुरू कर दिया। आगे चलकर यह कदम और अधिक सुदृढ़ होने लगा। जब मुसलमान इस देश में आकर बस गए तो इसका परिणाम यह हुआ कि तथाकथित निम्न जातियों और वर्गों में भी एकता की भावना उत्पन्न होने लगी।

आदिकालीन समाज में नारी जाति के स्थिति अत्यधिक शोचनीय थी। उसे मात्र भोग्य माना जाता था। इस दृष्टि से नारी क्रय-विक्रय और अपहरण की वस्तु बन कर रह गई थी। सती प्रथा तथा जौहर प्रथा भी प्रचलित थी। इसीलिए आम नारी के लिए पुरुष का जीवन अथवा मृत्यु दोनों ही भयंकर घटना का रूप धारण किए हुए थे।

तत्कालीन राजनैतिक राजपूत वंश कुलीनता और बलिदान की भावना को अत्यधिक महत्व प्रदान करते थे। यही कारण है कि राजपूत नारियां भी अपने पतियों के बलिदान को शौर्य का प्रतीक मानती थीं। राजपूतों में स्वयंवर की प्रथा काफी सक्रिय थी। लेकिन यही स्वयंवर कभी-कभी युद्ध के कारण भी बन जाते थे। मुसलमान भले ही भारत में आकर बस गए थे, लेकिन हिन्दुओं ने उनके प्रति कट्टरता का रुख अपनाया हुआ था। इससे सामाजिक व्यवस्था और हिन्दू संस्कृति की रक्षा तो हुई परन्तु पार्थक्य भाव के कारण राष्ट्रीय एकता को गहरा धक्का लगा। कुल मिलाकर आदिकालीन सामाजिक परिस्थितियां अनुकूल नहीं थीं। राजा और अमीर लोग बहु-पत्नी प्रथा में विश्वास रखते थे, विधवाओं का पुनः विवाह नहीं होता था। मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् हिन्दू समाज धीरे-धीरे कुरीतियों का शिकार होने लगा था।

● **सांस्कृतिक परिस्थितियां** - सांस्कृतिक दृष्टि से इस युग का विशेष महत्व माना जाता है। यह एक निर्विवाद सत्य है कि सम्राट हर्षवर्धन के राज्यकाल में भारतीय संस्कृति का चरमोत्कर्ष हुआ। इस समय भारत पूर्णतया स्वाधीन था और देशवासियों में राष्ट्रीय भक्ति की भावना सुदृढ़ की थी। यही कारण है कि इस काल में मूर्तिकला, संगीतकला, चित्रकला तथा स्थापत्य कला का खूब विकास हुआ। इस काल में मंदिरों का अत्यधिक निर्माण हुआ। भुवनेश्वर, सोमनाथ, जगन्नाथपुरी, कांची, तन्जौर, बेलौर, खुजराहो आदि स्थानों पर भव्य मंदिरों का निर्माण किया गया। इस युग की सभी कलाएं धार्मिक भावना से प्रभावित दिखाई देती हैं। तत्कालीन स्थापत्य कला से प्रभावित होकर अलबरूनी लिखते भी हैं- **''वे (हिन्दू) कला के अत्यन्त उच्च सोपान पर आरोहण कर चुके थे। हमारे लोग (मुसलमान) जब उन्हें (मन्दिरों को) देखते हैं तो आश्चर्यचकित रह जाते हैं।''** लेकिन मुसलमान ईर्ष्या की भावना के कारण भारतीय कलाओं का सम्मान न कर सके। मुसलमानों की ईर्ष्या की भावना के कारण ही इस युग की कला का विनाश हुआ। यवनों के आक्रमण के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति नष्ट-भ्रष्ट की जाने लगी। धीरे-धीरे, मुस्लिम संस्कृति भारतीय कलाओं को प्रभावित करने लगी।

यह एक सर्वविदित सत्य है कि मुसलमान मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी हैं। फलस्वरूप मुस्लिम शासकों के कारण जहां एक ओर मूर्तिकला का विकास अवरुद्ध हो गया, वहां दूसरी ओर मुस्लिम शासक पुराने मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करने लगे। लेकिन यह भी कटु सत्य है कि राजपूत शासकों के काल में युद्धों के कारण मूर्तिकला का समुचित विकास नहीं हो पाया। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आदिकाल में मुक्त और जीवन्त कलात्मक चेतना विकसित नहीं हो सकी।

● **धार्मिक परिस्थितियां**- गुप्त राज्यों के समय में ब्राह्मण धर्म अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गया था। भले ही राजा हर्षवर्धन का झुकाव बौद्ध धर्म की ओर था, लेकिन ब्राह्मण धर्म की अभी भी प्रमुखता बनी हुई थी। इधर तत्कालीन जनता में जैन सम्प्रदाय के प्रति भी सम्मान की भावना बढ़ रही थी। बारहवीं शती में वैष्णव आंदोलन तीव्रता से आगे बढ़ने लगा। साथ ही शैव मत ने एक नवीन रूप धारण कर लिया। तत्कालीन राजपूत शासकों में अहिंसामूलक सिद्धान्तों के प्रति अधिक आस्था नहीं थी। फलस्वरूप शैव मत की अपेक्षा जैन मत पिछड़ता जा रहा था। धीरे-धीरे शैव मत बौद्ध तथा स्मार्त मतों को आत्मसात् करके नाथ मत के नाम से लोकप्रिय हो गया। यहां इस बात का उल्लेख करना जरूरी है कि ब्राह्मण धर्म ने बौद्ध भरसक प्रयास किया, लेकिन बौद्ध सम्प्रदाय का स्वतंत्र अस्तित्व ही बना रहा। भले ही बौद्ध धर्म अनेक शाखाओं में बंट गया लेकिन उसकी जड़ें अभी भी काफी गहरी थीं। उसकी महायान शाखा से ही सिद्धों का विकास हुआ जो अपने तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोना तथा ध्यान-धारणा के कारण छोटी जाति के लोगों को अत्यधिक प्रभावित कर रहे थे। जनता में बौद्ध भिक्षुओं की प्रतिष्ठा हिन्दू साधुओं से किसी प्रकार कम नहीं थीं। वस्तुतः आदि काल में भले ही बौद्ध धर्म में महायान, हीनयान, वज्रयान, सहजयान आदि अनेक शाखाएं बन गई हों परंतु बौद्धों और सिद्धों की एक मजबूत परम्परा ने हिन्दू समाज को अत्यधिक प्रभावित किया।

तत्कालीन बौद्ध धर्म, जैन धर्म और हिन्दू धर्म आदि के अनुयायी अन्धविश्वासों के शिकार बनने लग गए थे। कापालिकों और तान्त्रिकों का प्रभाव सभी वर्गों पर दिखाई देता था। यहां तक कि जैन धर्म भी इन तान्त्रिकों की लपेट में आ चुका था। धार्मिक स्थल व्यभिचार, आडम्बर, अर्थ, लोभ आदि के शिकार बन चुके थे। पुजारी और महन्त धर्म के सच्चे स्वरूप को भूलकर धन संग्रह ओर अधिकार संग्रह की और अधिक ध्यान दे रहे थे। जैन धर्म के अनुयायी पौराणिक कथा-कहानियों को अपने रंग में रंगकर चित्रित करने लगे थे। दूसरी ओर, इस्लाम धर्म के प्रवेश के कारण धार्मिक जगत में एक विशेष परिवर्तन दिखाई देने लगा। भले ही इस युग में इस्लाम धर्म का आगमन हुआ हो, लेकिन इसका प्रचार-प्रसार तो आगे चलकर भक्तिकाल में ही हुआ। आदिकाल में ही मतिभ्रम को नष्ट करने वाली एक दार्शनिक लहर का विकास दक्षिण भारत में हुआ। इस लहर के प्रचारक थे-

शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्क और वल्लभाचार्य। लेकिन 15वीं शताब्दी के अन्त तक इन आचार्यों पर भारतीय जन-जीवन का अधिक प्रभाव नहीं पड़ा।

● **साहित्यिक परिस्थितियां**- भले ही आदिकाल में युद्ध और गृहकलह का वातावरण निरन्तर बना रहा, लेकिन फिर भी इस युग में साहित्य का निर्माण भी निरंतर होता रहा। नौवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक कन्नौज और कश्मीर साहित्यिक रचना के केंद्र बने रहे।

आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, कुन्तक, क्षेमेन्द्र, मम्मट, राजशेखर, विश्वनाथ आदि काव्य-शास्त्री इसी युग में उत्पन्न हुए। इधर भवभूति, श्रीहर्ष और जयदेव आदि संस्कृत के साहित्यकार भी इस काल की देन हैं। अपभ्रंश साहित्य में जैन कवियों ने विशेष योगदान दिया। अमरूक कवि द्वारा रचित 'अमरू शतक' तथा हाल की 'आर्यासप्तशती' अपभ्रंश भाषा की श्रेष्ठ कृतियां इसी काल की हैं। इस काल के सिद्धों ने अपभ्रंश के साथ-साथ लोकभाषा में साहित्य का निर्माण किया। इस युग में हिन्दी भाषा में साहित्य ग्रन्थों की काफी रचना हुई। लेकिन इसे हम देशी भाषा कहें तो अधिक तर्कसंगत होगा। सिद्धों और नाथों ने इसी देशी भाषा में साहित्य निर्माण किया। डिंगल-पिंगल, मैथिली और अवहट्ठ आदिकाल की कुछ अन्य स्वदेशी भाषाएं हैं जिनमें बीसलदेवरासो, पृथ्वीराजरासो जैसी महान काव्य रचनाएं लिखीं गई। भले ही, मुसलमानों के शासनकाल में अरबी-फारसी राजभाषा बन चुकी थी, लेकिन फिर भी इस काल में देशी भाषाओं में काफी रचनाओं का निर्माण हुआ। तत्कालीन अधिकांश कवि दरबारी कवि थे और वे अपने आश्रयदाता को संतुष्ट करने के लिए काव्य रचना करते थे। सम्पूर्ण रासो काव्य 'स्वामिनः सुखाय' की दृष्टि से ही रचा गया। यही कारण है कि इस काल के साहित्य में धर्म उपदेश आदि के साथ-साथ वीर और श्रृंगार का भी खुलकर वर्णन किया गया।

संक्षेप में कह सकते हैं कि आदिकालीन राजनीतिक, सामाजिक तथा परिस्थितियां काफी विकट थीं। सम्पूर्ण उत्तर भारत में छोटे राजे-रजवाड़े निरन्तर आपस में युद्ध करते रहते थे। राष्ट्रीय एकता की चिंता किसी को नहीं थी। छोटी-छोटी लड़ाइयां उस समय की कटु सच्चाई हैं। केवल धर्म तथा साहित्य के क्षेत्र की परिस्थितियां कुछ सीमा तक अनुकूल थीं। आदिकाल में प्रचुर मात्रा में साहित्य का निर्माण हुआ। लेकिन आज केवल वही रचनाएं बच पाई हैं जो जनसाधारण में लोकप्रिय थीं। विशेषकर, पृथ्वीराजरासो, सन्देशासक, विद्यापति कृत पदावली, आल्हाखंड आदि काफी लोकप्रिय रचनाएं रही होंगी।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 आदिकाल में मनोरंजक साहित्य की रचना किसने की ?

प्र. 2 अमीर खुसरो का जन्म कब हुआ ?

प्र. 3 विद्यापति सर्वप्रथम किसके दरबार में रहे ?

4.4 सारांश -

हिन्दी साहित्य के आदिकाल का विकास भी इसी परिवेश तथा पृष्ठभूमि में हो रहा था । युद्धों इस वातावरण में दसवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक हिंदुओं की सत्ता समाप्त होने और मुसलमानों के सत्ता में आने की यात्रा को सहज ही देखा जा सकता है।

4.5 कठिन शब्दावली

(1) कूटि - दिल्लगी

(2) रेख्ता - मिश्रित या मिला जुला

(3) संकुचित - सिकुड़ा हुआ

4.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. अमीर खुसरो ने

प्र. 2 उ. 1253 ई. में

प्र. 3 उ. कीर्ति सिंह

4.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास - श्यामचन्द्र कपूर

(2) हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र

4.8 सात्रिक प्रश्न

(1) पृथ्वीराज रासो की प्रमाणिकता - अप्रमाणिकता का विवेचन कीजिए।

(2) आदिकाल के साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का वर्णन करें।

*****

इकाई–5

आदिकाल की सामाजिक प्रवृत्तियां, काव्य धाराएं तथा रचनाकार तथा रचनाएं

संरचना

5.1 भूमिका

5.2 उद्देश्य

5.3 आदिकाल की साहित्यिक प्रवृत्तियां

5.3.1 काव्य धाराएं

5.3.2 प्रतिनिधि रचनाकार तथा रचनाएं

स्वयं आकलन प्रश्न

5.4 सारांश

5.5 कठिन शब्दावली

5.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

5.7 संदर्भित पुस्तकें

5.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-5

आदिकाल की सामाजिक प्रवृत्तियां, काव्य धाराएं तथा रचनाकार तथा रचनाएं

5.1 भूमिका

इकाई-4 में हमने हिन्दी साहित्य के इतिहास आदिकाल का ऐतिहासिक परिदृश्य में इतिहास की राजनीतिक परिस्थितियाँ, सामाजिक परिस्थितियाँ, सांस्कृतिक परिस्थितियां, धार्मिक परिस्थितियाँ और साहित्यिक परिस्थितियों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की। इकाई-5 के अन्तर्गत हम हिन्दी साहित्य के आदिकाल की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, काव्य धाराएँ, प्रतिनिधि रचनाकार तथा रचनाओं का अध्ययन करेंगे।

5.0 उद्देश्य

इकाई-5 के अध्ययन के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि -

1. आदिकाल की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ कौन-कौन सी है?
2. आदिकाल के अन्तर्गत कौन-कौन सी काव्यधाराएँ आती है।
3. आदिकाल के प्रतिनिधि रचनाकार कौन हैं?
4. आदिकाल के प्रतिनिधि रचनाकारों की कौन-कौन सी प्रसिद्ध रचनाएँ है ?

5.3 आदिकाल की साहित्यिक प्रवृत्तियां

हिंदी साहित्य का आदिकाल समस्त आलोचनाएं को पचाते हुए अपनी कुछ निजी विशेषताएं रखता है। सामान्यत: इस समय की प्रवृत्तियां इस प्रकार हैं

रचनाओं में अप्रामाणिकता - आदिकाल के नाम से जिन रचनाओं का नाम लिया जाता है, उनकी प्रामाणिकता विवादास्पद है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल और मिश्रबंधुओं ने जिन रचनाओं को लिया है उनमें से अधिकांशत: अप्रामाणिक, नोटिस मात्र या संदिग्ध है जैसे पृथ्वीराज रासो अर्द्धप्रमाणिक सिद्ध करने का प्रयास किया है कि उत्तरी भारत के ब्राह्मण पूजा-पाठ को छोड़कर खेती आदि अन्य व्यवसायों में भाग लेने लग गए थे। फिर भी समाज में ब्राह्मणों का सम्मान यथावत बना हुआ था। ब्राह्मणों के पश्चात् क्षत्रियों को समाज में दूसरा स्थान दिया जाता था। लेकिन कहीं-कहीं तो क्षत्रिय ब्राह्मणों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण माने जाते थे। समाज का तीसरा वर्ग वैश्य मुख्यतया व्यापार करते थे। वैश्यों ने भी ब्राह्मणों के अनुसार गौत्र पद्धति को अपनाया। इसी काल में बौद्धों और जैनों ने समाज सुधार के कार्य को अपने हाथों में लिया। इन्होंने अछूत और नीच कही जाने वाले जातियों को अपनाना शुरू कर दिया। आगे चलकर यह कदम और अधिक सुदृढ़ होने लगा। जब मुसलमान इस देश में आकर बस गए तो इसका परिणाम यह हुआ कि तथाकथित निम्न जातियों और वर्गों में भी एकता की भावना उत्पन्न होने लगी।

आदिकालीन समाज में नारी जाति के स्थिति अत्यधिक शोचनीय थी। उसे मात्र भोग्य माना जाता था। इस दृष्टि से नारी क्रय-विक्रय और अपहरण की वस्तु बन कर रह गई थी। सती प्रथा तथा जौहर प्रथा भी प्रचलित थी। इसीलिए आम नारी के लिए पुरुष का जीवन अथवा मृत्यु दोनों ही भयंकर घटना का रूप धारण किए हुए थे।

तत्कालीन राजनैतिक राजपूत वंश कुलीनता और बलिदान की भावना को अत्यधिक महत्व प्रदान करते थे। यही कारण है कि राजपूत नारियां भी अपने पतियों के बलिदान को शौर्य का प्रतीक मानती थीं। राजपूतों में स्वयंवर की प्रथा काफी सक्रिय थी। लेकिन यही स्वयंवर कभी-कभी युद्ध के कारण भी बन जाते थे। मुसलमान भले ही भारत में आकर बस गए थे, लेकिन हिन्दुओं ने उनके प्रति कट्टरता का रुख अपनाया हुआ था। इससे सामाजिक व्यवस्था और हिन्दू संस्कृति की रक्षा तो हुई परन्तु पार्थक्य भाव के कारण राष्ट्रीय एकता को गहरा धक्का लगा। कुल मिलाकर आदिकालीन सामाजिक परिस्थितियां अनुकूल नहीं थीं। राजा और अमीर लोग बहु-पत्नी प्रथा में विश्वास रखते थे, विधवाओं का पुन: विवाह नहीं होता था। मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् हिन्दू समाज धीरे-धीरे कुरीतियों का शिकार होने लगा था।

3. सांस्कृतिक परिस्थितियां- सांस्कृतिक दृष्टि से इस युग का विशेष महत्त्व माना जाता है। यह एक निर्विवाद सत्य है कि सम्राट हर्षवर्धन के राज्यकाल में भारतीय संस्कृति का चरमोत्कर्ष हुआ। इस समय भारत पूर्णतया स्वाधीन था और देशवासियों में राष्ट्रीय भक्ति की भावना सुदृढ़ की थी। यही कारण है कि इस काल में मूर्तिकला, संगीतकला, चित्रकला तथा स्थापत्य कला का खूब विकास हुआ। इस काल में मंदिरों का अत्यधिक निर्माण हुआ। भुवनेश्वर, सोमनाथ, जगन्नाथपुरी, कांची, तन्जौर, बेलौर, खुजराहो आदि स्थानों पर भव्य मंदिरों का निर्माण किया गया। इस युग की सभी कलाएं धार्मिक भावना से प्रभावित दिखाई देती हैं। तत्कालीन स्थापत्य कला से प्रभावित होकर अलबरूनी लिखते भी हैं- **''वे (हिन्दू) कला के अत्यन्त उच्च सोपान पर आरोहण कर चुके थे। हमारे लोग (मुसलमान) जब उन्हें (मन्दिरों को) देखते हैं तो आश्चर्यचकित रह जाते हैं।''** लेकिन मुसलमान ईर्ष्या की भावना के कारण भारतीय कलाओं का सम्मान न कर सके। मुसलमानों की ईर्ष्या की भावना के कारण ही इस युग की कला का विनाश हुआ। यवनों के आक्रमण के फलस्वरूप भारतीय जहां संस्कृति नष्ट-भ्रष्ट की जाने लगी। धीरे-धीरे, मुस्लिम संस्कृति भारतीय कलाओं को प्रभावित करने लगी।

यह एक सर्वविदित सत्य है कि मुसलमान मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी हैं। फलस्वरूप मुस्लिम शासकों के कारण एक ओर मूर्तिकला का विकास अवरुद्ध हो गया, वहां दूसरी ओर मुस्लिम शासक पुराने मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करने लगे। लेकिन यह भी कटु सत्य है कि राजपूत शासकों के काल में युद्धों के कारण मूर्तिकला का समुचित विकास नहीं हो पाया। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आदिकाल में मुक्त और जीवन्त कलात्मक चेतना विकसित नहीं हो सकी।

4. धार्मिक परिस्थितियां- गुप्त राज्यों के समय में ब्राह्मण धर्म अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गया था। भले ही राजा हर्षवर्धन का झुकाव बौद्ध धर्म की ओर था, लेकिन ब्राह्मण धर्म की अभी भी प्रमुखता बनी हुई थी। इधर तत्कालीन जनता में जैन सम्प्रदाय के प्रति भी सम्मान की भावना बढ़ रही थी। बारहवीं शती में वैष्णव आंदोलन तीव्रता से आगे बढ़ने लगा। साथ ही शैव मत ने एक नवीन रूप धारण कर लिया। तत्कालीन राजपूत शास्कों में अहिंसामूलक सिद्धान्तों के प्रति अधिक आस्था नहीं थी। फलस्वरूप शैव मत की अपेक्षा जैन मत पिछड़ता जा रहा था। धीरे-धीरे शैव मत बौद्ध तथा स्मार्त्त मतों को आत्मसात् करके नाथ मत के नाम से लोकप्रिय हो गया। यहां इस बात का उल्लेख करना जरूरी है कि ब्राह्मण धर्म ने बौद्ध धर्म को अपने मे लीन करने का भरसक प्रयास किया, लेकिन बौद्ध सम्प्रदाय का स्वतंत्र अस्तित्व ही बना रहा। भले ही बौद्ध धर्म अनेक शाखाओं में बंट गया, लेकिन उसकी जड़ें अभी भी काफी गहरी थीं।

युद्धों का सजीव वर्णन - वीरगाथा काल के नाम से अभिहित इस काल की रचनाओं का मुख्य विषय वीररस से सम्बन्धित रहा है। वीररस की अभिव्यक्ति के लिए एक राजा का दूसरे राजा के प्रति क्रोधित होना और तत्पश्चात् युद्ध के लिए तत्पर होना, प्राय: सर्वत्र देखा जाता है। युद्धों के अनेक प्रसंग इन रचनाओं में भरे पड़े रहे हैं। इस समय को लोगों का आदर्श ही यह था कि लड़कर मारे जायें। इसी से यह कथन प्रसिद्ध है

बारह बरस लै कूकर जीए अरु तेरह ले जिए सियार।

बरस अठारह छत्रिय जीए आगे जीवन को धिक्कार ॥

उधर लोगों का स्वभाव भी अकारण युद्ध मोल लेने का हो गया था। विवाह आदि तो प्राय: युद्ध के बल पर हो हुआ करते थे। इसी से यह कथन प्रसिद्ध है- 'जाकी बिटिया सुन्दर देखी, तापे जाय धरे हथियार।' अत: युद्धों की प्रधानता के कारण काव्य की सृष्टि करने वाले कवियों के लिए वे उनके जाने-माने अनुभव थे। कवियों ने युद्ध देखे थे। कुछ कवि तो ऐसे ही थे जो स्वयं भी युद्ध में लेते थे। शस्त्र और शास्त्र का साथ-साथ प्रयोग करते थे। यही कारण था कि इस समय के युद्ध वर्णन अत्यंत सजीव हैं।

वीररस की अभिव्यक्ति - आदिकाल की एक प्रवृत्ति वीररस की अभिव्यक्ति की है। युद्ध प्रिय जनता के भाव इस काल के कवियों ने इस प्रकार की वाणी में वर्णित किए हैं जिसमें अपूर्व उत्साह देखने को मिलता है। उत्साह भरी

बातें वीररस की द्योतक हैं। उत्साह वीररस का स्थायी भाव हैं। चन्दबरदाई ने पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज चौहान और उसके अनेक सरदार-सामान्तों के उत्साह को बखान किया है। वे सब प्रसंग वीररस के हैं। यों वीर का वर्णन करते समय प्रसंगवश रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्‌भुत आदि रस भी आ गए हैं परन्तु कवि की दृष्टि वीर भावों की अभिव्यंजना में अधिक रमी है। एक उदाहरण देखिए। संयोगिता को पृथ्वीराज चौहान ले आने में समर्थ हो जाता है। उस समय भयानक युद्ध होता है। पृथ्वीराज के सरदार उसे यह सलाह देते हैं कि वह संयोगिता को लेकर दिल्ली चला जाए, इतने में हम शत्रुओं से लड़कर उन्हें रोके रहेंगे। अतिशय दर्द भरा पृथ्वीराज चौहान अपने उत्साह को व्यक्त करते हुए निडर वाणी में सरदारों को फटकारता है। उसके शब्द वीर की अभिव्यक्ति से पूर्ण हैं-

मति घट्टी सामन्त मरण हठ मोहि दिखावहु।

जम चीठी विणु कवन होइ जठ तुम उ बतावहु ।

श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति- आदिकाल की प्रवृत्तियों में श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति भी ध्यान देने योग्य है। इस काल के वीरों का युद्ध अनेक बार सुन्दर स्त्री के लिए ही होता था। उस स्त्री के श्रृंगार का वर्णन करने में श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति हुई है। श्रृंगार के संयोग और वियोग के अनेक मनोरम प्रसंग आदिकाल में मिलते हैं। श्रृंगारिकता की यह प्रवृत्ति वीरों के पराक्रम निरपेक्ष प्रसंगों में श्रृंगार समाया हुआ मिलता है। श्रृंगार की विस्तार के साथ अभिव्यक्ति पृथ्वीराज रासो में देखते ही बनती है। यह ग्रन्थ विपुल आकार का है। इसमें श्रृंगार के संयोग वियोग के अनेक स्थल आ गए हैं। संयोग शृंगार में रूप चित्रण का बड़ा महत्व है। पृथ्वीराज रासो में पदमावती सर्ग में पदमावती की सुन्दरता का वर्णन कामिनी रूप चित्रित है-

मनहु कला ससिभान कला सोलह सो बन्निय।

बाल बैस, ससि सा चरम अमित रस पिन्निय॥

(पद्‌मावती मानो चन्द्रमा की कला के समान थी। वह सोलह कलाओं से पूर्ण थी। उसकी नयी उम्र थी। चन्द्रमा ने मानो उसी के पास अमृत रस पिया था।)

विप्रलंभ श्रृंगार वर्णन की दृष्टि से भी पृथ्वीराज रासों के अनेक महत्त्वपूर्ण स्थल हैं। वे सब पूर्वराग के वर्णन हैं। अब्दुर्रहमान का संदेश रासक तो विरह का ही एक काव्य है। इसमें एक नायिका अपने परदेश गए हुए पति को पथिक के द्वारा संदेश भिजवाती है। वह विरह में इतनी कमजोर हो गई है कि कनिष्ठका उंगली की जो अंगूठी थी वह अब कलाई में आ जाती है -

संदेसडउ सवित्थरऊ पर मइ कहणु न जाई।

जो कालंगुलि मुंदडठ, सौ बांहडी समाइ॥

(विरह का संदेश बहुत अधिक है पर मुझ पर कहा नहीं जाता। जो अंगूठी मेरी कनिष्ठका की थी, वह अब मेरी बा में समा जाती है।)

अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन की प्रवृत्ति - काव्य में कल्पना और अतिशयोक्ति का समावेश सभी जगह देखने को मिलता है।

पर आदिकाल के साहित्य में उसका प्रयोग बहुत अधिक देखने में आता है। चारण कवियों ने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में बहुत बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया है। उदाहरण के लिए कवि वर्णन करता है कि जिस दिन पृथ्वीराज चौहान का जन्म हुआ उस दिन कन्नौज में खटका हो गया, जिस दिन पृथ्वीराज का जन्म हुआ उस दिन गजनी शहर भग्न हो गया-

ज दिन जनम प्रिथिराजा। वरिग बत्तह कन बज्जह।

ज दिन जन्म पृथिराज। त दिन गज्जन पुर भज्जह।

जयचंद के साथ सेना का युद्ध करते समय कवि कहता है –

पयाल पाल पल्लये। विंगत अंत हल्लयो।

अर्थात सेना के बोझ से दबकर पाताल पिलपिला हो गया है। दसों दिशाओं के मतवाले हाथी हिल गए। अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन का यह प्रवृत्ति श्रृंगार वर्णन में भी दिखलाई देता है। कवि विद्यापति के श्रृंगार वर्णन अतिशयोक्ति से भरे हैं। परमाल रासो तो कल्पना और अतिशयोक्ति की दृष्टि से सबसे ऊपर है।

जन-जीवन की उपेक्षा – आदिकालीन साहित्य में जन साधारण को अनुभूति का विषय नहीं बनाया गया। बौद्ध सिद्धो और नाथों ने जिस उपदेश प्रधान और खंडन-मंडन भरी वाणी का उपयोग किया उसमें समाज की ओर ध्यान देने का अवकाश नहीं था। जैन मुनियों ने जिस रास काव्य की रचना की उनमें भी राजाओं, महान श्रमणों के चरितों का गान किया, उसमें भी जन-जीवन के लिए कोई स्थान नहीं था। चारण कवियों की विस्तार भर अभिव्यक्ति में भी मूलतः राजा, सामन्त, योद्धा और युद्ध ही वर्ण्य विषय रहे हैं, समाज की प्रायः उपेक्षा हुई है। यह नहीं कहा जा सकता कि आदिकाल के कवि का परिवेश समाज कटा हुआ था। कोई भी व्यक्ति समाज से कट कर नहीं रह सकता। जहां स्वामी है वहां सेवक भी है परन्त कवियों की दृष्टि सेवकों को भी ऊंचे रंग में रंगने की रही है।

संकुचित राष्ट्रीयता – आदिकाल (के कवियों ने समूचे राष्ट्र पर दृष्टि नहीं रखी। उनकी राष्ट्रीयता की परिधि बड़ी सीमित रही है। जो जिस राजा के यहां रहता था, उस कवि ने उसी राजा के राज्य को राष्ट्र माना। एक तरह से उस समय के कवि की दृष्टि में राज्य ही राष्ट्र था, पूरा देश नहीं चन्दवरदाई ने पृथ्वीराज चौहान के राज्य को ही अपना माना। जयचन्द के दरबार में भट्ट कंदरा और मधुकर कवि थे। वे कन्नौज के राज्य को ही अपना राष्ट्र मानते। यही कारण था कि आदिकाल का कवि अपने आश्रयदाताओं को युद्ध के लिए तो प्रेरित करता रहा, परन्तु एकता की परिधि का विस्तार नहीं कर सका।

रास औ रासों की प्रचुरता– आदिकाल में ऐसे अनेक ग्रंथ लिखे गए जो रास या रासो ग्रंथ कहे जाते हैं। मुंज रास, उपदेश रसायन रासों, भरतेश्वर बाहुबली रास, जीवन दया रास, चंदनबाला रास आदि रास रचनाएं देखने में आती हैं। उसी तरह पृथ्वीराज रासों, बीसलदेव रासो, खुमाण रासो, परमाल रासो आदि रासो ग्रंथ भी आदिकाल की प्रौढ़ता के परिचायक हैं।

भाषा– आदिकाल के साहित्य में भाषा के प्रयोग की कई प्रवृत्तियां देखने में आती हैं। बौद्धों, सिद्धों, जैनों और नाथों की वाणियों में अपभ्रंश और अपभ्रंश बहुत हिन्दी का रूप ही दिखलाई देता है। आदिकालीन साहित्य में डिंगल-पिंगल भाषाओं की प्रवृत्ति ही प्रधान रही है। डिंगल एक राजस्थानी भाषा है। वास्तव में यह राजस्थान की एक बोली मारवाड़ी का ही साहित्यिक रूप है। चारण कवियों की रचनाएं इसी भाषा में है। डिंगल के सामान्तर या जिसे कुछ लोगों ने डिंगल के

अनुकरण पर प्रयोग में आने वाली भाषा माना है उसका नाम पिंगल है।

आदिकाल में खड़ी बोली के प्रयोग की रूचि भी थोड़ी बहुत देखने में आती है। अमीर खुसरों को यदि आदिकाल में मान लेते हैं तो उनके द्वारा रची गई पहेलियां और मुकरियां खड़ी बोली के प्रयोग को स्पष्ट कर देती है। उनकी रचना से एक पहेली का उदाहरण खड़ी बोली में प्रयोग को स्पष्ट कर देगा –

एक थाल मोती से भरा। सबके सिर पर ओंधा धरा।

चारों ओर वह थाली फिरे। मोती उससे एक न गिरे।

(आकाश)

आदिकाल में थोड़ा बहुत प्रयोग मैथिली भाषा का भी मिलता है। विद्यापति ने अपनी पदावली की रचना मैथिली भाषा में की है। मैथिली अवध के समीप और बिहार के मैथिल जनपद में बोली जाने वाली बोली है। विद्यापति

ने मैथिली की कविता में बड़ी प्रसिद्धि पाई है। उन्हें 'मैथिली कोकिल' के नाम से पुकारा गया है और उन्होंने अवहट्ट भाषा में रचना करके देश भाषाओं के विकास की कड़ी को मजबूत किया है।

छन्द, अलंकार और काव्य रूप - आदिकाल के कवियों की छन्दों के प्रयोग में एक विशेष अभिरुचि दिखलाई देती है। इस समय की अपभ्रंश की रचनाओं में सबसे अधिक प्रयोग दोहा छन्द का देखने में आता है। इस छन्द में प्राय: मुक्तक काव्यों की रचना हुई। कहीं-कहीं कड़वकों के बनाने में भी दोहे का योग है। वैसे इस समय पद्धटिका, अरिल्ल, चौपाई आदि छन्द लिखकर उसके क्रम को तोड़ने के लिए 'घत्ता' छन्द का प्रयोग किया जाता है परन्तु चौपाई का कड़वक और अन्त में दोहे का, पत्ता देने की भी पद्धति देखने में आती है। आदिकालीन कथा-काव्यों में सबसे अधिक प्रयुक्त छन्द चौपाई है। दोहे और चौपाइयों का प्रयोग 'ढोला मारूरा दूहा' में सबसे पहले देखने में आता है छोटे-छोटे छंदों को छोड़कर छप्पय और कवित्त छंदों का प्रयोग पृथ्वीराज रासो में बहुत हुआ है।

अलंकारों के प्रयोग की प्रक्रिया आदिकाल में अपने ढंग की मिलती है। सिद्धों और नाथों ने तरह-तरह का रूपक बांधें हैं। कई बार पनुरुक्ति प्रकाश अलंकार आ जाता है- कवि आसगु ने वर्णन किया है -

जय जय जय पण्मड सरसत्ती।

जय जय जय खिबि पुत्या हत्यी।

यहां 'जय' की कई बार आवृत्ति में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है। बीसलदेव रासो में नरपति नाल्ह ने प्रतीप अलंकार का प्रयोग किया है

राजमती रहैय जी सी इस कुंर नहिं त्रिभुवन माहि।

पृथ्वीराज रासो तो अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा को रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिरेक, संदेह, भांतिमान, अतिशयोक्ति आदि अनेक अलंकार कवि ने प्रयोग किए हैं। उदारहणार्थ-

राहु चंद इकलास पास कोवंड कुरंगा।

कीर बिंबफल जुगल उमय भूतेश अनंगा।

यहां पर विभिन्न अवयवों के अपमानों का नाम लेने से रुपकातिशयोक्ति अलंकार है। राहु और चंद आदि के साथ का संदेह होने से संहेह अलंकार है। काव्य रूप की दृष्टि से आदिकालीन काव्यों में विविधता मिलती है। इस समय प्रबन्ध काव्य और मुक्तम काव्य दोनों के लिखने की प्रवृत्ति मिलती है।

5.3.1 काव्य धाराएं-

संस्कृत अपभ्रंश, डिंगल, पिंगल, मैथिली, खड़ीबोली आदि के साहित्य का निर्माण हुआ। अपभ्रंश हिन्दी की पूर्ववर्तिनी भाषा थी, उसका हिन्दी साहित्य पर, विशेषरूप से आदिकालीन साहित्य पर, विशिष्ट प्रभाव था। इसका परिचय पूर्व-पीठिका के रूप में दिया जा चुका है। यहां आदिकालीन लोकभाषा काव्य अर्थात् डिंगल, पिंगल, मैथिली, खड़ीबोली आदि हिन्दी के साहित्य का परिचय ही अपेक्षित हैं।

डिंगल साहित्य - अपभ्रंश से प्रभावित पश्चिमी राजस्थान की भाषा को डिंगल कहा जाता है। डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। अब तक इसके कई अर्थ लगाए जा चुके हैं। डॉ. एल.पी. टैसी ने इसे अनियमित एवं 'गंवारू भाषा' कहा है। हरिप्रसाद शास्त्री इसे पिंगल की ध्वनि पर गढ़ा हुआ शब्द मानते हैं। उनके अनुसार मूल शब्द डंगल है। पुरुषोत्तम स्वामी डिंगल की व्युत्पत्ति डिम-गल से मानते है। डिम का अर्थ डमरू तथा गल का अर्थ गला हैं। श्री गंजराज ओझा के मत में 'ड' वर्ण की प्रचुरता के कारण से पिंगल के साम्य पर डिंगल कहा गया। मुंशी वीरप्रसाद 'ऊंचे स्वर में पढ़े जाने के कारणश इसे डिंगल माना है।

डिंगल भाषा का विशाल साहित्य गद्य तथा पद्य दोनों रचा गया हैं ऐतिहासिक चरित-काव्यों की दृष्टि से ही साहित्य का विशेष महत्व है। वस्तुत: राजस्थान का डिंगल साहित्य राजस्थान के इतिहास प्रसिद्ध वीरों के अदभुत

पराक्रम से सम्बन्धित गाथाओं का भण्डार हैं डिंगल में ऐतिहासिक चरित-काव्यों की परम्परा का प्रवर्तन श्रीधर कृत 'रणमल्ल छन्द' नामक लघु काव्य से होता है।

पिंगल साहित्य - पिंगल भाषा की उत्पत्ति तथा नामकरण के सम्बन्ध में भी पर्याप्त मतभेद है। आचार्य हजारी द्विवेदी के शब्दों में ''पिंगल छन्द-शास्त्र के रचयिता का नाम है और इसीलिए उस काल की परिष्कृत भाषा (ब्रज- का नाम पिंगल दे दिया गया है।'' कुछ लोगों ने इसका 'पांगुली' या पंगु भाषा' अर्थ भी लगाया हैं आचार्य शुक्ल पिंगल के सम्बन्ध में लिखते हैं - ''प्रादेशिक बोलियों के साथ-साथ ब्रज या मध्यप्रदेश का आश्रय लेकर एक सामान्य साहित्यिक पा भी स्वीकृत हो चुकी थी, जो चरणों में पिंगल भाषा के नाम से पुकारी जाती थी।

रासो काव्य - (वीरगाथात्मक साहित्य)-हिन्दी साहित्य के आदिकाल में रासो-ग्रंथों की प्रधानता मिलती है रासो शब्द विशिष्ट काव्य-पद्धति का सूचक हैं। 'रासो' के अर्थ और उसकी व्युत्पत्ति पर विद्वानों में मतैक्य नहीं हैं। फ्रांसीसी विद्वान गार्सा-द-तासी ने 'रासो' का सम्बन्ध 'राजसूय यज्ञ' से जोड़ा है। आचार्य शुक्ल 'रसायन' शब्द से इसकी उत्पत्ति मानते है महामहोपाध्याय हरि प्रसाद शास्त्री रासो शब्द को 'रासा' से व्युत्पन्न मानते हैं, जिसका अर्थ झगड़ा अथवा युद्ध है। नरोत्तर स्वामी 'रसिक' से इसकी व्युत्पत्ति मानते हैं। आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय 'रासक' (रूपक या अरूपक) शब्द से रासो का सम्बन्ध जोड़ते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी रासो का मूल रूप 'रासक' मानते हैं। उन्होंने रासक को छन्द-विशेष तथा काव्य भेद माना है।

डॉ. माताप्रसाद गुप्त रासो की दो अलग परम्पराएं मानते हैं- (1) नृत्य गीत-परक रासो तथा (2) छन्द-वैविध्य-परक रासो। ये दोनों परम्पराएं अपभ्रंश साहित्य से ही मिलने लगती हैं पहली परम्परा जैन धर्म सम्बन्धी कृतियों की रही है परम्परा में अन्य विषय आते हैं। प्रथम परम्परा की उल्लेखनीय कृति 'बीसलदेव रासो' है और दूसरी परम्परा की महत्वपूर्ण उपलब्धि 'पृथ्वीराज रासो' कही जा सकती हैं। यहां संक्षेप में प्रमुख रासो काव्य उल्लेख हैं -

(1) खुमाण रासो- 'खुमाण रासो' का सर्वप्रथम उल्लेख 'शिवसिंह सरोज' में मिलता है। यह दलपति विजय की रचना है। इस ग्रंथ में आचार्य शुक्ल के अनुसार नवीं शताब्दी के चित्तौड़ नरेश खुमाण के युद्धों का वर्णन है। रचना वीररस प्रधान है। इनमें ग्राह् तथा छप्पय का प्रयोग है।

(2) बीसलदेव रासो - 'बीसलदेव रास अथवा 'बीसलदेव रासो' नरपति नाल्ह की कृति हैं डॉ. गुप्त ने इस रचना की ऐतिहासिकता तथा भाषा आदि पर विचार कर ग्रंथ की रचना-तिथि सन् 1312 के लगभग मानी हैं परन्तु अधिकांश विद्वान् इसका रचना काल 1215 ई. मानने के पक्ष में हैं। 'बीसलदेव रासो' एक सुन्दर विप्रलम्भ-प्रधान गेय रचना है।

(3) पृथ्वी राज रासो - रासो काव्यधारा में पृथ्वीराज रासो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति है। आदिकालीन वीरगाथात्मक रासो काव्य-परम्परा की यह प्रतिनिधि रचना हैं काव्य-वैभव, छन्द-विधान, रस-परिपाक आदि की दृष्टि से यह अपने युग की अनन्य कृति है। इसके रचयिता महाकवि चन्दबरदाई रस-सिद्ध कवि है। है।

'पृथ्वीराज रासो' की प्रमाणिकता - अप्रमाणिकता अर्द्धप्रमाणिकता के संबंध में काफी लम्बा विवाद चला आ रहा है। 'पृथ्वी रासो' के साहित्यिक महत्त्व को सभी विद्वानों ने स्वीकृत किया है। इसमें 12वीं शती के प्रसिद्ध हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान की बाल-लीला, शौर्य-शृंगार, युद्ध-प्रेम तथा जय-पराजय की अमर गाथा वर्णित है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त रासों को सभी दृष्टियों से सफल महाकाव्य मानते हैं।

(4) परमाल रासो (आलाखण्ड)- परमाल रासो (आल्हाखण्ड) के रचयिता जगनिक (जगनायक) कालिंजर के राजा परमार्दिदेव (परमाल) के दरबारी कवि थे। इन्होंने महोबा के दो प्रसिद्ध वीरों-आल्हा तथा ऊदल की वीरता का वर्णन इस वीरगीतात्मक काव्य में किया है।

(5) अन्य वीरगाथात्मक रचनाएं- उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त भट्ट केदार कृत 'जयचंद प्रकाश' तथा मधुकर कृत 'जयसयंक जसचन्द्रिका' ग्रन्थों का उल्लेख किया जाता है। इन दोनों का सम्बन्ध जयचंद से है, पर ये नोटिस मात्र हैं। शाङ्र्गधर के 'हम्मीर रासो' की भी यही स्थिति है। 'प्राकृत पैंगलम' में इसके आठ छन्द मिलते हैं। नल्हसिंह रचित 'विजयपाल रासो' में विजयपाल की दिग्विजय की कथा है। इसके 42 छन्द प्राप्त हुए हैं।

5.3.2 प्रतिनिधि रचनाकार तथा रचनाएं

आदिकालीन साहित्य का प्रारंभिक रूप अपभ्रंश में था जिसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'प्राकृताभास हिन्दी' कहा है। अपनी देशभाषा की प्रशंसा पर स्वीकृति करते हुए विद्यापति ने इसे 'अवहट्ठ' कहा है -

देसिल बअना सब जन मिट्ठा।

ते तैसन जंपओ अवहट्टा।।

वस्तुत: संवत् 1000 के आस पास से ही अपभ्रंश का चलन फीका पड़ गया था। यह अवहट्ठ शौरसैनी अपभ्रंश और ब्रजभाषा के बीच की कड़ी थी। इसमें प्राचीन मैथिली और ब्रजभाषा के तत्व मिले हुए थे। कवियों की कृष्णभक्तिपरक रचनाओं की इस भाषा को बंगाल में ब्रज के साथ सम्बन्धित करके ब्रजबुलि या ब्रजमिश्रित मैथिली नाम दिया गया।

डॉ. हजार प्रसाद द्विवेदी आदि विद्वानों ने कहा कि आदिकालीन गद्य की कृति कृतियां चाहे मध्यदेश के बाहर विकसित हुई परंतु उनकी उन्मुखता मध्यप्रदेश की ओर रही।

आदिकालीन गद्य साहित्य की पर्याप्तलोचना करने वाले इतिहास ग्रंथों का एकदम अभाव है। वैसे साहित्य के इस गद्य पक्ष की ओर अनेक विद्वानों का ध्यान गया है। डॉ. एल.पी. टेसीटेरी ने सन् 1914-16 में 'नोट ऑन ओल्ड वैस्टर्न राजस्थानी' एक निबन्ध लिखकर इस ओर ध्यान दिलाया था। मुनि दिग्गवजय, डा. एच.सी. भयाणी, अगरचन्द नाहटा, मोतीलाल, मेनारिया के प्रयास भी इस दृष्टि से सराहनीय है।

13वीं चौदहवीं शताब्दी में मुस्लिम लोगों ने हिन्दुओं की लोकभाषा को जिसे वे हिन्दवी, हिन्दुई और हिन्दी कहते थे अपनी फारसी भाषा के साथ मिलाकर बोलने और लिखने का व्यवहार के साथ मिलाकर किया और खड़ी बोली में पहेलियां और मुकरियां लिखीं। 'खालिक बारी' नाम से फारसी हिन्दी का कोश भी लिखा। यहीं फारसी मिश्रित हिन्दी थी जिसे दक्षिण में देहलवी, मुसलमानी, शुमाली आदि नामों के साथ दक्खिनी हिंदी कहा गया। इस भाषा में अनेक कवि होने के साथ-साथ गद्य लेखक भी हुए। ख्वाजा बंदानवाज कवि और गद्य लेखक दोनों रूप में प्रसिद्ध साहित्यकार दक्खिनी हिन्दी की उपज है। उत्तरी भारत में भी इस रचना शैली का प्रयोग होने लगा था। इस मिली जुली हिन्दी, फारसी, गुजराती, मराठी से युक्तभाषा को 'रेखता' कहा गया। फारसी में रेख्ता का अर्थ मिश्रित या मिला जुला या टेड़ा है।

'उर्दू' शब्द तुर्की भाषा का है। उसका अर्थ बाजार या छावनी या सैनिक पड़ाव है। दिल्ली में जहां फौजी छावनी या सैनिक पड़ाव था। दिल्ली में जहां फौजी छावनी का क्षेत्र था, लाल किले के पास, वहां के वे सैनिक मिश्रित खड़ी बोली का प्रयोग करते थे। मुगलों के दरबार में उस भाषा को, मिली-जुली भाषा को फौजी छावनी को भाषा यानी जुबाने उर्दू। आदिकालीन गद्य साहित्य की कृतियों का विकासात्मक अध्ययन करने की अपेक्षा तत्कालीन विशिष्ट कृतियों का संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है।

राउलबेल : (11वीं शताब्दी) - आदिकालीन गद्य की यह पहली रचना मानी जाती हैं इसके रचयिता रोडा नामक कवि हैं। यह शिला पर खुदा हुआ काव्य है। मुम्बई के 'प्रिंस ऑफ बेल्स म्यूजियस' में रखा हुआ है। डॉ. एच. सौ. भायाणा ने इसका सम्पादन किया था। बाद में डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने इसका सम्पादन किया और सन् 1962 में छपवाया। कहीं-कहीं यह त्रुटित है और पढ़ने में नहीं आता है। यह 46 पंक्तियों का शिलालेख है। रोड़ा एक जाति है उसका तात्पर्य बन्दीजन: चारण-भाट से है। राउल बेल का अर्थ राजकुल का विलास किया गया है, इसमें किसी राजा की रानियों के विलास का वर्णन है।

उक्ति व्यक्ति प्रकरण – काशी के गाहडवंश के राजा गोविन्द चन्द के सभा पंडित दामोदर पंडित की यह कृति है। यह व्याकरण की शिक्षा देने के लिए लिखी गई रचना है। इसमें पांच प्रकरण हैं। यह कहीं-कहीं त्रुटित रचना है। इसमें व्याकरण की शिक्षा के लिए कारिकाएं हैं और फिर उनका देशभाषा गद्य में उदाहरण हैं। व्याकरण शिक्षा के साथ भाषा प्रयोग की शिक्षा भी इससे मिलती है। इसमें आचार्य गुरु, राज मत्य आदि को पत्र लिखने की विधि तथा व्यापार करने की विधि समझाई गई हैं। इस रचना में तत्कालीन काशी के समाज की अनेक बातों का पता चलता है उदाहरणार्थ–

जे परकेहूं, बुरुभचिंत, सौ आयुणा केई तस मत।

(जो दूसरे कि बुरे को सोचता है वह अपने लिए ही बोलता है।)

अहीर गोख बाग मेलब है।

(अहीर गायों को बाड़े में रोकता है।)

वर्णरत्नाकर : (13वीं-14वीं शताब्दी)– इस रचना के रचयिता ज्योतिशीश्वर ठाकुर हैं। इसमें सात कल्लोल है आठवां कल्लोल अधूरा है। प्राचीन मैथिली भाषा का गद्य है। इसमें अनेक प्रकार के नगर नायिका, ऋतु जैसे भाव भीने वर्णन हैं। इसकी समास बहुल शैली है जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की प्रचुरता है।

मेराजनाम एवं शहपारे – दक्खिन हिंदी के उच्च कोटि के साहित्यकार ख्वाजा बन्दानवाज द्वारा रचित मेराजनाम और शहजारे इनकी गद्य रचनाएं हैं। यह उच्च कोटि के संत, इंसान और लेखक थे। इनका गद्य बहुत स्पष्ट है और आदिकाल को गद्य की विकास की अच्छी पहचान है। उदाहरणार्थ– **'अखड हाल साबिती है सब जाति ईमान बह है।'** (अखंड हाल साबिती यानि पक्कापन है। वह जाती (व्यक्तिगत) ईमान है।

कीर्तिलता, कीर्तिपताका (15वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध) – कीर्तिलता और कीर्तिपताका के रचयिता विद्यापति हैं। आदिकालीन और भक्तिकालीन संधि व कवि के नाते विद्यापति की रचनाओं को आदिकाल में ही समाहित कर लिया जाता है। विद्यापति कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनकी कीर्त्तिलता और कीर्तिपताका रचनाएं भी पद्य में परन्तु कहीं-कहीं उनमें गद्य का भी प्रयोग किया गया है। कीर्तिलता में कीर्तिसिंह और वीर सिंह की शूरता, वीरता का वर्णन हैं दोनों रचनाओं में चरितकाव्य के अनुसार भावाभिव्यक्ति की गई है। विद्यापति का गद्य संस्कृत के तत्सम् शब्दों से मुक्त हैं। उसमें काव्य जैसी तुकान्तता देखने में आती हैं उदाहरणार्थ –

"साहिस दुर्निवार, धनुर्विद्या वैवग्ध्य धनंजयावतार, समाचरित चन्द्रचूड़ चरणसेव, समस्त प्रक्रिया संपूर्ण प्रक्रिया विराजमान महाराजाधिराज श्रीमत् वीरसिंह देव।''

(अप्रतिहत साहस वाले, धनुर्विद्या की चतुरता में अर्जुन के अवतार स्वरूप, पूज्य महादेव के चरणों के सेवक और सब कार्यों में शोभायमान थे श्रीमान वीरसिंह देवा)

धनपाल कथा-(14वीं शताब्बी)– इसमें धनपाल की जीवन की कथा है। तिलक मंजरी के रचयिता धनपाल के जीवन की एक कथा का संकेत है। तिलकमंजरी के अग्नि में जल जाने के बाद पुन: लिखने की घटना है। अत: यह कहा जा सकता है कि आदिकालीन साहित्य पद्य की दृष्टि से जिना समृद्ध था उतना ही गद्य साहित्य का भी अभाव न था।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 अपभ्रंश का भवभूति किसे कहा जाता है।

प्र. 2 'अवधूत गीता' किसकी रचना है।

प्र. 3 हठयोग साधना पर किसने बल दिया।

5.4 सारांश

आदिकाल में अपभ्रंश प्रमुखतः धर्म की भाषा बन गई थी। जैन कवियों ने गुजरात में रहकर अनेक पुराणों को अपभ्रंश में नए रूपों में प्रस्तुत किया था। स्वयंभू, पुष्पदंत, धनपात्र, हेमचंद्र आदि जैनकवियों ने इसमें रचना की थी। तत्कालीन कवियों ने काव्यों में युद्ध यदि आवश्यक है तो करना चाहिए।

5.5 कठिन शब्दावली

(1) दुर्लभ - कठिनता से प्राप्त होने वाला

(2) संदिग्ध - संदेहयुक्त

(3) समविष्ट - व्याप्त

5.6 स्वयं आनलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. पुष्पदंत

प्र. 2 उ. गुरु गोरखनाथ

प्र. 3 उ. नाथ पंथ ने

5.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास- डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'

(2) हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी

5.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 'रासो' साहित्य का विवेचन लीजिए।

प्र. 2 आदिकाल की सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन करें।

*****

इकाई-6
भक्ति साहित्य : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

संरचना

6.1 भूमिका

6.2 उद्देश्य

6.3 भक्तिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

- राजनैतिक परिस्थितियाँ
- सामाजिक परिस्थितियाँ
- धार्मिक परिस्थितियाँ

6.3.1 भक्ति का उद्भव एवं विकास

6.3.2 भक्तिकाल : हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग

स्वयं आकलन प्रश्न

6.4 सारांश

6.5 कठिन शब्दावली

6.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

6.7 संदर्भित पुस्तकें

6.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-6
भक्ति साहित्य : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

6.1 भूमिका

इकाई-5 में हमने हिंदी साहित्य के इतिहास के आदिकाल, की साहित्यिक प्रवृत्तियां, काव्य धाराएं, प्रतिनिधि रचनाकारों तथा उनकी रचनाओं के बारे में विस्तापूर्वक जानकारी हासिल की। इकाई-6 के अन्तर्गत हम हिंदी साहित्य के भक्तिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, राजनीतिक परिस्थितियाँ, सामाजिक परिस्थितियाँ तथा धार्मिक परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे और भक्तिकाल का उद्‌भव एवं विकास, भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग कैसे है, यह अध्ययन करेंगे।

6.2 उद्‌देश्य

इकाई-6 के अध्ययन के पश्चात् हम यह ज्ञात करने में सक्षम होंगे कि -

1. भक्तिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या है ?
2. राजनीतिक परिस्थितियों का महत्व क्या है?
3. सामाजिक परिस्थितियों की समीक्षा कैसे करेंगे ?
4. धार्मिक परिस्थितियों का उद्देश्य क्या हैं।
5. भक्ति का उद्‌भव एवं विकास कैसे हुआ है?

6.3 भक्तिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

पूर्व मध्यकाल का समय सर्वत् 1375 से संवत् 1700 तक माना गया है तथा इसे भक्तिकाल नाम दिया गया है। प्रायः सभी इतिहासकार इस नामकरण को एक मत से स्वीकार करते हैं। इस तथ्य को सभी जानते हैं कि कालखण्ड में इस प्रकार के साहित्य का आविर्भाव हुआ जो भक्ति भावना से पूर्ण है। भाव, भाषा तथा शैली सभी दृष्टियों से यह उच्च कोटि का साहित्य है, इसलिए इस युग के लिए कोई अन्य नाम उचित प्रतीत नहीं होता। भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग माना जाता है। इस काल में निर्गुण और सगुण दो भक्ति धाराएं प्रवाहित हुई। निर्गुण में ज्ञान मार्ग की शाखा और प्रेम की शाखा के अंतर्गत सन्तों और सूफियों के द्वारा काव्य रचनाओं का प्रणयन हुआ। सगुण शाखा के अन्तर्गत रामकाव्य और कृष्ण काव्य लिखा गया। भक्तिकाल में चाहे निर्गुण काव्य लिखा गया हो या सगुण काव्य, लेकिन इस युग के सभी कवियों ने भक्ति को प्रमुखता प्रदान की हैं। ये सभी कवि सत्यता और शुद्धता पर बल देते हैं, लेकिन बाह्य आडम्बरों और रूढ़ियों का विरोध करते हुए दिखाई देते हैं। कहीं-कहीं हमें निर्गुण और सगुण का समन्वय भी देखने को मिलता है। निर्गुणवादी कवियों में सन्त कवियों ने ज्ञान को प्रमुखता दी और सूफी कवियों ने प्रेम को। दूसरी ओर, सगुण कवियों ने माधुर्य और देन्य भावों से भगवान कृष्ण व राम की आराधना की।

निश्चित रूप से इस काल में प्रायः सभी कवियों ने भक्ति-भावना को प्रमुखता प्रदान की है। संत कवियों में नामदेव, कबीर, नानक, रैदास, दादु आदि के नाम गिनवाए जा सकते हैं तो सूफी कवियों में जायसी, कुतुबन, मंजन, उसमान आदि। रामकाव्य के प्रमुख कवि गोस्वामी तुलसीदास हैं तो कृष्ण काव्य के सूरदास, नन्ददास आदि। वस्तुतः कबीर, सूर, तुलसी और जायसी इन चार कवियों की रचनाओं के कारण ही भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग कहा गया है।

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल सन् 1350 से 1650 ई. तक की सीमावधि में व्याप्त हैं। भारतीय इतिहास का यह वह युग था, जब भारतीय पौरुष कुण्ठित हो रहा था और आक्रमणकारी तुर्क-अफगानों एवं मुसलमानों ने इस देश के शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली थी। इस युग की राजनीति, सामाजिक, धर्म आदि क्षेत्र की परिस्थितियां देख लें-

● **राजनीतिक परिस्थितियां**- राजनीतिक दृष्टि से हिन्दी साहित्य का भक्तियुग अशान्ति एवं संघर्षों का युग था। आदिकाल के अन्त तक भारतीय राजनीति तुर्को एवं अफगानों के हाथ में आ चुकी थी। दिल्ली पर गुलाम वंश तथा खिलजी वंश के शासकों का शासन स्थापित हो गया था। इस काल में तुगलक वंश, सैयद वंश तथा लोदी वंश के पठान शासकों ने भारतीय स्वतंत्रतापूर्वक राज्य भी करने लगे। तैमूर लंग का आक्रमण भी भारत पर हुआ। परिणामतः राजनीति दृष्टि से तुर्क-अफगान साम्राज्य बहुत निर्बल पड़ गया था।

बाबर के भारत पर आक्रमण के समय तुकों की केन्द्रीय सत्ता काफी क्षीण हो चुकी थी। उसने दिल्ली के लोदी सुल्तान इब्राहीम लोदी को पानीपत के मैदान में सन् 1526 ई. में परास्त कर दिल्ली पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया तथा अगले वर्ष सन् 1527 में सीकरी के समीप राणा सांगा को परास्त किया। बाबर की विजयों से भारत में एक नए वंश-मुगलवंश का पदार्पण हुआ।

● **सामाजिक परिस्थितियां**-भक्तिकालीन समाज धर्म की दृष्टि से दो भागों में बंटा हुआ था-हिन्दू और मुसलमान समाज हिन्दू समाज में वर्तमान जाति-प्रथा का निर्धारण इसी काल में हुआ। खान-पान तथा विवाह-सम्बन्धी प्रतिबन्धों का भी कठोरता से निर्वाह किया जाने लगा। इस जाति-प्रथा के विरुद्ध रामानन्द तथा कबीर आदि सन्तों ने आवाज उठाई। भक्तिकाल के मध्यान्तर में हिन्दुओं तथा मुसलमानों के परस्पर विवाह-सम्बन्ध के भी उदाहरण मिलते हैं। अकबर की कई रानियां हिन्दू थीं। समाज में विशेषकर मुसलमानों तथा अमीर व्यक्तियों में बहु-विवाह की प्रथा भी थी। हिन्दुओं तथा मुसलमानों में शासित और शासक का सम्बन्ध था। हिन्दुओं की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी।

राजनीतिक परिस्थितियों के कारण स्त्रियों की सामाजिक अवस्था में परिवर्तन हुआ। बाल-विवाह, सती-प्रथा, आदि की समस्याएं सामाजिक जीवन को क्षीण बनाने लगीं।

● **धार्मिक परिस्थितियां** - भक्तिकालीन हिन्दू-धर्म भय तथा आतंक के वातावरण में चल रहा था हिन्दुओं के मन्दिर गिराये जा रहे थे, देवमूर्तियां तोड़ी जा रही थीं तथा धार्मिक ग्रंथ जलाए जा रहे थे।

धार्मिक दृष्टि से इस काल में वैदिक धर्म का अत्यन्त क्षीण रूप मिलता है। सर्व-साधारण में वैष्णव धर्म के विभिन्न रूपों का प्रचार था। शंकर के अद्वैतवाद की प्रतिक्रिया में अनेक भक्ति-प्रधान सिद्धांत का विकास हुआ। रामाजनुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवाद, मध्याचार्य का द्वैतवाद, निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैतवाद, विष्णु स्वामी एवं वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवाद इस काल के प्रमुख भक्ति- प्रधान वाद हैं। विष्णु के अवतारों राम तथा कृष्ण की भक्ति का विकास इस काल की प्रमुख विशेषता है। साथ ही कर्मकाण्ड को भी महत्त्व प्राप्त हुआ। इस काल में सन्तों की परम्परा का विकास हुआ जिन पर सिद्धों तथा नाथों का प्रभाव है इन्होंने अपने-अपने दृष्टिकोण से सन्त-सम्प्रदायों यानि जनभाषा में निर्गुण-भक्ति का प्रचार किया। हिन्दू तथा बौद्ध धर्म के अतिरिक्त सूफी-धर्म का भारत में आगमन और प्रचार इस युग की महत्त्वपूर्ण धार्मिक घटना थी। सूफियों ने हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का प्रचार भी किया। इस युग में भक्ति के उदय के सम्बन्ध में मत-वैभिन्न है। आचार्य शुक्ल इसे हिन्दुओं की पराजय और निराशा का परिणाम मानते हैं जबकि आचार्य द्विवेदी इसे भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के भीतर ही मानने के पक्ष में हैं।

6.3.1 भक्ति का उद्भव एवं विकास

भारतभूमि चिरकाल से भक्ति का क्षेत्र रही है। वेदों, उपनिषदों में भक्ति के सूत्र मिल जाते हैं, किंतु मध्ययुगीन भक्ति के प्रचार-प्रसार का श्रेय दक्षिण भारत को है। हिंदी के कुछ विद्वान हिंदी साहित्य में भक्ति के उदय पर अपने भिन्न-भिन्न मत रखते हैं। कुछ इसे राजनीतिक पराजय का परिणाम मानते हैं तो कुछ इसे एक सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सामाजिक भावना का परिणाम मानते हैं। रामचन्द्र शुक्ल एवं गुलाबराय जी का मत है कि भक्ति आंदोलन पराजित मनोवृत्ति का परिणाम तथा मुस्लिम राज्य की प्रतिष्ठा की प्रतिक्रिया है।

रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं, ''अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की करूणा व शक्ति की ओर जाने के अलावा दूसरा मार्ग ही क्या था।'' गुलाबराय जी लिखते हैं, ''मनोवैज्ञानिक तथ्य के अनुसार हार की मनोवृत्ति में दो बातें संभव है या तो अपनी आध्यात्मिक श्रेष्ठता दिखना या भोग विलास में पड़कर हार को भूल जाना। भक्तिकाल में लोगों में प्रथम प्रकार की प्रवृत्ति पाई गई।'' पाश्चात्य विद्वान लेवेर कार्ड कहना है, 'महाभारत में वर्णित श्वेतद्वीप युरोप को कहा है, इस प्रकार जोड़ते हुए वे भक्ति को यूरोप से उदित मानते हैं।

आचार्य ग्रियर्सन ने कहा 'दूसरी-तीसरी शताब्दी में ईसाई मद्रास में आकर बस गए थे, जिनके प्रभाव से भक्ति का उदय हुआ। प्रो. बिलसन ने, ''कण्य को क्राइस्ट का रूपांतर कहकर अपनी कल्पना शक्ति का परिचय दिया।'' डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार, ''भक्ति दक्षिण में द्रविड़ों से उत्पन्न हुई है।''

बहुत से विद्वानों (ताराचंद, कबीर, हमायूं, आबिद हुसैन आदि) ने, ''भारतीय भक्ति आंदोलन को मुस्लिम संस्कृति की देन कहा है।''

आचार्य हजार प्रसाद द्विवेदी जी उपर्युक्त सभी मतों का तर्कपूर्ण खंडन करते हुए अपना विचार देते हैं। उन्होंने कहा उन विद्वानों की यह बात बड़ी है उपहास्पद है कि मुस्लिम शोषण से यह मनोवृत्ति आई है क्योंकि अगर यह कारण होना दो जब मुसलमान उत्तर भारत में मंदिर तोड़ रहे थे तो दक्षिण भारत में कैसे करने लगे। यदि मुसलमानों के अत्याचारों से भक्ति की भावनाधारा को उमड़ना था तो पहले सिंधु प्रदेश में फिर उत्तर में आनी चाहिए थीं। भक्ति के लिए परम शांत वातावरण अनिवार्य है इसके लिए संघर्षमय वातावरण की आवश्यकता नहीं है। न यह पराजित मनोवृत्ति की उपज है, यदि ऐसा होता तो अंग्रेजों के शोषण के समय ही इस भावना को प्रस्फुटित हो जाना चाहिए था। भक्ति का उदय ईसाई धर्म की भी देन नहीं हो सकता क्योंकि ईसाइयों का भक्तिवाद महायानियों की देन है। ईसाइयों ने स्वयं बौद्ध धर्म की दीक्षा ली।

डॉ. सत्येन्द्र ने द्रविड़ों के द्वारा भक्ति का उदय कहा। उन्होंने कहा 'भगति उपजी द्रविड़ी लाए रामानंद' इस दृष्टि से उनके अनुसार भक्ति का आविर्भाव द्रविड़ों (दक्षिणी वैष्णव भक्त) में हुआ। किंतु वास्तव में द्रविड़ों से अभिप्राय पूरे दक्षिण होगा वे यह नहीं जानते थे।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी भक्ति आंदोलन का श्रेय दक्षिण के आलवार भक्तों को देते हैं, जिनकी संख्या 12 के लगभग मानी जाती है। इसमें से बहुत से भक्त ऐतिहासिक सिद्ध हो चुके हैं। इन भक्तों में 'आन्दाल' नाम की भक्तिन थी जो मीरा के समान कृष्ण को अपना पति मानती थी और जो अंत में कृष्ण में विलीन हो गई। इन भक्तों का समय 8-9- शताब्दी है। अत: भक्ति का पक्ष बहुत प्राचीन समय से चला आ रहा है। 10-11 शताब्दी में 'नाथ मुनि' ने इन भक्तों के भक्तिपूर्ण गीतों का संग्रह करके मंदिरों आदि में कीर्तन किए, जिससे भक्ति परंपरा को नया बल मिला। इसके उत्तराधिकारियों में 'रामानुजाचार्य' ने इस भक्ति को लाकर उत्तर में स्थापित कर दिया। ये विष्णु के उपासक थे और विशिष्टाद्वैत से प्रभावित थे, इन्होंने विष्णु के अवतार राम को लक्ष्य बनाकर भक्ति को एक शाखा (रामभक्ति शाखा) को जन्म दिया।

निम्बार्क, वल्लभाचार्य, विठ्ठलाचार्य आदि से विष्णु के दूसरे अवतार कृष्ण पर आधारित भक्ति आरंभ हो गई और जिसे कृष्णभक्ति शाखा नाम दिया। दूसरी तरफ इसी भक्ति पर जब इस्लाम का प्रभाव पड़ा और सूफी कवियों ने भक्तिपरक वातावरण बनाया तब प्रेम के माध्यम से भक्ति की गई, तभी से प्रेम मार्गी शाखा या सूफी काव्यधारा का आरंभ हुआ। बौद्धमत की महायान एवं हीनहान दो शाखाएं थीं जिसमें से हीनयान वाले मांस-मदिरा, मैथुन, स्त्री सेवन, भोग करने वाले थे जबकि महायान शाखा वाले जप-तप, हठयोग आदि पर बल देते थे, जिनसे संतकाव्य धारा का आरम्भ हुआ।

इसी प्रकार भक्ति की लहर एक किनारे से दूसरे किनारे तक फैलती चली गई और भक्ति का विपुल साम्राज्य व्याप्त हो गया।

6.3.2 भक्तिकाल : हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग

हिन्दी के कतिपय साहित्येतिहासकारों एवं विद्वानों ने भक्तिकाव्य के युग को 'स्वर्णयुग' तथा 'सर्वश्रेष्ठ युग' कहा है। डॉ. श्यामसुन्दर दास के शब्दों में ''जिस युग में कबीर, जायसी, तुलसी, सूर जैसे रससिद्ध कवियों और महात्माओं की दिव्य वाणी उनके अतःकरणों से निकलकर देश के कोने-कोने में फैली थी, उसे साहित्य के इतिहास में सामान्यतः भक्तियुग कहते हैं। निश्चय ही वह हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग था। ''तुलसीदास, सूरदास, नन्ददास, मीरा, रसखान, हितहरिवंश, कबीर इनमें से किसी पर भी संसार का कोई साहित्य गर्व कर सकता है।'' आचार्य ने हजारी प्रसाद लिखते हैं - ''समूचे भारतीय इतिहास में अपने ढंग का अकेला साहित्य है। इसी का नाम भक्ति साहित्य है, यह एक नई दुनिया है।'' भक्तिकाल विषयक यह मान्यता निराधार नहीं है। इस काल का साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य से निश्चय ही उत्कृष्ट हैं। आदिकालीन साहित्य राज्याश्रित कवियों का साहित्य है, जिसमें वीर और श्रृंगार रस की प्रधानता है। आश्रयदाताओं की प्रशस्ति भाट-चारण कवियों का मुख्य लक्ष्य रहा है तथा सर्वोपरि वह साहित्य प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता के विवाद से मुक्त नहीं हो सका। रीतिकालीन श्रृंगार-प्रधानकाव्य में जीवन की स्वस्थ प्रेरणाओं का अभाव है। यह काव्य स्वान्त-सुखाय ही है। आधुनिक युग में काव्य के साथ गद्य का भी महत्त्वपूर्ण विकास हुआ है परन्तु भावप्रवणता और अनुभूति की गहराई की दृष्टि से भक्तिकाल की समता आधुनिक साहित्य भी नहीं कर सकता। हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल हिन्दी काव्य की चतुर्मुखी उन्नति का काल था। इस काल में सन्तकाव्य, सूफी-प्रेमाख्यानककाव्य, रामभक्ति काव्य, कृष्णभक्ति काव्य-इन चार भक्ति प्रधान काव्यधाराओं के अतिरिक्त गंग, रहीम जैसे दरबारी कवियों की रचनाएं एक साथ मिलती हैं। ब्रजभाषा तथा अवधी के काव्य के साथ ब्रजभाषा गद्य का रूप भी इसी युग में प्राप्त होता है। भक्तियुगीन काव्य आदिकालीन तथा रीतिकालीन कवियों के काव्य की भाति राज्याश्रित कवियों का काव्य नहीं है। वह 'स्वान्त' : 'सुखाय' काव्य है और 'बहुजन हिताय' की भावना से प्रेरित है। इस काव्य में आध्यात्मिकता तथा साहित्यिकता का अद्‌भुत समन्वय हैं। कला एवं भाव, अभिव्यंजना तथा अनुभूति दोनों दृष्टियों से भक्तिकाव्य प्रौढ़ एवं उदात्त काव्य है। इसमें भारतीय संस्कृति तथा जन समाज का चित्रण है और इस युग में हिन्दी साहित्य की चिन्ताधारा उच्चभूमि पर प्रतिष्ठित हुई है। भाषा की दृष्टि से भी अपभ्रंश मुक्त इस युग का अवधी तथा ब्रज का साहित्य हिन्दी का गीतिकाव्य का चरम विकास इसी युग में दर्शनीय हैं। सारतः काव्य-रचना के लिए महत् प्रेरणास्रोत, महत उद्देश्य एवं सन्देश, उदात्त विचार, भाव-माधुर्य एवं अनुभूतिगत गाम्भीर्य, दार्शनिक चिन्तन, काव्यरूपों एवं काव्यशैलियों का वैविध्य, अभिव्यंजना की प्रौढ़ता तथा इन सबके समाष्टिगत प्रभाव - इन सभी दृष्टियों से भक्तियुग का काव्य परमोज्ज्वल कहा जा सकता है। सर्वोपरि, भक्तिकाव्य मानवता के दिव्य एवं उदात्त रूपों के विकास को करने वाला है।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 संत कवियों के दार्शनिक सिद्धांतों का मूल आधार क्या है ?

प्र. 2 भक्ति शब्द की उत्पत्ति किस धातु से हुई है।

प्र. 3 'श्रद्धा और प्रेम का नाम भक्ति है किसने कहा था।'

6.4 सारांश

हिंदी साहित्य के काल विभाजन में दूसरे काल को भक्ति काल की संज्ञा से अभिहित किया गया है। भक्तिकाल का समय संवत् 1375 से लेकर संवत् 1700 तक निर्धारित किया गया है। साहित्य समाज की उपज होता है और समाज से कटकर साहित्य की कोई उपयोगिता नहीं रहती। साहित्यकार स्वयं समाज की उपज होता है और सामाजिक परिस्थितियां उसे बनाती हैं।

6.5 कठिन शब्दावली

(1) पाथर - पत्थर

(2) विप्र - पुरोहित

(3) दाउ - बड़ा

6.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. अद्वैत वेदान्त

प्र. 2 उ. भज् धातु से

प्र. 3 उ. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

6.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) भक्ति काव्य में निर्गुण मार्गी संत कवि - डॉ. आभा रानी

(2) हिन्दी संत साहित्य में माधुर्य भाव - रामचरण वर्मा

6.8 सात्रिक प्रश्न

(1) भक्ति आंदोलन के उदय के सामाजिक सांस्कृतिक कारणों पर प्रकाश डालिए।

(2) 'भक्तिमाल' हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है कथन की विवेचना करें।

****

इकाई-7
प्रमुख निर्गुण संत कवि और उनका अवदान

संरचना

7.1 भूमिका

7.2 उद्देश्य

7.3 प्रमुख संत कवि

7.4 संत काव्यधारा की विशेषताएं

- निर्गुण ब्रह्म में विश्वास
- बहुदेववाद एवं अवतारवाद का विरोध
- गुरु महिमा
- जातिपाति का बहिष्कार
- बाह्य आडम्बरों का विरोध
- रहस्य भावना
- श्रृंगारिक अलौकिकता
- भाषा एवं शैली

स्वयं आकलन प्रश्न

7.4 सारांश

7.5 कठिन शब्दावली

7.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

7.7 संदर्भित पुस्तकें

7.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-7
प्रमुख निर्गुण संत कवि और उनका अवदान

7.1 भूमिका

इकाई-6 में हमने हिंदी साहित्य के भक्तिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, राजनीतिक परिस्थितियाँ, सामाजिक परिस्थितियाँ, धार्मिक परिस्थितियाँ, भक्तिकाल का उद्‌भव एवं विकास, भक्तिकाल का नाम हिंदी साहित्य का नाम स्वर्ण युग कैसे पड़ा। यह जानकारी हासिल की। इकाई-7 के अन्तर्गत हम हिन्दी साहित्य के प्रमुख निर्गुण संत कवि और उनके अवदान के साथ-साथ संत काव्यधारा की विशेषताओ का अध्ययन करेंगे।

7.2 उद्देश्य

इकाई -7 का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह ज्ञात करने में सक्षम होंगे कि

1. हिंदी साहित्य के प्रमुख कवि कौन हैं ?
2. हिन्दी साहित्य के इतिहास के निर्गुण कवियों का क्या अवदान है ?
3. संत काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएँ कौन है?

7.3 प्रमुख संत कवि

नामदेव - संतकाव्य के प्रवर्तक महाराष्ट्रीय संत नामदेव (1270-1350 ई.) थे। इन्होंने उत्तर भारत में दीर्घकाल तक अपनी विचारधारा का प्रचार किया तथा हिन्दी में भी अनेक पदों की रचना की। नामदेव के पदों में सन्तकाव्य की अनेक प्रवृत्तियां मिलती हैं। मराठी में रचित इनके अभंगों की संख्या तीन हजार के लगभग है जो 'नामदेव की गाथा' में संकलित है। हिन्दी में नामदेव के 70 के लगभग पद मिलते हैं जो श्री गुरु ग्रंथ साहिब में संगृहीत हैं। इन पदों की भाषा में कबीर की भाषा के समान विविधता है।

रामानन्द - भक्ति-आन्दोलन के प्रभावशाली नेताओं में विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं। संत-मत के प्रचार एवं प्रसार का श्रेय इन्हीं को दिया जाता सकता है। इनकी समयावधि सन् 1368 से 1468 ई. के लगभग स्वीकारी जाती है। 'भक्तमाल' के अनुसार ये रामानुजाचार्य की शिष्य-परम्परा में चौथे शिष्य थे। रामानन्द उदार और स्वतंत्र विचारक थे। इन्होंने जातिगत भेदभाव को तोड़कर निम्नवर्गीय शिष्यों को भी अपने सम्प्रदाय में दीक्षित किया था। सन्त कबीर भी इनकी शिष्य-परम्परा में आते हैं। 'भक्तमाल' में अन्नतदास, पीपा, धन्ना, सेन, रदास आदि सन्तों को रामानन्द की शिष्य-परम्परा में गिना गया है। रामानन्द की हिन्दी रचनाओं में उनकी प्रगतिशील आध्यात्मिक एवं सामाजिक विचारधारा के दर्शन होते हैं।

कबीरदास - संत काव्य में कबीरदास (1398-1518 ई.) एक महान् विचारक एवं प्रतिभाशाली कवि हैं। इनके जन्म के सम्बन्ध में अनेक जनश्रुतियां प्रचलित हैं। कुछ लोग महात्मा कबीर को सरोवर में एक कमल पर अवतरित मानते हैं। एक अन्य किंवदन्ती के अनुसार कबीर का जन्म एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था। वह लोक निंदा के भय से नवजात शिशु को लहरतारा तालाब के पास छोड़ आई। भाग्यवश नीरू-नीमा नामक जुलाहा दंपति उधर से निकलें। शिशु को असहायावस्था में पड़ा देख उनका हृदय करूणार्द्र हुआ। वे उसे उठाकर घर ले आए और वहीं कबीर का पालन-पोषण हुआ।

कबीर के आविभाव और अवसान सम्बन्धी तिथियों के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। 'कबीर-चरित्रबोध' के अनुसार कबीर का अविर्भाव ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा चन्द्रवार संवत् (1455-1398 ई.) में होना स्वीकार किया गया है। 'कबीर परिचई' में अनन्तदास ने कबीर की आयु 120 वर्ष मानी है। अत: कबीरदास का जीवनकाल 1398-1518 ई. ही ठीक हैं।

कबीर स्वामी रामानन्द के शिष्य थे। 'भक्तमाल' में स्वामी रामानन्द के शिष्यों में कबीर को विशिष्ट स्थान दिया गया है। कबीरपंथी मुसलमान शेख तकी को कबीर का गुरु मानते हैं। कबीर विवाहित थे। उनकी पत्नी का नाम लोई था। कमाल और कमाली उनके पुत्र व पुत्री थे। कबीर पर्यटन प्रिय थे और सत्संग के लिए स्थान-स्थान पर जाते थे। कबीर निरक्षर, परन्तु बहुश्रुत थे। कबीर के देहावसान से पूर्व उनके की पंथ का प्रचार हो चुका था और हिन्दू तथा मुसलमान दोनों की जातियों के लोग उनके शिष्य बन गए थे। कबीर अपने युग के क्रांतिकारी व्यक्ति थे। समग्र हिन्दी-साहित्य में उनका व्यक्तित्व अद्वितीय है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मत में वे युगावतार की क्षमता लेकर आविर्भूत हुए थे। वे लिखते हैं - ''वे भगवान की मानो प्रतिमूर्ति थे। वे सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड, आदत से अक्खड़, दिमाग से दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य कर्म से वन्दनीय थे। युगावतार की शक्ति लेकर वे पैदा हुए थे और युग-प्रवर्तक की शिष्य दृढ़ता उनमें विद्यमान थी, इसलिए वे युग-परिवर्तन कर सके।''

'बीजक' कबीर की बानियों का उनके शिष्यों द्वारा किया गया महत्त्वपूर्ण संकलन है। 'साखी', 'शब्द' और 'रमैनी' इसके तीन भाग हैं। 'बीजक' के अतिरिक्त कबीर-साहित्य दास का प्रामाणिक परिचय 'कबीर ग्रंथावली' (सम्पादक श्यामसुन्दर दास), श्कबीर ग्रंथावलीश (सं. पारसनाथ तिवारी) तथा 'श्री गुरु ग्रंथ साहब' में संगृहित पदों में मिलता है।

सन्त रैदास- (रविदास)- मध्ययुगीन सन्त-साधकों में रैदास अथवा रविदास का विशिष्ट स्थान है। इनके जीवन के विषय में प्रामाणिक रूप से अधिक ज्ञान नहीं है। इनका जीवनकाल सन् 1388 ई. से 1518 ई. तक माना जाता है। ये जाति के चमार थे और रामानन्द जी के शिष्यों में इनकी गणना की जाती है। उनका मोक्ष-स्थान काशी का गंगा-घाट है। कबीर को तरह रैदास भी निरक्षर थे, पर भ्रमण-प्रवृत्ति के कारण बहुश्रुत हो गए थे। वे विवाहित थे और उनकी पत्नी का नाम लोना था। रविदास के अनुयायी 'रैदास' कहलाते हैं। गृहस्थजन ही इनके अनुयायी हैं। सन्त-कवि रैदास का कोई ग्रंथ नहीं मिलता। इनके कुछ स्फुट पद ही मिलते हैं जो 'श्री गरुग्रंथ साहिब' तथा अन्य कई संग्रहों में इतस्ततः बिखरे पड़े हैं।

धर्मदास - कबीर के अनुयायियों में बांधवगढ़ निवासी धर्मदास उल्लेखनीय हैं। ये जाति के वैश्य थे। प्रारम्भ में ये सगुणोपासक थे। बाद में कबीर से प्रभावित होकर उनके शिष्य बन गए। डॉ. राजकुमार वर्मा इनका जीवन काल अनुमानतः सन् 1478 से 1543 ई. तक मानते हैं। इनके अनुयायी 'धर्मदासी शाखा' या 'छत्तीसगढ़ी शाखा' के अन्तर्गत आते हैं। इन्होंने कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' के नाम से किया था। इनकी वाणी 'धनी धर्मदास की बानी' नाम से प्रकाशित हुई है। सन्तों में इनकी वाणी का काफी सम्मान रहा है। इनकी भाषा चटपटी और कर्कश न होकर मृदुल एवं सरल है।

गुरुनानक देव- सिक्ख मत के प्रवर्तक गुरु नानक देव अपने समय के महान समाज-सुधारक, चिन्तक एवं सन्तमार्गीय कवि थे। इनका जन्म सन् 1469 में तलवण्डी गांव (जिसे आजकल 'ननकाना साहिब' कहा जाता है, जिला लाहौर, पाकिस्तान) में हुआ। इनके पिता मेहता कालू जी खत्री पटवारी थे। इनकी माता का नाम तृप्ता देवी था। इनका विवाह मूलचंद खत्री की कन्या सुलक्षणी से हुआ। सुलक्षणी से इनके दो पुत्र श्रीचंद और लक्ष्मीचंद हुए। श्रीचंद अपने पिता की तरह प्रसिद्ध संत हुए और उन्होंने 'उदासी सम्प्रदाय' का प्रवर्तन किया। गुरु नानक पर्यटनशील साधु थे। उनका अधिकांश जीवन देश-विदेश के भ्रमण में व्यतीत हुआ। सत्संगति इनकी यात्राओं का उद्देश्य था।

गुरु नानक देव की रचनाएं भक्तिभाव से ओतप्रोत हैं। इनकी वाणी 'श्री गुरुग्रंथ साहिब' में संकलत है। जिन पदों के साथ 'महला प्रकरण' लिखित है, वे रचनाएं गुरुनानक देव रचित हैं। 'जपुजी','आसा दी वार' 'सिद्धगोष्ठी' 'दक्खनी ओंकार', 'रहिरास', 'सोडिला' आदि इनकी रचनाएं हैं। गुरुजी की वाणी पंजाबी, ब्रजभाषा, खड़ीबोली तथा फारसी-मिश्रित-पंजाबी में मिलती है। परवर्ती सिक्ख-गुरुओं में गुरु गोबिंद सिंह, गुरु अर्जुन देव, रामदास, अमरदास, अर्जुन देव, तेगबहादुर भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

दादूदयाल- दादू-पंथ के प्रवर्तक सन्त कवि दादूदयाल (1544-1603 ई.) के जीवन-वृत्त की सामग्री प्रामाणिक रूप में प्राप्त नहीं होती। इनकी जीवन की बहुत सी बातें न्यूनाधिक संदिग्ध एवं मतभेदपूर्ण ही हैं। इनका अवतरण गुजरात प्रदेश के अहमदाबाद नगर में माना जाता है। दादू की जाति के विषय में भी मतभेद हैं। सुधाकर द्विवेदी ने इन्हें मोची वंश से उत्पन्न बतलाया है। डॉ. बड़थ्वाल ने इन्हें गुजराती ब्राह्मण माना है। दादूदयाल के प्रसिद्ध शिष्य रज्जब ने इन्हें धुनिया जाति का कहा है। इनके अन्य शिष्य छोटे सुन्दरदास जी) ने भी इन्हें 'पिंजरा' कहा है, जो धुनिया का ही पर्यायवाची है। अत: यही मत अधिक प्रामाणिक और मान्य प्रतीत होता है। दादू कबीर पंथ के अनुयायी थे। इन्हें कबीरपंथी बुड्ढन बाबा (वृद्धानंद) से दीक्षा मिली थी। दादूपंथ में यह प्रचलित है कि संत दादू विवाहित थे और गरीबदास तथा मिस्कीनदास इनके दो पुत्र थे। सन् 1603 में नाराणा ग्राम (जयपुर) में इनका देहावसान हुआ, जहां उनका स्मारक विद्यमान है। दादू के शिष्यों ने इनकी वाणी का संग्रह 'हरडे वाणी' तथा अंगवधू नाम से किया था।

मलूकदास- मूलकदास (1574-1682 ई.) निर्गुणमत के विख्यात संतों में से हैं। इनका जन्म सुन्दरदास खत्री के घर कड़ा (इलाहाबाद) में हुआ। संत मूलकदास की कई कृतियां उपलब्ध होती हैं जिसमें से 'ज्ञानबोध' तथा 'रतनखान' इनकी श्रेष्ठ रचनाएं मानी जाती हैं। इनमें कवि के दार्शनिक विचारों की सुन्दर व्यंजना हुई है। मूलक ईश्वर को गुणातीत मानते हुए भी निर्गुण के साथ सर्गुण की भी भक्ति करते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा इसलिए इन्हें निर्गुणधारा के स्वच्छन्द कवि मानते हैं। डॉ. बलदेव वंशी ने 'मूलकदास ग्रंथावली' का संपादन किया है।

सुन्दरदास-सन्त-कवियों में सुन्दरदास (1596-1689 ई.) ही ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने समुचित शिक्षा प्राप्त की थी हैं। तथा काव्यकला के नियमों से परिचित थे। इनका जन्म जयपुर राज्य के द्योसा नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम हैं। परमानन्द खण्डेलवाल था। छह वर्ष की अल्पायु में ये दादू के शिष्य हो गए थे। ग्यारह वर्ष की आयु में इन्होंने सनत जगजीवन तथा सन्त रज्जब के साथ काशी की यात्रा कर संस्कृत साहित्य में और दर्शन का विशेष रूप से अध्ययन किया। संस्कृत के अतिरिक्त इन्हें फारसी का भी अच्छा ज्ञान था। इनका अधिकतर जीवन राजस्थान के फतहपुर (शेखावटी) नामक स्थान पर व्यतीत हुआ। अन्य सन्तों की तरह सुन्दरदास भी भ्रमणप्रिय थे और स्थान-स्थान पर घूमकर दादू के उपदेशों का प्रचार करते थे। सन् 1689 में इनका देहावसान हुआ। 'सुन्दर तें विलास' तथा ज्ञानसमुद्र' इनकी महत्त्वपूर्ण कृतियां हैं। 'साखी' और 'शब्द' के अतिरिक्त इन्होंने कवित्त और सवैया छन्दों में भी सुन्दर कविता की हैं।

सन्त-काव्य-परम्परा के उक्त प्रमुख कवियों के अतिरिक्त सन्त-साहित्य के निर्माण में जम्भनाथ (1451-1523 ई.) हें हरिदास निरंजनी (1455-1543 ई.) सींगा (1529-1659 ई.) लालदास (1540-1648 ई.) रज्जब दास (1567-1689 ई.) बावरी साहिबा (1542-1605 ई.) शेख फरीद, अक्षय अनन्य, गरीबदास, सन्त सदना, संत बेनी, संत पीपा, संत सेन आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं। संत-काव्य की यह परम्परा ईसा की 17वीं शताब्दी से आगे बढ़कर 18वीं शताब्दी तक भी सजीव रूप से वर्तमान रही है।

7.3.1 संत काव्यधारा की विशेषताएं

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में भक्ति की दो धाराएं प्रवाहित हुई। सगुण एवं निर्गुण काव्यधारा सगुण काव्यधारा के अन्तर्गत रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा आती है तथा निर्गुण काव्यधारा में ज्ञानाश्रयी शाखा एवं प्रेमाश्रयी शाखा आती है।

निर्गुण काव्यधारा भक्तिकालीन काव्य का वह प्रथम सोपान है जो सन्त काव्य का आधार है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस निर्गुण काव्यधारा को 'निगुर्ण ज्ञानाश्रयी शाखा' नाम से अभिहित किया, किंतु यह नाम उचित नहीं है क्योंकि इससे ज्ञानतत्व की प्रधानता दिखती है। जबकि वास्तव में इस धारा के कवियों ने प्रेम के समक्ष ज्ञान को तुच्छ माना है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'निर्गुण भक्ति साहित्य' नाम से पुकारा किंतु यह नाम भी अनुचित है क्योंकि भक्ति का आलम्बन सगुण आश्रय ही उपयुक्त है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसे 'संत काव्यधारा' नाम दिया जो संगत है। उन्होंने 'संत' का अर्थ बताते हुए कहा ''संत शब्द 'सत्' से बना है जिसका अर्थ, विकासोन्मुख कोई भी सज्जन हो सकता है।'' संकुचित अर्थ में निर्गुणोपासकों को भी संत कहा गया है। इस काव्यधारा की निम्नलिखित विशेषताएं हैं।

● **निगुर्ण ब्रह्म में विश्वास** – संतों के अनुसार ईश्वर सगुण नहीं है वह निर्गुण, निराकार है। उनके अनुसार ब्रह्म फूल की सुगंध से भी पतला, गुणातीत, अजन्मा है, निरंजन है। कबीर ईश्वर निराकार ईश्वर का रूप बताते हुए कहते हैं।

जाके मुंह माथा नहीं, नाहि रूप कुरूप।

पुहप बास ते पातरा ऐसा तत्र अनूप॥

उनके अनुसार सभी वर्गों की जातियों के लिए वह निर्गुण मात्र ज्ञानगम्य है, अविगत है –

निर्गुण राम जप रे भाई,

अविगत की गति लाखिन जाई

● **बहुदेववाद एवं अवतारवाद का विरोध** – संतों पर शंकराचार्य के अद्वैतवाद का प्रभाव शेष था दूसरे इस्लाम के एकेश्वरवाद का भी इन पर प्रभाव पड़ा। संतों के अनुसार अवतार जन्ममरण के बंधन से ग्रस्त होता है। अतः इन्होंने ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सभी का विरोध किया। इनके अनुसार ये सब मायाग्रस्त हैं जबकि परब्रह्म अक्षय, निरंजन है–

अक्षय पुरुष इक पड़े है निरंजन बाकी डार।

त्रिदेवा शाखा भये पड़े हैं निरंजन बाकी डार।

सतुगुरु की महत्ता – संत, गुरु को भगवान से भी अधिक महत्व देते हैं क्योंकि

गुरु गोविंद दोउ खड़े काके लागू पाएं।

बलिहारी गुरू आपने जिन गोबिंद दियो बताएं।

● **गुरु महिमा** – संतों का विश्वास है कि राम की तभी कृपा होती है जब गुरू की कृपा होगी। वे सतगुरू की महत्ता का वर्णन करते हुए कहते हैं –

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार।

लोचन अनंत उघाड़िया अनंत दिखावण हारा॥

उनके अनुसार गुरु भी 'सतगुरु' होना चाहिए अन्यथा परिणाम अत्यंत भयंकर होगा –

जाका गुरु है आंधरा चेला है जाचंध।

अंधा अंधे ठेलिया वन्यू कूप पंडता॥

● **जाति पाति का बहिष्कार** – संतों की दृष्टि में भगवान की भक्ति में सबको समान अधिकार है।

जाति पाति पूछ नहीं कोय।

हरि को भजे सो हरि का होय॥

इस विरोध का विशेष कारण यह है कि सभी संत निम्न जाति से संबंध रखते थे। कबीर जुलाहा थे, रैदास चमार थे। इस ऊंच-नीच के भेदभाव के प्रति इनकी वाणी में प्रखरता थी। इसलिए वे कहते हैं –

तू ब्राह्मण मैं काशी का जोलाहा

चीन्ह न मोर तू गियाना।

● **बाह्य आडम्बरों का विरोध** – संत कवियों ने तत्कालीन समाज में पाई जाने वाली कुप्रवृत्तियों का कड़ा विरोध किया। इन्होंने मूर्ति-पूजा, तीर्थ, व्रत, पूजन, नमाज, हज, धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसा आदि कर्मकांडों का विरोध किया– कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं जिसमें उनका विरोध झलकता है।

बकरी पाती खात है ताकी काढि खाल।
जे जन बकरी खात है तिनको कौन हवाल॥

पाथर पूजै हरि मिले तो मैं पूजू पहार।
ताते तो चाकी भली पीस खाये संसार॥

कांकर पाथर जोरि के मस्जिद लई बनाए।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दई बहिरा हुआ खुदाय॥

मूंड मुड़ाए हरि मिले तो सब कुछ लेइ मुंडाए।
बार-बार के मूंडते महन बैकुंठ जाए॥

दिन को रोजा रखत है रात हनत है गाय।
यह खून वह बंदगी कैसी खुसी खुदाय॥

- **रहस्यभावना** - साधना के क्षेत्र में जो ब्रह्म है। साहित्य के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है। शुक्ल जी कहते हैं ''ज्ञान के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।'' संतों के काव्य में इस प्रवृत्ति को देखा गया है -

जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना कह्यो यह तथ ज्ञानी॥

संतों के काव्य में इस रहस्यवाद के दो रूप मिलते हैं -

भावनात्मक एवं साधनात्मक रहस्यवाद। साधानात्मक रहस्यवाद में साधना के बल पर ईश्वर प्राप्ति की बात मिलती है, इसमें संतों की उलटबासियां ही अधिक मिलती हैं।

आकांसा मुह औधा कुंआ पाताले पनिहारि।
ताकों जल कोई इंसा पीवै विरला आदि विचारि॥

नैया विच नदिया दूबती जाए।

भावनात्मक रहस्यवाद में संत ईश्वर से किसी न किसी रूप में संबंध स्थापित कर लेता है, कभी मां के रूप में, कभी पुत्र के रूप में तो कभी प्रियरूप में।

राम मेरा पिठ मैं पिठ की बहुरिया

मैं तो कूता राम का मुतिया मेरा नाम।
गरे नाम की जेवरी जित खेचूं तित जाऊ॥

हरि जननी में बालक तोरा।
काहे न अवगुन बकसन मोरा॥

अह्म का विसर्जन– संतों के ज्ञान को महत्व दिया था अतः वे ईश्वर प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम अहम् का विसर्जन आवश्यक मानते हैं। उनके अनुसार ज्ञान के माध्यम से ही यह संभव है। वे कहते हैं– **तू तू करता तू भया मुझ में रही न हूं** संतों के अनुसार अहम् का विसर्जन होते ही ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है। तब सर्वत्र ईश्वर ही ईश्वर नजर आता है

लाली तेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन में गई मैं भी हो गई लाल।।

माया से सावधानता – संतों के अनुसार साधक को ईश्वर से दूरी बनाए रखने वाली माया है। इसी माया के कारण जीवन संसार की चकाचौंध में फंसकर रह जाता है। संतों के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी उसी के वशीभूत हैं। यही महाठगिनी है, पापिनी है, डाकिनी है। **'कबीर माया पापिनी जग सू करै हराम'** उनके अनुसार यह रमैया को दुल्हन है।

● **श्रृंगारिक अलौकिकता**– संतों के काव्य में श्रृंगारिक युक्तियां मिलती है संयोग की भी और वियोग की भी लेकिन ये अलौकिकता से जुड़े थे यहां आश्रय और आलम्बन, आत्मा और परमात्मा से जुड़े थे।

दुलहिनी गावहूं मगलाचार
हर घरि आए राजा राम भरतार।।

बहुत दिनों की जोबती बात विवाह राम।
जिव तरसै तुम मिलन को मन नहीं, बिसराम।

भजन एवं नाम स्मरण – संतों ने, भजन एवं नाम स्मरण पर बल दिया है, किंतु इनके अनुसार स्मरण मन ही मन होना चाहिए, इसलिए इन्होंने आत्मज्ञान को महत्व दिया है। इनका जाप भी अजपा जपा है।

नारी संबंधी दृष्टिकोण – संतों ने नारी को माया का प्रतीक माना है। उनके अनुसार कनक–कामिनी दो दुर्लभ घाटियां हैं

नारी की छाई परत अंधा होत भुजंग।
कबिरा तिन की कौन गति नित नारी के संग।।

लोकमंगल की भावना – संतकाव्य में लोकमंगल की भावना यत्रतत्र मिलती है। इन कवियों ने समाज सुधार, कर्मण्यता, आत्मशुद्धि और जीवनगत अनुभवों को अपने काव्य में विशेष महत्व दिया। इन्होंने पारस्परिक वैमनस्य को दूर कर ऐक्य की स्थापना की।

● **भाषा एवं शैली**– संतों की भ्रमणशीलता और निरक्षरता के कारण इनकी भाषा में विविधता पाई जाती है। इनकी भाषा – में पंजाबी, भोजपुरी, ब्रज, मराठी, फारसी, बुंदेली, अवधी आदि सभी के गुण हैं। इनकी भाषा को सधुक्कड़ी नाम दिया गया। इनकी भाषा पर सिद्धों, नाथों, हठयोगियों की भाषा का भी प्रभाव है। जैसे– इंगला, पिंगला, गंगा, जमुना, निरंजन आदि। छंदों की दृष्टि से दोहा–चौपाई का ही अधिक प्रयोग हुआ।

संसार की असारता – इनके अनुसार संसार माया का ही रूप है यह नश्वर है अतः व्यक्ति को इससे मोह नहीं लगाना चाहिए उनके अनुसार

यह संसार कागद की पुड़िया बूंद पड़े गल जाना है।

वे जीव में भी शरीर तत्व को माया से प्रभावित मानते हैं जो नश्वर है पर आत्मतत्व शाश्वत है। जो ईश्वर का अंश है। वे कहते हैं –

पानी केरा बुदबुदा अस मानुस की जाति।
देखत ही छिप जायेंगे ज्यों तारे परभाति ।।

संक्षेप में कहें तो संतों ने निर्गुण ब्रह्म को आधार बनाकर समाज में फैले छूआछूत, भेदभाव, बाह्य आडम्बरों का विरोध कर समाज, में.प्रेम, करूणा, मानवता का पाठ पढ़ाया।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 आलवार संतों की संख्या कितनी थी।

प्र. 2 साखी किस कवि की रचना है।

प्र. 3 भक्तमाल के रचनाकार कौन हैं।

7.4 सारांश

संत काव्य में अनेक धार्मिक संप्रदायों के प्रभात को आत्मसात् किया है, किन्तु इसमें धर्म अथवा साधना की कोई शास्त्रीय व्याख्या नहीं है, इस काव्य में जन - जीवन के सत्य की अभिव्यक्ति अलंकार विहीन सीधी-सीधी भाषा में हुई है। सन्त साहित्य साधना, लोक पक्ष तथा काव्य वैभव सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

7.5 कठिन शब्दावली

(1) गांभीर्य - गंभीरता

(2) वितान - फैलाव

(3) धूल - धूसरित -धूल से लथपथ

7.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. बारह

प्र. 2 उ. कबीर

प्र. 3 उ. नाभादास

7.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) मध्यकालीन हिन्दी साहित्य - डॉ. पन्नालाल

(2) हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

7.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 कबीर का परिचय देते हुए उनकी साहित्यिक विशेषताएँ बताइए।

प्र. 2 प्रमुख संत कवियों का परिचय दीजिए।

*****

इकाई-8

सूफी काव्य का विकास व प्रमुख सूफी कवि

संरचना

8.1 भूमिका

8.2 उद्देश्य

8.3 सूफीकाव्य धारा का विकास

8.3.1 सूफी काव्य के प्रमुख कवि

8.3.2 सूफी काव्य की विशेषताएं

8.3.3 सूफी काव्य में भारतीय संस्कृति एवं लोकजीवन

स्वयं आकलन प्रश्न

8.4 सारांश

8.5 कठिन शब्दावली

8.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उतर

8.7 संदर्भित पुस्तकें

8.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-8

सूफी काव्य का विकास व प्रमुख सूफी कवि

8.1 भूमिका

इकाई-7 में हमने हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रमुख निगुण (संत) कवि और उनके अवदान के साथ-साथ संत काव्यधारा की प्रमुख विशेषताओं की विस्तारपूर्वक जानकारी हासिल की। इकाई-8 के अंतर्गत हम सूफी काव्य धारा का विकास, व प्रमुख सूफी कवि अध्याय के भीतर सूफी काव्य धारा का विकास, सूफी काव्य के प्रमुख कवि, सूफी काव्य की विशेषताएँ, सूफी काव्य में भारतीय संस्कृति एवं लोक जीवन का अध्ययन करेंगे।

8.2 उद्देश्य- इकाई-8 के अध्ययन के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि -

1. सूफी काव्यधारा का विकास कैसे हुआ ?
2. सूफी काव्यधारा के प्रमुख कवि कौन-कौन से हैं ?
3. सूफी काव्य की प्रमुख विशेषताएँ कौन-कौन सी है ?
4. सूफी काव्य में भारतीय संस्कृति एवं लोकजीवन को क्या महत्व है ?

8.3 सूफी काव्यधारा का विकास

अब प्रश्न उठता है, कि वे सूफी कौन थे तथा 'सूफी' शब्द का क्या तात्पर्य है। मिथुललुपत के रचयिता के अनुसार 'सूफी' नामक एक अरबी जाति, अरब के अन्धकार युग में (मुहम्मद से पूर्व) अपने को अज्ञानावृत्त अरबों से पृथक करके मक्का के तत्काल स्थित मन्दिर में पूजोपासना में लग गई थी। इस सूफा जाति का निवासस्थान बनीमजार था। अब्दुलफिदा के कथानानुसार सूफी शब्द की उत्पत्ति 'सूफ' शब्द से हुई है जिससे तात्पर्य यह ज्ञात होता है कि कयामत के दिन ये सूफी लोग सर्वप्रथम पंक्ति में होंगे। सूफी शब्द की उत्पत्ति 'सूफ' शब्द से जिसका अर्थ 'ऊन' होता है, इसीलिए कुछ लोग श्रमान्य मानते हैं, कि 'सूफ लिबासुल अनम्' अर्थात् ऊन जानवरों का वस्त्र है। 'सूफा' शब्द से भी इन शब्द का सम्बन्ध जोड़ा जाता है, जो विशेषत: किसी मन्दिर के प्रांगण में बने हुए चबूतरे की ओर इंगित करता है। सम्भवत: इसका अर्थ मुहम्मद साहब के समकालीन उनके कतिपय सहचरों से है जिनका अधिकांश समय परमात्म-चिन्तन में ही व्यतीत होता था।

कुछ ऐसे भी मत हैं जो सूफी शब्द की व्युत्पत्ति भावात्मक संज्ञाओं से जोड़ते हैं जिसका तात्पर्य, पवित्रता, निष्छलता और ज्ञान से लेते हैं : किन्तु ऐसे भावों के मानने वाले यह नहीं समझा पाते कि सूफी शब्द का प्रयोग एक वर्ग विशेष के लिए ही क्यों किया जाता है। यह शब्द किसी भी इन गुणों से विभूषित व्यक्ति के लिए क्यों नहीं प्रयुक्त होता।

ग्रीक शब्द 'सोफिया' से भी इसका सम्बन्ध जोड़ा जाता है किन्तु प्राचीन यूनानी सूफियों और इस्लामी सूफियों का दार्शनिक सम्प्रदाय एक नहीं है। सौफी एक अशान्त तितर बितर होते समाज तथा राज्य क्रान्ति की उपज थे। जब युनिक नगर पर कोरोश तथा दारयोश का शासन, समाप्त हो गया तो ईरानियों के शासन काल में कुछ यूनानी भिन्न-भिन्न देशों में चले गए। इनमें से कुछ लोग बराबर भ्रमण करते रहते थे। ज्ञानार्चना और तत्व चिन्तन ही उनका कार्य था। पहले से चली आती हुई बातों पर उनका विश्वास कम था। वे ज्ञान की खोज में सदैव रहते थे। सिद्धान्त रूप से सूफी और सौफी भिन्न हैं। राहुल सांस्कृत्यायन जी सूफी शब्द की व्युत्पत्ति सौफी शब्द से ही मानते है।

एक मत सूफी शब्द की उत्पत्ति सफा शब्द से मानता है जिसका अर्थ पवित्रता या शुचिता है। शुद्ध हृदय और आचरण वाले थे जिस प्रकार ईसा मसीह के साथी 'हवारिस' थे। बैधावी (Baidhavi) हवारिस शब्द की व्युत्पत्ति 'हवारा' से मानते हैं। वे 'हवारिस' शुद्ध हृदय होने के कारण कहलाये, इसलिए नहीं कि वे सफेद वस्त्र पहनते थे। निकल्सन, ब्राउन, मारगोलियथ आदि विद्वानों को तथा कई मुस्लिम आलोचकों को भी यह मान्य है। अधिकांश मत सूफ से सूफी की व्युत्पत्ति बतलाते हैं जो कि कई कारणों से समीचीन ज्ञात होता है। उनके वस्त्र एक विशेष प्रकार से ऊन के बने रहते थे जो लोगों का ध्यान अनायास ही आकृष्ट कर सकते होंगे। 'सूफ' एवं 'सूफी' शब्दों के बीच सीधा

शब्द–साम्य दिख पड़ता है। ऊन के वस्त्र धारण करने के कारण वे अपनी निस्पृहता, सादगी तथा स्वेच्छा–दारिद्रय का प्रदर्शन करने में समर्थ थे। सांसारिक वस्तुओं से उन्हें कोई मोह न था। ईश्वर के अनुराग तथा अबाध मिलन में कालयापन करना ही उनका सर्वोच्च आदर्श था। परमेश्वर की उपलब्धि उनका एक मात्र ध्येय था। इस प्रकार धन, वैभव, गृह परिवारादि के प्रति उपेक्षा प्रदर्शित करना सूफियों के लिए स्वाभाविक हो गया था। सादगी की यह वेशभूषा उनका केवल बाहरी परिधान न था। यह सन्यासव्रत सूफियों की मनोवृत्तियों को भी प्रभावित करता रहा। अबुलइसन नूरी ने लिखा है कि ऐसे लोग निर्धन होने के साथ निष्काम भी होते थे।

सूफ के वस्त्र धारण करने वाले लोग सूफियों के पहले भी वर्तमान थे। बपतिस्मा देने वाले सेन्दजान की गणना ऐसे सूफधारियों में की जाती है। यद्यपि उनके लिए सूफी शब्द कभी प्रयुक्त नहीं हुआ। सूफी नाम से अभिहित सर्वप्रथम वे ही लोग थे जो मुहम्मद के अनुयायी मुसलमान थे तथा खलीफाओं (अल सहाबा) के सदाचारपूर्ण जीवन के भक्त थे। उनका झुकाव 'कुरान शरीफ' के शब्दों में अधविश्वास रखने की ओर न था। वे अपने सैयत वैराग्यपूर्ण जीवन तथा गम्भीर ईश्वर प्रेम के आधार पर कुरान के शब्दों में गुम 'इल्में सीना' की खोज किया करते थे। सूफियों के अनुसार कुरान में दो प्रकार का ज्ञान निहित है (1) इल्मे सफीना अर्थात ग्रन्थ निहित ज्ञान और दूसरा (2) इल्मे सीना अथवा हृदय निहित ज्ञान। सूफी विचारधारा के अनुसार प्रथम ज्ञान सर्वसाधारण मुसलमानों के हेतु है तथा दूसरे प्रकार का ज्ञान मुहम्मद साहब के हृदय तक ही सीमित रहा। अत: कुरान के शब्दों को नवीन ढंग से व्यक्त करने के कारण साधारण मुसलमान जनत एवं कट्टर अनुयायी, सूफियों को अपने से भिन्न समझते रहे थे। यद्यपि सूफी तथा सूफीमत के नाम से अमिहित होने वाले महात्मा तथा सम्प्रदाय का जन्म मुहम्मद साहब के जीवन काल के बाद ही हुआ किन्तु इस सम्प्रदाय की कई बातों का सम्बन्ध प्राचीन चली आती हुई शामी भावधारा से स्पष्ट है।

सूफी मत की वास्तविक रूपरेखा समझा सकने एवं सनातन पन्थी इस्लाम तथा सूफी मत में सामंजस्य स्थापित करने के कारण गज्जली 'हुज्तुल इस्लाम' या 'इस्लाम का व्यास' कहा जाता है। इनकी सफल मीमांसा ने सूफी मत को सदा के लिए इस्लाम का एक अंग बना दिया। अब सूफी साधक उदारचेता होने के साथ ही साथ इस्लाम के प्रचारक भी थे। ऐसी ही अवस्था में सूफीमत का प्रवेश भारत में हुआ। ये सूफी साधक स्वतंत्र रूप से तथा मुस्लिम आक्रमणकारियों तथा व्यापारियों के साथ ही साथ भारत में आए और यत्रतत्र अपना प्रचार स्थान बनाकर रहने लगे।

भारत में आने वाले अन्य सूफी सम्प्रदायों में चिश्तिया, नक्शबैदिया, कादिरिया एव सुहरावर्दिया ये चार प्रमुख हैं। चिश्तिया सम्प्रदाय के ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती, नक्शबंदिया के ख्वाजा बाकी निल्लाबेरंग, कादिरिया के सैयद मुसम्मद गौस वाला 'पीर' तथा सुहरवर्दिया शाखा के बहाउद्दीन ज़कारिया एवं हाफिज मुहम्मद इस्माइल की यथेष्ट ख्याति है। हिन्दी के अधिकांश सूफी कवियों का सम्बन्ध चिश्तिया सम्प्रदाय से है। सूफीमत के आविर्भाव एवं विकास का संक्षिप्त विवरण सूफी कवियों की विचारधारा को स्पष्ट करने में सहायक होगा।

8.3.1 सूफी काव्य के प्रमुख कवि

मुल्ला दाऊद- सूफीकाव्य–परम्परा का प्रवर्तन मुल्ला दाऊद द्वारा लिखित 'चन्दायन' से माना जाता है। इसका रचना काल 781 हिजरी (सन् 1375) है। कवि ने अपने आश्रयदाता जूनाशाह तथा समसामयिक बादशाह फिरोजशाह की प्रशंसा इस काव्य में की हैं 'चन्दायन' की कोई भी प्रति पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं है। प्राप्तांशों के आधार पर इसके प्रेमाख्यानक काव्य होने में काई सन्देह नहीं हैं इसकी भाषा अवधी है। इसमें पांच–पांच अर्धालियों के बाद एक–एक दोहे का क्रम है। इस प्रकार 'चन्दायन' अवधी भाषा का पहला काव्य माना जा सकता है।

शेख कुतुबन- शेख कुतुबन ने 1503 ई. में 'मृगावती' शीर्षक प्रेमाख्यानक काव्य की रचना की। इस रचना से इतना हो ज्ञात होता है कि कुतुबन बादशाह हुसैन शाह के समकालीन और आश्रित थे। परन्तु यह हुसैन शासक कौन थे, इस विषय में मतैक्य नहीं।

अधिकांशत: यही मत दिया जाता है कि 'मृगावती' की रचना बंगाल के शासक हुसैनशाह (मृत्यु 905 हिजरी) की छत्रछाया में हुई थी। अभी तक 'मृगावती' का पूर्ण एवं प्रामाणिक पाठक प्राप्त नहीं हो सका। 'मृगावती' में चन्दगिरि के राजकुमार और कंचननगर की मृगावती के प्रथम दर्शन जन्य प्रेम में मृगावती के उड़कर कहीं चले जाने, राजकुमार के योगी होने तथा मार्ग में एक अन्य सुन्दरी को राक्षस से बचाकर उससे विवाह करने और अन्त में मृगावती की प्राप्ति की कथा है।

कुतुबन ने यह भी संकेत किया है कि वे किसी रहस्यमयी बात को प्रकट कर रहे हैं और उसके लिए उन्होंने गाहा, दोहा, अरल, सोरठा, चौपाई आदि का प्रयोग करके उसे देसी शब्दों के माध्यम से सरल बना दिया है। भाषा की दृष्टि से 'मृगावती' की अवधी अधिक ठेठ है। इसमें फारसी, अरबी का प्रभाव कम है। वस्तुत: इस रचना की भाषा तद्भव बहुला तथा मुहावरों एवं लोकोक्तियों से सम्पन्न है।

जायसी - 'प्रेम की पीर' के सर्वश्रेष्ठ गायक सूफी महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी का जन्म 900 हिजरी (सन् 1464) में माना जाता है। कवि की मृत्यु 1542 ई. में मानी जाती है। जायस में रहने के कारण वे जायसी कहलाते थे। अमेठी के राजा के यहां इनका बहुत सम्मान था। जायसी ने अपने पीर के विषय में लिखा है -

''सैयद अशरफ पीर हमारा।'' शुक्लजी के अनुसार ये शेख बुरहान के शिष्य थे। किंवदन्तियों के अनुसार जायसी विवाहित थे। इनकी संतति मकान के नीचे दबकर मर गई थी। जायसी सूफी-सिद्धांतों के साथ हिन्दू धर्म के प्रसिद्ध आख्यानों से परिचित थे। शेरशाह का आश्रय भी इन्हें प्राप्त था। ये शारीरिक सौन्दर्य से हीन थे। कुरूप तथा एक आंख से रहित थे। 'एक आंख कवि मुहम्मद गुनी' कहकर इन्होंने अपना परिचय 'पद्मावत' में दिया है। अमेठी में कवि का देहावसान हुआ। आज भी वहा इनकी कब्र विद्यमान है।

जायसी- कृत रचनाओं की संख्या बीस से अधिक कही जाती है, परन्तु उनकी छ: प्रामाणिक रचनाएं इस प्रकार हैं - 'आखिरी कलाम' 'अखरावट', 'चित्ररेखा' 'मसलनामा', 'कहरनामा' तथा 'पद्मावत' 'आखिरी कलाम' तथा 'अखरावट' इस्लामी एवं सूफी-सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले ग्रंथ हैं। 'चित्ररेखा' कवि को काव्य रचना अति साधारण है इसमें कहीं-कहीं समासोक्ति-पद्धति का भी आश्रय लिया गया है। मसलनामा में साठा अर्द्धलिया तथा बारह दोहे हैं। भगवत्प्रेम तथा नीति विषय बाते हैं। इसका प्रतिपाद्य है। अवध की कहावतों का इसमें सुन्दर प्रयोग मिलता है। 'कहरनामा' तीस पदों की एक प्रेमकथा है। इसमें कहारों के जीवन तथा वैवाहिक वातावरण के माध्यम से जायसी ने आध्यात्मिक विचारों को प्रकट किया है। पद्मावत जायसी की सर्वश्रेष्ठ कृति है। प्रेमाख्यानक सूफीकाव्य-परम्परा में तो यह सर्वश्रेष्ठ है ही, हिन्दी साहित्य में इस प्रबन्धकाव्य का विशिष्ट स्थान है। 'पद्मावत' में प्रेम-चित्रण समासोक्ति-पद्धति, रहस्याभिव्यंजना और विशेष रूप से विरह-वर्णन में जायसी को अद्भुत सफलता प्राप्त हुई। निस्संदेह 'पदमावत' जायसी को कीर्ति का आधार स्तम्भ है।

जायसी ने 'पद्मावत' के माध्यम से सूफीमत के सिद्धान्तों के अनुसार आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यंजना हुई है। इस दृष्टि से विद्वानों ने इसे 'रूपक' अथवा अन्योक्ति कहा है। रचना के अन्त में रूपक के अर्थ का इन शब्दों में संकेतित किया गया है।

तन चितउर मन राजा कीन्हा,
हिय सिंघल बुद्धि पद्मिनी चीन्हा।
गुरू सुआ, जेहि पंथ दिखावा,
बिनु गुरू जगत को निर्गुण पावा।
नागमती यह दुनिया धंधा,
वाचा सोई न ऐहि चित बाधा।
राघव दूत सोइ सैतानू,
माया अलाऊदी सुलतानु।

अर्थात् चित्तौड़ शरीर का प्रतीक है, सिंहलद्वीप हृदय का। रत्नसेन मन है तो पद्मिनी बुद्धि (प्रज्ञा) का प्रतीक है। शुक गुरु है, नाममती, राघवदूत तथा अलाउदीन, क्रमश, दुनियाधंधा, शैतान एवं माया के प्रतिरूप हैं। इस प्रकार 'पद्मावत' एक रूपक-काव्य है जिसमें आध्यात्मिक अर्थ की व्यंजना हुई हैं परन्तु सारे कथानक में प्रतीक-योजना का सफल निर्वाह नहीं हो पाया। उदाहरणार्थ यदि पद्मिनी को बुद्धि माना जाए तो ईश्वर का प्रतीक कौन है? यदि ऐसे ईश्वर मान लिया जाए तो पद्मिनी की प्राप्ति के बाद रत्नसेन नागमती-दुनिया-धन्धा की ओर क्यों प्रवृत्त होता है? इधर नागमती के चरित्र की उदारता एवं उच्चता उसे दुनिया-धंधा मानने की स्वीकृति नहीं देती। वस्तुत: 'पद्मावत' को 'अन्योक्ति' न मान 'समासोक्ति' मानना ही सम्यक प्रतीत होता है।

मंझन- 'मधुमालती' के रचयिता कवि मंझन के जीवन के विषय में अधिक ज्ञात नहीं है। इनकी रचना 'मधुमालती' प्राप्त होती है। इसमें कनेसर के राजकुमार मनोहर तथा महारास नगर की राजकुमारी मधुमालती की प्रेमकथा है।

इस काव्य में विरह-वर्णन बड़ा मार्मिक बन पड़ा है तथा आध्यात्मिक भावों की व्यंजना प्रकृति के माध्यम से हुई हैं। समासोक्ति-पद्धति का यहां भी बड़ा प्रयोग हुआ है। यह रचना अवधी भाषा से हुई है। समासोक्ति-पद्धति का यहां भी प्रयोग हुआ है। यह रचना अवधी भाषा में है। इसकी शैली में सरलता एवं सरसता का गुण विद्यमान है।

सूफी कवियों में 'चित्रावली' के लेखक उसमान को भी प्रसिद्धि मिली है। इन्होंने अपना उपनाम 'मान' भी लिखा है। ये गांजीपुर के रहने वाले थे और मुगल सम्राट-जहांगीर के शासनकाल में विद्यमान थे। इनके पिता का नाम शेख हुसैन था। उसमान शाह निजामुद्दीन चिश्ती की शिष्य-परम्परा में हाजी बाबा के शिष्य थे। स्थायी यश प्राप्त करने की इच्छा से प्रेरित होकर इन्होंने सन् 1613 में 'चित्रावली' की रचना की। इन्हें अपनी कृति पर गर्व था तथा इन्हें अन्य कवियों को इससे अच्छे प्रेम लिखने के लिए ललकारा है।

मोरी बुद्धि जहां लहु अही।
जहां लहु सुझि कथा मैं कही।
जाकी बुद्धि होई अधिकाई।
आन कथा एक कह बनाई॥

'चित्रावली' का कथानक कवि कल्पना-प्रसूत है। 'कथा एक में लिए उपाई' से यही ध्वनित होता है। चित्रावली की रचना 'पद्मावत' के अनुकरण पर हुई है। इसमें नेपाल के राजकुमार सुजान तथा राजकुमारी चित्रावली की प्रेमकथा वर्णित है। इस प्रेमकथा के माध्यम से सूफी-सिद्धान्तों की सुन्दर व्यंजना हुई हैं विरह-वर्णन तथा षड्ऋतु वर्णन काफी सुन्दर बन पड़े हैं। सौन्दर्य वर्णन एवं भाव-व्यंजना की दृष्टि से यह कृति सफल है। भाषा अवधी तथा शैली दोहा-चौपाई की है।

उपर्युक्त सूफी कवियों के अतिरिक्त सूफी-प्रेममार्गी काव्यधारा में शेख नबी की उल्लेखनीय भूमिका है। इनकी रचना 'ज्ञानदीप' है। इस काव्यधारा के दो अन्य कवि कासिमशाह तथा नूरमुहम्मद हैं। इनका रचनाकाल रीतिकाल में आता है, परन्तु ये सूफी कवि थे और इन्होंने आख्यानात्मक काव्य-रचनाएं लिखी है। कासिमशाह दरियाबाद के रहने वाले थे तथा दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के समकालीन थे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ-हंस जवाहिर है। नूरमुहम्मद जौनपुर जिले के निवासी थे और मुम्मदशाह के समकालीन थे। इनकी 'इन्द्रावती' में कालिंजर के राजकुमार और आगमपुर की राजकुमारी इन्द्रावती की प्रेमकथा है। इस कृति का रचनाकाल सन् 1744 माना जाता है। इस ग्रंथ को सूफी-पद्धति का अन्तिम ग्रंथ माना जाता है। नूरमुहम्मद की एक अन्य रचना 'अनुराग बांसुरी' है, इसका विषय तत्त्वज्ञान से सम्बन्धित है।

वाला 'पीर' तथा सुहरवर्दिया शाखा के बहाउद्दीन जकारिया एवं हाफिज मुहम्मद इस्माइल की यथेष्ठ ख्याति है। हिन्दी के अधिकांश सूफी कवियों का सम्बन्ध चिश्तिया सम्प्रदाय से है। सूफीमत के आविर्भाव एवं विकास का संक्षिप्त विवरण सूफी कवियों की विचारधारा को स्पष्ट करने में सहायक होगा।

8.3.2 सूफीकाव्य की विशेषताएं-

मध्यकालीन निर्गुण भक्तिकाव्य की दूसरी शाखा 'प्रेमाख्यानक काव्य' अथवा 'सूफी कवियों ने प्रेमतत्व को प्राधान्य देकर काल्पनिक वृत्तों अथवा लोक प्रचलित प्रेमकथाओं को आधार बनाकर प्रेमाख्यान काव्यों की रचना की है। इनमें हृदय पक्ष अथवा प्रेमतत्व इतना उज्ज्वल और उजागर रूप में व्यक्त हुआ है कि वह भक्तिकाल के अंतर्गत समाहित होकर 'प्रेमाख्यानक काव्य' अथवा 'सूफीकाव्य' का अभिधान पाता है। सूफियों के अतिरिक्त भी कतिपय कवियों ने प्रमाख्यानकों की रचना की है पर उनमें भक्तितत्व आलोकित नहीं होता। मध्यकालीन भक्ति साहित्य में प्रेम के साथ-साथ धर्म एवं अध्यात्म-तत्व का समन्वय सूफी प्रेमाख्यानकों में ही मिलता है। अत: निर्गुण काव्य की इस दूसरी काव्यधारा के अन्तर्गत सूफी कवियों द्वारा रचित प्रेमाख्यानकों को ही विवेच्य बनाया गया है।

भक्तिकाल की प्रेममार्गी शाखा को 'सूफीकाव्य' नाम से अभिहित किया गया। 'सूफी' शब्द को लेकर आलोचकों ने अनेक अटकलें लगाई। कुछ विद्वानों के अनुसार सूफी शब्द 'सूफ' से बना है जिसका अर्थ है ऊन अर्थात् जो ऊनी वस्त्र पहनते थे वह सूफी कहलाए। कुछ विद्वानों के अनुसार सूफी शब्द 'सुफ्फा' से बना है जिसका अर्थ है चबूतरा अर्थात् जो फकीर मस्जिद के चबूतरे पर बैठते थे उसी को सूफी कहा गया। कुछ विद्वानों ने 'सफ' से इसकी उत्पत्ति मानते हुए कहा जो लोग कयामत के दिन पंक्ति में सबसे आगे खड़े होते हैं वे सूफी है। कुछ विद्वान 'सोफिया (ज्ञान) से इसकी उत्पत्ति मानते हुए कहते हैं अर्थात जिन्हें ज्ञान प्राप्त था और सफेद वस्त्र पहनकर मस्जिद में बैठते थे वे सूफी कहलाए। इसी प्रकार कच्छ विद्वानों के 'सफा' (पवित्र से सूफी शब्द को जोड़ा और कहा जो आचरण से पवित्र थे और ईश्वर के साधक थे।

इन सूफियों ने ईश्वरोपासना में संतों की भांति निर्गुण ब्रह्मापासना की पद्धति को अपनाया। इनकी काव्यगत विशेषताएं -

ईश्वर का स्वरूप - सभी सूफी मुसलमान अत: इस्लामी प्रभाव के कारण ये एकेश्वरवाद में विश्वास रखते थे। इनका ईश्वर निर्विकार, निर्गुण था। वे प्रेम की पीड़ा के रास्ते उस निराकार को पाने का प्रयास करते थे।

संसार का स्वरूप - सूफीयों के उपर प्रतिबिंबवाद का प्रभाव मिलता है जिसके कारण उनका मानना है कि ईश्वर सर्वोपरि हैं और उसकी छाया ही यह सारा संसार है। उन्होंने ससार में मानव को सृष्टि का सर्वोपरि प्राणी माना है। ईश्वर की पूर्ण अभिव्यक्ति हैं, मानव शरीर में जड़ एवं चेतन दोनों-अंशों का समावेश हैं। जड़ अंश मनुष्य को पाप की और ले जाता है। जबकि चेतन अंश ईश्वरीय शक्ति की ओर।

प्रेम की प्रधानता - इन कवियों ने इंश्वर की प्राप्ति के लिए प्रेम भावना की ही प्रधानता दी है। इन्होंने प्रेम के संयोग और वियोग दोनों पक्ष लिए हैं। इनमें भी विरह पक्ष को ज्यादा महत्व दिया है। उनके अनुसार यही वह कसौटी है जिसके बल पर साधक ईश्वर प्राप्ति के लिए अपने को परखता है।

लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति - इन कवियों ने लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना को महत्व दिया हैं। इन्होंने राजकुम्मारों को आत्मा तथा राजकुमारियों को परमात्मा का रूप दिया है राजकुमार अर्थात् साधक राजकुमारी अर्थात् परमात्मा की खोज में उसकी प्राप्ति हेतु कष्ट सहता है। सूफियों की यह मान्यता भारतीय प्रेम साधना के विपरीत हैं।

शैतान - सूफियों ने सतों की भांति माया को बुरा माना है और उसे शैतान की संज्ञा दी है। उनके अनुसार साधक को प्रेम की साधना के मार्ग से भ्रष्ट करने वाला तत्व यही शैतान है।

नारी की महत्ता- सूफियों ने प्रेम का प्रमुख स्थान दिया है और प्रेम को आलम्बन नारी है अतः इन्होंने नारी को ब्रह्म का प्रतीक माना है। जिसके साथ मिलन करने एवं सबंध जोड़ने के लिए साधक पुरुष (आत्मा) यत्न करती है और अंत में विवाह रूप में उनका मिलन हो जाता है। इस प्रकार इन्होंने स्वीकया के साथ-साथ परकीया नारी का भी चित्रण किया।

प्रबंधात्मक - सूफियों के प्रेमकाव्य उच्च कोटि में आते हैं, ये कहानियां एक ही सांचे में ढली सी जान पड़ती है। अतः मौलिकता का अभाव है। इसमें कथावस्तु के निर्वाह और वस्तु वर्णन में प्रबंध रूढ़ियों का प्रायः समान रूप से पालन किया है-

प्रतीकात्मकता- सफी कवियों का उद्देश्य लोकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना कराना है। इस रहस्यात्मक अभिव्यक्ति के लिए सांकेतिक विधान या प्रतीकों का उपयोग किया है जैसे-

तन चितर मन राजा कीन्हा,

हिय सिंघल बुद्धि पद्मिनी चीन्हा।

गुरु सुआ जेहि पथ दिखावा,

बिनु गुरू जगत को निर्गुण पाया।

नागमती यह दुनिया धंधा,

वाचा सोई न ऐहि चित बाधा।

राघव वृत सोड़ सैतानू,

माया अलाऊदी सुलतानु।

प्रेम कथा एहि भाति विचारहू,

बुझि लुहू जौ बझै पारहु,

भारतीय और अभारतीय तत्वों का समावेश - इन कवियों ने एक ओर इस्लाम धर्म के सिद्धांतों को महत्व दिया और दूसरों ओर भारतीय संस्कृति के अनेक तत्वों का सम्मान दिया। इन्होंने अपनी काव्य रचनाओं में भारतीय एवं ईरानी काव्य रूढ़ियों का एक साथ प्रयोग किया है। ये कवि माया के स्थान पर शैतान की जो कल्पना करते हैं, वह अभारतीय है। इसी प्रकार ईश्वर को नारी और साधक को पुरूष का रूप देना भी अभारतीय प्रभाव का सूचक है। इन्होंने भारतीय अद्वैतवाद, हठयोग, वैष्णव धर्म की अहिंसा और हिन्दू समाज के अनेक रीति रिवाजों का जो चित्रण किया है, वह भारतीय प्रभाव का परिचायक है।

हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल - संत कवियों ने हिन्दू मुस्लिम एकता को जिस कार्य को उपदेशों से करना चाहा, सूफी कवियों ने उसी कार्य को प्रेम-कथाओं के माध्यम से बड़ी सफलता के साथ किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में, ''प्रेम स्वरूप ईश्वर को सामने लाकर सूफी कवियों ने हिन्दू और मुसलमानों, दोनों को मनुष्य के सामान्य रूप में दिखाया और भेदभाव के दृश्यों को हटाकर पीछे कर दिया।'' संत कवियों के स्वर में खंडनात्मकता की कर्कशता थी, जिसमें हिन्दू मुस्लिम समुदाय के कुछ लोग चिढ़े भी किंतु सूफी कवियों ने अपने कोमल स्वभाव और प्रेम की मादकता से इन दोनों में एकता स्थापित की।

प्रकृति चित्रण - सूफी कवियों ने प्रकृति का आलंबन और उद्दीपन दोनों रूपों में बड़ा सजीव चित्रण किया है। इन्होंने प्रकृति के उपकरणों को प्रकृति के रूप में अंकित करके रहस्य भावनाओं को भी अभिव्यक्ति दी हैं।

संयोग-वियोग श्रृंगार निरूपण - सूफी काव्यों में प्रेम का सर्वाधिक महत्व दिया गया है। प्रेमाख्यानक काव्यों की सार्थकता एवं सारवत्ता ही प्रेम-वर्णन में है। सूफी कवियों ने प्रेम के उदात्त एवं सार्वभौमिक रूप का वर्णन किया

है। लौलिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यजंना उनका उद्देश्य रहा है। यह नर-नारी के बीच का वासनामय प्रेम नहीं है, न ही यह दो व्यक्तियों के दायरे में सीमित हैं। वस्तुत: यह सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। मंझन ने 'मधुमालती' में प्रेम की महत्ता इन शब्दों में व्यक्त की है -

पेम अमोलिक नाग संसारा।

जेहिं जिअं पेम सो धनि औतारा॥

पेम लागी संसार उपावा।

पेम गाहा विधि परगट आवा॥

पेम जोति सब सिस्टि अंजोरा।

दोसर न पाव प्रेम कर जोरा॥

प्रेम सूफीकाव्य का सार तत्त्व है। शास्त्रीय दृष्टि से इसमें श्रृंगार रस की प्रधानता कही जा सकती है। प्रेम अथवा श्रृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का चित्रण इन काव्यों में मिलता है। नखशिख, रूप-सौंदर्य, मिलन, कामकेलि, अनुभाव आदि के वर्णनों में संयोग श्रृंगार का स्वाभाविक वर्णन देखा जा सकता है। परन्तु संयोग की अपेक्षा वियोग-वर्णन का इन रचनाओं में अधिक महत्व है। सूफी-कवियों को 'प्रेम की पीर' का कवि कहा जाता है। विरह की अनेक दशाओं एवं अनुभूतियों के मार्मिक वर्णन सूफी काव्यों में मिलते हैं। विरह वर्णन की दृष्टि से 'पद्मावत' में नागमती का विरह वर्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विरहिणी नागमति प्रिय-मिलन के लिए आतुर है, उसका व्यथापूर्ण संदेश हृदयद्रावक है नागमती की तीव्र उत्कंठा यहां उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

य तन जोरौ छार के, कहौं कि पवन उड़ाय।

मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहं पाय॥

मंझन की मान्यता है कि सृष्टि के मूल में ही विरह है तथा पूर्व जन्म के पुण्य से ही इसकी प्राप्ति सम्भव है -

सिस्टि मूल विरहा जग आवा।

पै बिनु पुब्ब पुन्नि को पावा॥

विरह जीउ जेहि के घट होई।

सवा अमर रहै मरै न कोई॥

इन कवियों की यह स्पष्ट धारणा है कि जहा विरह है, वहीं प्रेम है। जिसके हृदय में विरह की पीड़ा नहीं है, वह से अभिज्ञ नहीं हो सकता। इस प्रकार निस्संकोच रूप से कहा जा सकता है कि सूफीकाव्य प्रेम प्रधान है, श्रृंगार प्रधान है और उसमें भी विप्रलम्भ श्रृंगार की प्रधानता है।

रहस्य भावना - सूफियों के प्रेम में आध्यात्मिक संकेतों एवं रहस्य भावना की झलक मिलती हैं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सूफियों के रहस्यवाद को भावात्मक रहस्यवाद की संज्ञा देते हैं। सन्त काव्य की रहस्य भावना में योग-साधना की पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग तथा उपेदशमूलकता की प्रधानता के कारण कहीं-कहीं शुष्कता एवं नीरसता का भी समावेश हो गया है, परन्तु सूफीकाव्य का रहस्यवाद अधिक सरस, भावात्मक एवं मर्मस्पर्शी है। 'पद्मावत' के 'मानसरोदक खण्ड' में पद्मिनी को ईश्वर रूप में अंकित किया गया है। उसके स्पर्श से मानसरोवर का जल निर्मल हो। जाता है। यथा -

नैन जो देखे कंवल भा निरमर नीर सरीर।

हंसत जो देखे हंस भा, वसन जोति नगर हीर॥

वस्तुतः सूफियों का चरम लक्ष्य परमात्मा के साथ एकमेक होना है। 'मधुमालती' के प्रेम वर्णन में भी यह तथ्य उजागर होता है। मनोहर (जीवात्मा) और मधुमालती (परमात्मा) के सम्बन्धों की व्यंजना छायावादी महाकवि निराला की 'तुम और मैं' कविता का स्मरण दिला देती है। उनके सम्बन्धों की अभेदता का निरूपण देखिए -

तें तौ समुंद लहरि मैं तोरी।

तें रवि मैं जग किरनि अंजोरी॥

मोहिं आपुहि जनि जानु निनारा।

मैं सरीर तुई प्रान पिआरा॥

'मधुमालती' में नायक मनोहर ईश्वर को 'प्रियतम' कहकर पुकारता है। वियोग-वर्णन में भी अनेकन मार्मिक रूप में रहस्य भावना की अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार रहस्यवाद का भावमूलक रूप सूफी प्रेमाख्यानक काव्य की विशिष्ट सम्पदा है।

गुरु का महत्व - संत काव्य की भांति सूफी काव्य में गुरु की महिमा का वर्णन है। सूफी कवि साधक थे और वे किसी-न-किसी सूफी-सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे। अतः उनकी साधना में गुरु का विशिष्ट महत्त है। जायसी का मानना है कि गुरु बिना ईश्वर की प्राप्ति सम्भव नहीं है 'पद्‌मावत' में हीरामन शुक रत्नसेन का मार्गदर्शक बन उसे पदमिनी तक पहुंचाता है। इसीलिए जायसी लिखते हैं।

गुरु सुआ जेहि पंथ देखावा।

बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।

मंझन ने भी 'मधुमालती' के चौदहवें से इक्कीसवें छन्द तक अपने गुरु की महिमा का वर्णन किया है।

कल्पित वृत्त- सूफी कवियों के प्रेमाख्यानक कल्पित वृत्तों पर आधारित हैं। 'मधुमालती', 'मृगावती' 'चित्रावली' आदि के कथानक काल्पनिक हैं। वे लोक प्रचलित भी हो सकते हैं, परन्तु ऐतिहासिक नहीं है। जायसी ने काल्पनिक वृत्त के साथ ख्यात-वृत्त का सामंजस्य भी किया है। 'पद्‌मावत' के उत्तरार्ध में पात्रों, स्थानों एवं घटनाओं के वर्णन में ऐतिहासिक तथ्यों का आभास मिलता है। रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं 'लोकवृत्त और ऐतिहासिक वृत्त का इस तरह आमना-सामना जायसी के अपने रचना विधान की उपज है। संसार के महाकाव्यों में शायद ही कहीं यथार्थ के ऐसे द्विखण्डी रूप का चित्रण हो।

मण्डनात्मकता - सूफी कवियों ने 'खंडन, व्यंग्य-प्रहार आदि की प्रवृत्ति को न अपनाकर अपनी मान्यता को सकारात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। किसी भी साधना-पद्धति अथवा पूजा-पद्धति पर प्रहार न कर उन्होंने प्रेमतत्व को ही महत्त्व दिया है। पूजा-विधानों के सम्बन्ध में जायसी का कथन है -

विधना के मारग है तेते। सरग नखत तन रोवां जेते॥

सिंहलद्वीप के अमराई-प्रसंग में पक्षियों के ध्वनि वैविध्य के माध्यम से भी कवि ने इस भाव का एक सुन्दर विम्ब प्रस्तुत किया है

जावत पंखी जगत में भरि बैठे अमराउऊ।

आपनि आपनि भाषा लेहिं दं कर नाउं॥

मसनवी शैली का प्रयोग - सूफीकाव्य मसनवी शैली में लिखे गए हैं। प्रायः सभी काव्यों में मुख्य कथा से पूर्व इन कवियों ने वर्ण्य-विषय का अनुक्रम इस प्रकार रखा है - भगवद्‌स्तुति, पैगम्बर की स्तुति, गुरु की प्रशंसा तथा परम्परा, समसामयिक शासक का वर्णन ग्रंथ-परिचय आदि। तदनन्तर मुख्य कथा का लगातार वर्णन रहता है, सर्ग विभाजन का क्रम यहां नहीं होता। सभी सूफी कवि इस परम्परा का अनुसरण करते हैं।

हिन्दी सूफी कवियों ने मसनवी पद्धति के साथ-साथ में भारतीय महाकाव्यों की परम्परा का भी अनुसरण किया है। वे वस्तुवर्णन के अन्तर्गत ॠतु-वर्णन, नगर-वर्णन, समुद्र-वर्णन, वन-वर्णन आदि पर भारतीय महाकाव्य परम्परा का प्रभाव दिखाई देता है रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं - ''इस शैली में पीछे देसी लोक गाथाओं का संस्कार भी देखा जा सकता है, जिनमें शास्त्रीय दृष्टि का कोई विभाजन नहीं है, कथाकार लगातार चलती है।''

भाषा - इनके काव्य में ठेठ अवधी सर्वत्र है इस अवधी में इसीलिए तद्भव शब्दों की प्रधानता है। भोजपुरी और ब्रजभाषा के छीटें भी कहीं-कहीं मिलते हैं। मुहावरों एवं लोकोक्तियों का भी अच्छा प्रयोग किया है।

छंद एवं अंलकार- छंदों की दृष्टि से दोहा-चौपाई, बरवै-सोरठा आदि छंदों की बाहुलता मिलती है तो अलंकारों में समासोक्ति एवं अन्योक्ति अलंकार प्रधान रहे हैं।

सारांशतः सूफीकाव्य भावपक्ष और कलापक्ष दोनों दृष्टियों से अत्यंत सबल हैं। यह लोकरंजक और लोकमंगल की आवश्यकताओं की एक साथ पूर्ति करने वाला है।

8.3.3 सूफी काव्य में भारतीय संस्कृति एवं लोक जीवन

सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन

सामाजिक जीवन - सूफी प्रेमाख्यानों में हिंदुओं के ग्राम्य जीवन की अत्यंत सजीव और सशक्त झांकियां प्रस्तुत हुई हैं। हिन्दू-सामाजिक जीवन के अंग-प्रत्यंग इतने सरल एवं स्वाभाविक ढंग से इन रचनाओं में अनुस्यूत हुए हैं कि सूफी प्रेमाख्यान, साहित्य के ही समान ही समाज शास्त्रीय अध्ययन के अच्छे विषय कर सकते हैं। इन कवियों ने समग्र सामाजिक जीवन पर अपनी दृष्टि दौड़ाई है। 'कला और विज्ञान' शीर्षक के अंतर्गत हम इनमें निरूपित अभिजात संस्कृति का रूप देख चुके हैं। यहां विशेष रूप से लोक संस्कृति के संबंध में विचार करना है। सूफी प्रेमाख्यानों को लोक संस्कृति और लोकतत्वों का भंडार कहा जा सकता है।

परिवारिक स्थिति : सूफी कवियों ने हिंदुओं के परिवारिक जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। इनके प्रेमाख्यानो का मूल विषय नायक-नायिका का प्रेम ही है। परंतु उनमें परिवारिक जीवन के अन्य पक्षों का भी सुंदर अंकन हुआ है। इन कथाओं का संबंध अधिकतर राज परिवारों से है, 'चंदायन' की कथा अपवाद मानी जाती है फिर भी इन कथाओं में हमे हिंदू परिवारिक जीवन की झलक मिलती है। इनमें माता-पिता, पुत्र, पुत्रवधू आदि एक परिवार के अंग के रूप में चित्रित हुए हैं।

संतान प्रेम- हिंदुओं में संतान का महत्व केवल वंश-परंपरा को आगे बढ़ाने और लौकिक सुख की दृष्टि से ही नहीं प्रत्युत आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए भी माना जाता है। पुत्र मोक्ष प्रदान करने वाला समझा जाता है। इसलिए हिंदू दम्पति संतान न होने पर चिंतित रहते हैं तथा संतान के बिना परिवार को अंधकारपूर्ण समझते हैं।

'मृगावती' में कथानामक राजकुंवर के पिता उसके लिए मानसरोवर के तट पर एक दिन में अद्वितीय महल बनवाकर खड़ा कर देते हैं। संतान के सुख के लिए धन को पानी की तरह बहाने में उन्हें रंचमात्र संकोच नहीं होता।

'पद्मावत' में राजा रत्नसेन जब योगी बनकर घर से निकलने लगता है, उसके कुटुम्बी अत्यंत व्यथित होते हैं। उसकी माता ने विलाप करते हुए उसे रोकने का प्रयत्न किया तथा उसकी पत्नी नागमती ने रोते हुए जोगिनी बनकर उसके साथ चलने का विचार व्यक्त किया।

दाम्पत्य जीवन- भारतीय परिवारिक जीवन में दाम्पत्य संबंध मेरूदंड के रूप में हैं। सुखी दाम्पत्य जीवन पारिवारिक सुखोल्लास का कारण बनता है। दाम्पत्य सुख के लिए विवाह का विधान किया गया है। सूफी प्रेमख्यानों में प्रेम का निरूपण हुआ है जिसकी परिणति विवाह में हुई है। वैवाहिक संबंधों के निर्वाह के लिए पति-पत्नी दोनों जागरूक दिखाए गए हैं। 'पद्मावत' की नागमती को जायसी ने आदर्श हिन्दू पत्नी के रूप में चित्रित किया है। रत्नसेन भी अपने पत्नी प्रेम के प्रति जागरूक है। सिंहलद्वीप में पद्मावती से विवाह हो जाने के बाद एक दिन शिकार खेलते समय नागमती का संदेशवाहक पक्षी मिला और उसने नागमती की दशा का जो करूण अंकन किया उसे अनुसार राजा को नागमती की स्मृति ने व्याकुल कर दिया।

बहु विवाह– हिन्दुओं में बहु विवाह की प्रथा प्राचीनकाल से पाई जाती है। रामायण और महाभारत के प्राचीन आख्यानों में श्रेष्ठ पुरूषों के अनेक विवाह की कथाएं मिलती हैं। सूफी प्रेमख्यानों में भी कई कथाओं के नायकों के दो विवाह दिखाए गए हैं। 'चंदायन' में लोरिक का दूसरा विवाह विवाहिता स्त्री से होता है। शेष सभी प्रेमाख्यानों में दूसरा विवाह भी कुमारियों के साथ होता है। 'पदमावत', मृगावती आदि कई महत्वपूर्ण प्रेमाख्यानों के नायकों की दो-दो पत्नियां हैं। इस प्रकार इन प्रेमाख्यानों में मध्ययुगीन भारत की बहुविवाह प्रथा का दर्शन होता है।

विवाह-वय : भारत की गर्म जलवायु के कारण यहां शीत प्रधान देशों की अपेक्षा अल्पवय में ही किशोर-किशोरियों में संभोगेच्छा जागृत हो जाती है। साथ ही भारत में मुसलमानों का शासन स्थापित हो जाने पर जबकि अलाउदीन जैसे रूपलोभी सम्राट दीख पड़ने लगे थे जो कुमारियों को कौन कहे विवाहिता सुदरियों तक के अपने अन्तपुर की शोभा बढ़ाने में न हिचकते थे, हिन्दू माता-पिता बाल्यावस्था में ही कन्या का विवाह करके अपने कर्तव्य से मुक्त होने लगे। पडितों ने उस समय आपद् धर्म के रूप में प्रतिपादित किया।

हिन्दू मान्यता के अनुसार रजस्वला पुत्री का अविवाहिता अवस्था में मुख देखना पिता के लिए पाप समझा जाता है। इस सामाजिक स्थिति का प्रभाव सूफी प्रेमाख्यानों में देखने को मिलता है। ''मधुमालती में मधु के विवाह का प्रस्ताव रखते हुए उसकी माता इसी सिद्धांत को प्रतिपादित करती है।

नारी की सामाजिक स्थिति– हिंदू समाज में नारी का स्थान अत्यंत ऊंचा रहा है। मध्यकाल में धीरे-धीरे नारी की स्थिति बिगड़ने लगी। फिर भी सूफी प्रेमाख्यानों के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि उस समय भी पुत्री कोई घृणा या उपेक्षा की वस्तु नहीं समझी जाती थी उसके जन्म पर भी हर्षोत्सव मनाए जाते थे और पुत्री के अभाव में लोग उनकी कामना भी करते थे। पदमावती के जन्म पर भी छठी का उत्सव धूमधाम के साथ मनाया गया। हर्ष और कौतुल में संपूर्ण रात्रि व्यतीत हो गई।

जातियां और उपजातियां– मध्ययुग में सहस्त्रों जातियां और उपजातियां हिंदू समाज में बन चुकी थी। सूफी प्रेमाख्यानों में छत्तीस जातियों की चर्चा प्राय: मिलती है। इस संख्या के संबंध में दो विकल्प हो सकते हैं। प्रथम यह संख्या हिंदू समाज की प्रमुख जातियों की है, द्वितीय में छत्तीस जातियां यौनियां (नेत्र ग्रहण करने वाली) जातियां हैं। 'पद्मावत' में श्रीपंचमी के दिन पद्मावती के साथ छत्तीसों कुल की स्त्रियां पूजन के लिए चलती हैं जिनमें ब्राह्मणी और क्षत्राणी भी है।

लोकोत्सव – जन्म से ही हिंदू जीवन में उत्सवों का प्रारंभ हो जाता है। संतानोत्पति के मांगलिक उत्सव में माता-पिता प्रसन्नता से दान लुटाते थे। 'मृगावती' में इस अवसर पर अदभुत दान का वर्णन मिलता है। राजा ने भंडार खोलकर दान देना प्रारंभ किया। दान लेने वालों की दरिद्रता दूर हो गई। भूखों को भोजन, प्यासों को पानी और नेंगियो को कपड़ा दान किया।

छठी : – पुत्र जन्म के छठे दिन छठी का उत्सव मनाया जाता है। लोक जीवन में यह उत्सव अत्यंत प्रचलित है इसे बड़े उत्साह के साथ सम्पन्न किया जाता है। इस उत्सव का संबंध प्रसूतिगृह की स्वच्छता से प्रतीत होता है। इस दिन प्रसूता और नवजात शिशु को स्नान कराया जाता है। छठी की रात्रि का विशेष महत्व है। ऐसा विश्वास माना जाता है इसी रात्रि में ब्रह्म नवजात शिशु की भाग्यरेखाओं को लिखते हैं। अत: घृत द्वीप जलाकर स्त्रियां रातभर जागती रहती हैं और नृत्य गान तथा आमोद प्रमोद में समय बिताती हैं यह भी विश्वास किया जाता है कि रात्रि तक निर्विघ्न बीत जाने के उपरांत शिशु संकट से मुक्त हो जाता है।

सूफी प्रेमाख्यानों में छठी के इस उत्सव का उल्लेख हुआ है। 'पद्मावत' में छठी की रात्रि को आनंद मनाने और हर्षोत्सव में पूरी रात बिता देने का वर्णन हुआ है।

बरही- पुत्र जन्म के बारहवें दिन बरही मनाई जाती है। इस दिन से प्रसूता, शिशु के साथ प्रसूति-गृह से बाहर आती है। कहीं-कहीं बरही के दिन ही शिशु के नामकरण की प्रथा है किन्तु सूफी प्रेमाख्यानों में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है। बरही के दिन किसी विशेष धार्मिक संस्कार एवं विधि-विधान की प्रथा नहीं थी। सूफी प्रेमाख्यानों में 'मधुमालती' में ही इस उत्सव को लेकर उल्लेख हुआ है। 'चित्रावली' में बरही का उल्लेख न करके कवि ने बारहवें दिन भोज का वर्णन किया है।

यही नहीं सूफी कवियों ने भारतीय जीवन के कुछ गौण पहलुओं पर भी प्रकाश डाला है। शकुन शास्त्र से जुड़े हुए अनेक संकेत पद्मावत में देखे जा सकते हैं। हिंदू लोक विश्वासों की चर्चा करते हुए कवि ने शकुन, अपशकुन, यात्रा-विचार, तिथि विचार, दिवस विचार, गृह विचार आदि विश्वासों का वर्णन किया है।

स्पष्ट है कि सूफी कवियों के अधिकांश कवि मुसलमान रहे लेकिन वे भारतीय जीवन से पूर्णतया परिचित थे। यही कारण है कि उन्होंने भारतीय संस्कृति, लोक जीवन, यहां की रीति-नीति, परंपराओं, जातिगत विशेषताओं, लोक प्रथाओं, उत्सवों, वर्ण व्यवस्था का यथार्थ वर्णन किया है।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 'प्रेम की पीर' किस कवि को कहा जाता है।

प्र. 2 'मधुमालती' किसकी रचना है।

प्र. 3 जायसी ने कामामत का वर्णन किस रचना में किया है।

8.4 सारांश

सूफी काव्य धारा के अधिकांश कवि मुसलमान है लेकिन इनमें धार्मिक कट्टरता का अभाव है। कवियों ने सूफी मत के प्रचार-प्रसार के लिए हिन्दू घरों में प्रचलित प्रेम-कहानियों को अपना विषय बनाया। हिंदी के प्रथम सूफी कति 'मुल्लादाऊद' को माना जाता है। आचार्य शुक्ल ने हिंदी का प्रथम सूफी कवि 'कुतुबन' को माना है।

8.5 कठिन शब्दावली

(1) धर्मोन्मत्त - धर्मांध

(2) लहू - रक्त

(3) विरह - बिछड़ना

8.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. मलिक मुहम्मद जायसी

प्र. 2 उ. मंझन

प्र. 3 उ. आखिरी कलाम

8.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी।

(2) हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र।

8.8 सात्रिक प्रश्न

(1) सूफी काव्य धारा की विशेषताएं बताइए।

(2) जायसी प्रेम की पीर के कवि हैं कथन की समीक्षा कीजिए।

*****

इकाई-9
रामकाव्य

संरचना

9.1 भूमिका

9.2 उद्देश्य

9.3 रामभक्ति धारा

9.3.1 रामकाव्य धारा के प्रमुख कवि

9.3.2 रामभक्ति काव्यधारा की विशेषताएं

स्वयं आकलन प्रश्न

9.4 सारांश

9.5 कठिन शब्दावली

9.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

9.7 संदर्भित पुस्तकें

9.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-9
रामकाव्य

9.1 भूमिका

इकाई-8 में हमने हिन्दी साहित्य के इतिहास की सूफी काव्यधारा का विकास व सूफी काव्य के प्रमुख कवि, सूफी काव्य की विशेषताएँ, सूफी काव्य में भारतीय संस्कृति एवं लोक जीवन के बारे में विस्तापूर्वक जानकारी बात की। इसके पश्चात इकाई-9 के अन्तर्गत राम भक्ति काव्यधारा, राम काव्य धारा के प्रमुख कवि, रामभक्ति काव्यधारा की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

9.2 उद्देश्य

इकाई-9 का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह ज्ञात करने में सक्षम होंगे कि

1. रामभक्ति काव्यधारा का विकास कैसे हुआ ?
2. राम काव्यधारा के प्रमुख कवि कौन-कौन है ?
3. रामभक्ति काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएँ क्या है ?

9.3 रामभक्ति धारा

रामभक्ति धारा सगुण भक्ति की एक ऐसी काव्यधारा है, जिसमें रामभक्ति को विशेष महत्व मिला है। इस धारा के प्रमुख कवि के रूप में तुलसीदास का नाम लिया जाता है। तुलसी के पूर्व हिन्दी में जो राम काव्य लिखा गया, वह प्रायः अप्रकाशित रहा है। विद्वानों की मान्यता है कि तुलसी के पूर्व रामभक्त कवियों में विष्णुदास का नाम उल्लेखनीय है। जिन्होंने वाल्मीकीय रामायण का हिन्दीकरण किया है। ईश्वरदास ने भी भरत मिलाप और अंगद पैर नाम जो रचनाएं प्रस्तुत की हैं। कुछ जैन कवियों ने भी रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थों का प्रणयन किया है। ऐसे ग्रंथों में रावण मन्दोदरी संवाद, राम-रास, हनुमन्त-रास, हनुमान चरित आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। रामभक्ति धारा की परम्परा में अग्रवास को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। जो भी हो, इतना निश्चित है कि तुलसीदास रामकाव्य परम्परा के ही नहीं, सम्पूर्ण हिन्दी भाषा और साहित्य के श्रेष्ठ कवि के रूप में सामने आए हैं। रामभक्ति धारा के अन्य कवियों में स्वामी अग्रदास, नाभादास, प्रियदास, प्राणचंद चौहान, हृदयराम, केशवदास आदि प्रमुख हैं।

9.3.1 रामकाव्य धारा के प्रमुख कवि

तुलसीदास - हिन्दी साहित्यकाश में सूर्य की कथा, दीप्यमान तुलसीदास का जीवन-वृत्त हिन्दी के अन्य भी मध्ययुगीन कवियों की भांति अभी तक प्रामाणिक रूप से प्राप्त नहीं हो सका। महाकवि तुलसी के जन्म, माता-पिता, परिवार, गुरु आदि के सम्बन्ध में अनेक मत तथा जनश्रुतियां प्रचलित हैं। अंतः साक्ष्य के आधार पर तुलसी के जीवन-वृत्त को प्रकाशित करने वाली रचनाएं 'रामचरितमानस', 'कवितावली', 'विनयपत्रिका', 'बरवै रामायण' तथा 'हनुमानबाहुक' हैं। यही अन्तः साक्ष्य तुलसी के जीवन-वृत्त का प्रामाणिक आधार हो सकता है। इस मुख्य आधार तथा कुछ बाह्य सामग्री की सहायता से हम तुलसी के जीवन के विषय में इतना ही कह सकते हैं कि तुलसी का जन्म राजापुर (जिला बांदा) में सन् 1532 में हुआ। कतिपय विद्वान् तुलसी का जन्मस्थान सूकर क्षेत्र (सोरों) मानते हैं, परन्तु पहले मत को अधिक मान्यता प्राप्त है। इनकी माता का नाम हुलसी तथा पिता का नाम आत्माराम दुबे था। स्वामी नरहरिदास तुलसी के गुरु कहे जाते हैं। तुलसी का बाल्यकाल अत्यन्त कष्टमय था। जन्म ग्रहण करने के कुछ समय के अनन्तर उन्हें माता-पिता के संरक्षण से वंचित होना पड़ा। अनाथ तुलसीदास को भिक्षा-याचना करके उदरपूर्ति करनी पड़ी थी। तुलसी की रचनाओं में उनके विवाहित होने का भी संकेत मिलता है। विवाह के अनन्तर वे दुनियादारी में फंसकर राम को भी विस्मृत कर बैठे थे। जनश्रुति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तुलसी को वैराग्य भी

अपनी पत्नी रत्नावली की फटकार से प्राप्त हुआ था। गृहस्थ-जीवन के त्याग के अनन्तर तुलसी का जीवन देश-पर्यटन में व्यतीत हुआ। काशी, चित्रकूट तथा अयोध्या उनके प्रिय स्थान थे। अयोध्या में उन्होंने 'मानस' का प्रणयन प्रारम्भ किया था। 'मानस' की रचना के बाद तुलसी को अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। यहां तक कि वे अपने जीवन-काल में ही बाल्मीकि के अवतार माने जाने लगे। महाकवि तुलसीदास का निधन सन् 1923 (श्रावण कृष्ण तृतीया शनिवार संवत् 1680) में हुआ।

तुलसी की कृतियों से उनके व्यक्तित्व पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। तुलसी अपने इष्टदेव में अगाध विश्वास तथा एकनिष्ठ भक्ति रखते थे। इष्टदेव का सौन्दर्य-वर्णन करते समय वे भाव-विभोर हो जाते थे। तुलसी ने जीवन की वास्तविकताओं का विष पीकर 'मानस' की सुधा-धारा प्रवाहित की थी। उनकी वाणी में सर्वत्र आशा और विश्वास था, उनकी दृष्टि सारग्राहिणी तथा बुद्धि समन्वय - भावना को लेकर आई थी। तुलसीदास के व्यक्तित्व के विषय में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, ''तुलसी का महत्त्व बताने के लिए विद्वानों ने अनेक प्रकार की तुलनात्मक उक्तियों का सहारा लिया है। नाभादास ने इन्हें 'कलिकाल का बाल्मीकि' कहा था। स्मिथ ने उन्हें मुगलकाल का सबसे बड़ा व्यक्ति माना था, ग्रियर्सन ने इन्हें बुद्धदेव के बाद सबसे बड़ा लोकनायक कहा था और यह तो बहुत लोगों ने बहुत बार कहा कि उनकी रामायण भारत की बाइबिल है। इन सारी उक्तियों का तात्पर्य यही है कि तुलसीदास असाधारण शक्तिशाली कवि, लोकनायक और महात्मा थे।'' निस्सन्देह तुलसी के व्यक्तित्व और साहित्य में विराटता के दर्शन होते हैं।

तुलसीदास की रचनाएं - तुलसी के नाम पर वैसे तो 30-31 रचनाएं प्रचलित हैं किन्तु पण्डित रामगुलाम द्विवेदी ने उनकी प्रामाणिक रचनाओं की संख्या बारह ही मानी हैं। वे रचनाएं हैं- रामलला नहछू, रामाज्ञाप्रश्न, जानकी-मंगल, रामचरितमानस, पार्वतीमंगल, गीतावली, कृष्णगीतावली, विनयपत्रिका, बरवै-रामायण, दोहावली, कवितावली तथा (वैराग्य संदीपनी। इनके अतिरिक्त दो अन्य रचनाओं 'हनुमान बाहुक' तथा 'कलिधर्माधर्म निरूपण' को भी कुछ लोगों ने प्रामाणिक माना है। इनमें से 'बाहुक' 'कवितावली' के ही अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया जाता है। तुलसी की प्रामाणिक रचनाओं का संक्षिप्त परिचय नीचे दिए जा रहा है।

रामलला नहछू - राम का नहछू (यज्ञोपवीत), जो विवाह के अवसर का है। इस रचना में लोकगीतों की प्रश्नोत्तर शैली का मनोरम रूप मिलता है। साहित्यिक दृष्टि से यह रचना अधिक महत्व की नहीं। यहां कवि का शास्त्रीय रूप उजागर न होकर लोकरूप आलोकित हुआ है।

रामाज्ञा प्रश्न - इसमें 343 दोहे हैं। इसमें रामकथा है, किन्तु विशेषता यह है कि इसका प्रत्येक दोहा किसी मानसिक प्रश्न के विषय में शुभाशुभ परिणाम की सूचना देता है। इस प्रकार रामकथा के बहाने शुभाशुभ शकुनों का विचार किया गया है कि तुलसी की रचना सन् 1546 के आसपास की है।

जानकी मंगल -इसमें 216 छन्दों में राम और सीता के विवाह का वर्णन है। इसे प्रबन्धात्मक काव्य श्रेणी में गिना जा सकता है।

रामचरितमानस - 'रामचरितमानस' तुलसीदास का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इस रचना की समस्त प्रतियों में प्राय: एक-सा पाठ मिलता है। 'मानस' की सबसे प्राचीन प्रति अयोध्या की है, जिस पर सन् 1604 (संवत् 1661) की तिथि दी हुई है। 'मानस' से राम का पावन चरित्र सात काण्डों में विभाजित है। यह तुलसी के समस्त अध्ययन तथा जीवन दर्शन का प्रौढ़तम रूप प्रस्तुत करता है। कवि ने इसकी रचना तिथि संवत् 1631 (1574 ई.) दी है। तुलसी ने रामकथा को 'रामचरितमानस' नाम दिया है तथा मानसरोवर के रूपक से इस नामकरण की सार्थकता प्रतिपादित की हैं। मानस की कथावस्तु अत्यन्त सुसंबद्ध, व्यवस्थित, विस्तृत, मार्मिक स्थलों से युक्त तथा आदर्श-भावना से ओत-प्रोत है। सारी कथा को चार वक्ताओं एवं श्रोताओं के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। मानस के संवाद स्वाभाविक, रोचक एवं नाटकीय है। इसमें शान्त रस प्रधान है तथा अन्य सभी रसों का यथास्थान समावेश है। मानव हृदय की विविध भावानुभूतियों की व्यंजना में 'मानस' सफल है। भावपक्ष की भांति 'मानस का कलापक्ष भी भव्य तथा प्रौढ है। यह ग्रन्थ दोहा-चौपाई शैली में लिखा गया है। इसकी भाषा, साहित्यिक अवधी है।

पार्वती मंगल - इसका रचनाकाल कवि के अनुसार सन् 1586 है। शिव-पार्वती का विवाह इस रचना का वर्ण्य-विषय है। इसका आधार 'शिवपुराण' है।

कृष्ण गीतावली - 'गीतावली' में कृष्णचरित्र संबंधी 61 पद हैं। कृष्ण की बाल्यवस्था तथा गोपी-उद्धव-संवाद के प्रसंग कवित्व की दृष्टि से उत्तम बन पड़े हैं। गीतिकाव्य की दृष्टि से 'कृष्ण गीतावली', 'गीतावली' की अपेक्षा अधिक सफल है। इस पदावली की रचना भी 'सूरसागर' के अनुकरण पर की गई प्रतीत होती है।

विनयपत्रिका - तुलसी के साहित्य में 'रामचरितमानस' के उपरान्त 'विनयपत्रिका' का स्थान है। यह तुलसी की ब्रजभाषा की रचनाओं में सर्वोत्तम है। यह रचना एक पत्रिका के रूप में है, जो राम के सम्मुख हनुमान द्वारा प्रस्तुत की गई भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, संसार की असारता आदि से सम्बन्धित तुलसी मार्मिक उद्‌गार इस पत्रिका में मिलते हैं।

बरवै रामायण- 'बरवै रामायण' एक छोटी सी रचना हैं इसमें 69 बरवै छन्दों में रामकथा वर्णित है।

दोहावली- 'दोहावली' में नीति, भक्ति, राम-महिमा, नाम माहात्मय आदि से सम्बन्धित 573 दोहे हैं। इसके कुछ दोहे 'मानस' तथा रामज्ञा प्रश्न के भी हैं। तुलसी के दोहे भाव-पूर्ण तथा सुन्दर हैं, विशेष रूप से चातक की एकनिष्ठा से सम्बन्धित दोहों से तुलसी की भक्ति की अनन्यता का परिचय मिलता है।

कवितावली - इस रचना में कवित, सवैया, छप्पय आदि छन्दों में रामकथा सात काण्डों में कही गई है। इसमें कुल 325 छन्द हैं। उत्तरकाण्ड की कथा इसमें सबसे अधिक विस्तार के साथ है।

कवितावली के अन्त में 'हनुमान बाहुक' रचना भी संकलित है। इसमें कवि के आत्मचरित-सम्बन्धी अनेक छन्द आते हैं। 'हनुमान बाहुक' में हनुमान की स्तुति है। इसकी रचना कवि ने अपनी पीड़ाग्रस्त बाहु की स्वस्थता की कामना से की थी।

वैराग्य-संदीपनी- 'वैराग्य-संदीपनी' कवि की आरंभिक रचना प्रतीत होती हैं इसमें दोहा, चौपाई तथा सोरठ छन्द द्वारा राममहिमा, सन्त-स्वभाव तथा ज्ञान-वैराग्य की चर्चा है। इसमें कुल 62 छन्द है। यहां तुलसी का झुकाव सन्तमत की ओर दिखाई देता है।

तुलसीदास महान कलाकार है। उनके काव्य के अनुभूति-पक्ष तथा अभिव्यक्ति-पक्ष दोनों ही सशक्त हैं। आचार्य शुक्ल तुलसी को हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं और हिन्दी काव्य की शक्ति का पूर्ण प्रसार सर्वप्रथम उन्हीं के काव्य में देखते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी तुलसी की सफलता का श्रेय उनकी समन्वयात्मक प्रवृत्ति को देते हैं। वे तुलसी को सशक्त कवि होने के साथ-साथ समाज-सुधारक, लोकनायक तथा भविष्य द्रष्टा भी मानते हैं। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने उन्हें हिन्दी-कविता-कानन का सबसे बड़ा वृक्ष माना है, जिसकी शाखा-प्रशाखाओं में काव्य की चारुता तथा रमणीयता विद्यमान -। डॉ. माताप्रसाद गुप्त तुलसी को उनके अनुभूति-पक्ष जिसमें मानवता का उदात्त रूप प्रस्तुत है-के कारण महान कलाकार कहते हैं। 'कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी या तुलसी की कला' इस उक्ति से तुलसी की कला की सशक्तता व्यंजित होती है। इस प्रकार हिन्दी के सभी मूर्धन्य आलोचकों ने तुलसी की कला की श्रेष्टता को प्रतिपादन किया है।

केशवदास- संवत् 1612 में जन्में केशवदास हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में गिने जाते है। 'सूर सूर तुलसी ससि उडुयन केशवदास' जैसी पंक्तियां उनकी महत्ता की परिचायक है। यों तो केशव के काव्य को रीतिकाव्य मानकर उनकी आलोचना हुई है पर ये वास्तव में तुलसीदास के समय के थे। ऐसी भी किंवदन्ती है कि इनकी तुलसीदास से भेंट भी हुई थी। इनकी 'रामचन्द्रिका' नामक रचना एक बड़ा ग्रंथ है। यह तो ठीक है कि यह रचना भक्ति की नहीं है पर कवि ने रामकथा को अपनी दृष्टि से आगे बढ़ाया है इसलिए उन्हें भी हम काल और विषय की दृष्टि से रामकाव्य की परंपरा में ले सकते हैं।

स्वामी अग्रदास - स्वामी अग्रदास का नाम भी रामभक्ति काव्य के रचयिता के रूप में आता हैं। इनका जन्म संवत् 1632 में हुआ था। इनके गुरु कृष्णदास पयहारी थे। इनकी रचना 'रामध्यान मंजरी' में राम और सीता के दाम्पत्य प्रेम का चित्रण है।

नाभादास- ये अग्रदास के शिष्य थे। इनका जन्म संवत् 1650 में हुआ। इन्होंने 'भक्तमाल' की रचना की थी जिसमें 200 भक्त कवियों का परिचय है। ये रामोपासक थे। इन्होंने राम संबंधी पदों की रचना की है।

हृदयराम- इनका रचनाकाल संवत् 1632 के लगभग माना जाता है। इन्होंने संस्कृत के हनुमान्नाटक व आधार पर हिंदी में एक भाषा हनुमन्नाटक लिखा था यह कवित्त सवैयों में रचित नाटक है।

प्राणचन्द चौहान- प्राणचन्द चौहान जहांगीर के समय में थे। इनका जन्म संवत् 1666 में माना जाता है। इन्होंने 'रामायण महानाटक' नामक रचना की है। इसमें रामकथा संवाद शैली में चलती है।

सेनापति- सेनापति का जन्म संवत् 1646 में हुआ था। इनका महत्वपूर्ण ग्रंथ 'कवित्त रलाकर' है। उसमें इन्होंने राम संबंध रखने वाले कुछ कवित्त लिखे हैं। इनकी भाषा स्वस्थ्य और चुस्त हैं।

9.3.2 रामभक्ति काव्यधारा की विशेषताएं -

वैष्णव-भक्ति में रामोपासना का अस्तित्व पुराना है। मध्यकाल में रामानुजाचार्य द्वारा स्थापित श्री-सम्पदाय के अन्तर्गत रामानन्द का विशिष्ट स्थान है। मध्यकालीन - रामभक्ति की संस्थापना का श्रेय इन्हीं को प्राप्त हैं। रामानुजाचार्य ने राम को नारायण तथा विष्णु का रूप माना था, परन्तु - दशरथ-सुत राम के रूप को रामानन्द ने ही प्रमुखता प्रदान की। यही रामानन्द उत्तर भारत के भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तक माने जाते हैं - 'भक्ति द्रविड़, उपजी, लाये रामानन्द।' रामानन्द की शिष्य परम्परा में निर्गुण तथा सगुण दोनों प्रकार के भक्त आते हैं। रामानन्द का महत्व तीन बातों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रथम, रामानन्द ने भक्ति क्षेत्र से जातिगत संकीर्णता मिटाकर निम्नजातीय लोगों को अपना शिष्य बनाया। दूसरे, संस्कृत के स्थान पर जनभाषा में अपने मत को प्रचार किया। तीसरे, मर्यादापूर्ण रामभक्ति के महत्व को प्रतिष्ठापित किया। इस प्रकार रामानन्द हिन्दी में राम भक्ति काव्य के प्रेरक कहे जा सकते हैं। हिन्दी में रामानन्द की राम-भक्ति विषयक एक रचना 'रामरक्षा स्त्रोत' नाम से मिलती है, परन्तु साहित्यिक दृष्टि से इस रचना को कोई महत्व नहीं है। रामभक्ति-काव्यधारा का महत्व अकेले तुलसीदास के कारण है। अन्य कवियों की रचनाएं तुलसी काव्य की अपूर्व आभा के कारण चमक नहीं सकीं। फलतः इस धारा का अध्ययन तुलसी-साहित्य का ही अध्ययन है। इस काव्य की मुख्य विशेषता निम्नलिखित है :-

राम की श्रेष्ठता - निर्गुण कवियों ने जीवन में वैराग्य, और असारता की एक लहर पैदा कर दी थी, जिससे समाज उदासीनता आ गई और साधु संतों की भीड़ जुट गई। ऐसे में सगुण कवियों ने रामभक्ति को आश्रय बनाया क्योंकि यह में भक्ति दैनिक कार्यों में भी संभव थी।

जे जन रूखे विषय रस चिकने राम सनहे।
ते जन प्रिय राम को कानन बसे की गेह॥

सूघे मन सूघे बचन सूधि सब करतूति।
तुलसी सूधि सकल विधि रघुवर प्रेम पसूति॥

अवतारवाद की महत्ता- सगुण कवियों ने ईश्वर के अवतारों के महत्व दिया है। रामभक्ति शाखा के कवियों ने विष्णु के अवतारों में से राम के रूप को आधार बनाया है। उसके अनुसार इस जगत में जब भी अधर्म पनपता है तब ईश्वर अवतार लेकर आते हैं।

जब जब होई धर्म की हानि,
बाढै असुर अधम अभिमानी।
तब तब प्रभु धरे विविध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

कबीर जैसे निर्गुणवादियों के प्रश्न – 'पाथर पूजै हरि मिलै तो मैं पूजू पहार' के संदर्भ में मानो सगुणवादियों का जवाब है – 'पैज परे प्रहलादू के प्रगटै प्रभू पाहन ते। अत: सगुण भक्त कवियों में चाहे वे रामभक्त हैं या कृष्णभक्त थे ईश्वर के अवतार लेने को स्वीकारते हैं तुलसी भी कहते हैं –

'विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।

आराध्य का स्वरूप – रामभक्ति काव्य के कवि-भक्तों ने 'राम' को आराध्यदेव माना है। उनके राम निर्गुणिया राम न होकर सगुण-साकार राम हैं। इन कवियों ने ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों को अभेद माना है। व्यावहारिक क्षेत्र में वह दशरथ सुत राम हैं। 'दशरथ अजिर बिहारी' राम का अनुग्रह पाने की कामना तुलसी करते हैं क्योंकि वे ही मंगल के भवन और सभी प्रकार के अमंगलों को दूर करने वाले हैं। कृपालु राम की स्तुतिगान करते हुए वे उन्हें 'भवभय दारुण' का हरण करने वाले कहते हैं। तुलसी के राम में शील, शक्ति और सौन्दर्य का समन्वय है। उनका भव्य सुन्दर रूप भक्तों के लिए आकर्षण-केन्द्र है, अपनी शक्ति से राम दुष्टदलन का कार्य करते हैं और उनका शील पूरे समाज के लिए अनुकरणीय है। वे भगवान् (अवतारी पुरुष होते हुए भी मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। तुलसी ने उनको भक्तों और कवि दोनों रूपों में एक साथ देखा है।

भक्ति-भावना – रामभक्त कवि ईश्वर के साथ सेवक-सेवा भाव का संबंध स्थापित करते हैं। निर्गुण संत कवियों ने आत्मा और परमात्मा के दाम्पय संबंध स्थापित किया है। कृष्णभक्त कवि सख्य और माधुर्य भाव की भक्ति पर बल देते हैं। रामभक्ति काव्य वैष्णव धर्म के आदर्शों की पूर्ण प्रतिष्ठा है। अत: भक्ति के क्षेत्र में वे दास्य भाव (सेवक सेव्य भाव) बिनु भव न तारिय अरगारि।' तुलसी ने अपनी भक्ति को चातक के सदृश कहा है, उसका एकमात्र अवलम्ब राम है। 'दोहावली' के दोहों में चातक सदृश भक्ति का सुन्दर दर्शन है।

रामभक्ति काव्य में ज्ञान, भक्ति तथा कर्म तीनों की महत्ता स्वीकार करते हुए भक्ति की सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है। 'मानस' के 'उत्तराकाण्ड' में भक्ति तथा ज्ञान की अभेदता स्वीकार करते हुए भी तुलसी ने भक्ति को ज्ञान की, अपेक्षा सहज तथा सरल बताया है। रामभक्त कवि का एकमात्र लक्ष्य है रामभक्ति की प्राप्ति।

तुलसी की भक्ति में वेद-शास्त्र की मर्यादाओं का भी पालन हुआ है। 'मानस' में नवधा-भक्ति का सुन्दर निरूपण हुआ है। समग्रत: तुलसी की भक्ति में दास्यभाव की भक्ति का आदर्श देखा जा सकता है। विनयपत्रका से तुलसी की भक्ति का एक उदाहरण प्रस्तुत है –

तू दयाल दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पापपुंज हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरतं नहिं आरतीहर तोसो॥

रामभक्त कवियों की भक्ति-भावना में लोक-संग्रह तथा लोकमर्यादा का भाव विशेष रूप से विद्यमान है।

समन्वय भावना – रामकाव्य समन्वय भावना तथा लोकमंगल का काव्य है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी तुलसी की समन्वय भावना का विशेष उल्लेख करते हैं। उनकी दृष्टि में 'मानस' आदि से अन्त तक समन्वय की विराट चेष्टा है। समाज, धर्म, साहित्य, भक्ति, दर्शन प्राय: सभी क्षेत्रों में वे समन्वय-भावना का प्रश्रय लेते हैं। उन्होंने निर्गुण और सगुण में अभेदना प्रकट की है, ज्ञान और भक्ति को अभेद कहा है, वैष्णवों और शैबों में समन्वय स्थापित किया है। परस्पर विरोधी भूमिकाओं में सामंजस्य स्थापित करना उनका लक्ष्य प्रतीत होता है।

लोकमंगल भावना– तुलसी-काव्य लोकमंगल का काव्य है। यद्यपि उन्होंने स्वान्त: सुखाय काव्य की रचना की है, पर उनका 'स्वान्त: सुखाय' 'सामंत सुखाय' का विरोधी है, 'जनहिताय' का नहीं। तुलसी 'कला-कला' के लिए न मानकर कला को जीवन के लिए सिद्धांत के अनुयायी प्रतीत होते हैं। वे 'भनिति' (रचना) की सार्थकता सभी के लिए हितकर होने में ही स्वीकार करते हैं –

कीरति भूमि भनिति भली सोइ।

सुरसरि सम सब कह हित होई।।

आचार्य शुक्ल तुलसी को लोकमंगल का कवि मानते हैं और उनकी श्रेष्ठता का निष्कर्ष भी इसी तत्व को स्वीकारते हैं। लोकसंग्रह, लोकमर्यादा और लोकमंगल रामभक्ति के आदर्श को सर्वोच्च मानते हैं। काव्य की मुख्य प्रवृत्ति है। रामचरितमानस के अधिकांश पात्र लोकहित के आदर्श को सर्वोच्च मानते हैं।

मर्यादा और आदर्श भावना - रामभक्ति काव्य में मर्यादा की विशेष झलक मिलती है। राम पारिवारिक, सामाजिक आदि मर्यादाओं के संरक्षक हैं। श्रृंगार-वर्णन में तुलसी सर्वत्र मर्यादाशील हैं। आदर्श पात्रों- राम, सीता, कौशल्या आदि की सृष्टि करके तुलसी ने मानवता के आदर्श को प्रस्तुत किया। इन आदर्श पात्रों के शील निरूपण द्वारा तुलसी ने व्यक्ति परिवार, नमाज, धर्म, राजनीति सभी क्षेत्रों में आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की है। इस प्रकार मर्यादावाद और आदर्शवाद की स्थापना, रामभक्ति काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति है। निर्गुणोपासक कवियों तथा कृष्ण भक्तिकाव्य के रचयिताओं में यह आदर्श क्षीण ही दिखाई पड़ता है।

विषय व्यापकता - रामभक्ति काव्य में संत काव्य, सूफी काव्य तथा कृष्णभक्ति काव्य की अपेक्षा विषय की व्यापकता भी देखी जा सकती हैं सन्तकवियों की मुक्तक रचनाओं में जीवन को अत्यन्त व्यापक धरातल पर प्रस्तुत करने की गुंजाइश कम ही थी। सूफी कवियों ने प्रेमाख्यानकों तक ही अपने को सीमित कर लिया और कृष्णभक्त कवि कृष्ण के सौन्दर्य पर ही मुग्ध रहने वाले थे। रामभक्त कवियों ने आराध्यदेव राम के विशुद्ध जीवन को लेकर विषय - व्यापकता का परिचय दिया हैं धर्म, संस्कृति इतिहास, पुराण, समाज, परिवार, राजनीति सभी क्षेत्र उसमें समाहित हो गए हैं। विविध स्थितियों, परिस्थितियों, भावों एवं दशाओं का व्यापक चित्र 'मानस' की ही निधि है।

सांस्कृतिक जीवन का चित्रण : रामभक्ति काव्य की एक अन्य प्रमुख विशिष्टता उसका सांस्कृतिक चित्रण भी है। मध्यकाल में भारतीय संस्कृति के उज्जवल और आदर्श रूप का चित्रण करने वाला 'मानस' ही एकमात्र महाकाव्य है। आध्यात्मप्रधान, मर्यादावादी, आदर्शवादी, भक्ति और कर्म प्रधान, समन्यवादी भारतीय संस्कृति, विचारधारा और भावधारा का जितना चारु चित्रण 'रामचरितमानस' में हुआ है, उतना अन्यत्र नहीं। यह 'मानस' का ही प्रभाव है कि आज भी भारतीय संस्कृति झोपड़ी से राजप्रसाद तक अक्षुण्ण रूप में विद्यमान है।

भाव और रस - भाव और रस की दृष्टि से भी रामभक्ति काव्य बड़ा व्यापक और विशुद्ध कहा जा सकता है। 'मानस' में शांत रस की प्रधानता है पर कथा में यथावसर एवं यथाप्रसंग अन्य रसों का भी समावेश हुआ है। जीवन को व्यापक और विशुद्ध परिप्रेक्ष्य में अंकित करने वाले 'मानस' में श्रृंगार, वीर, रौद्र, अद्‌भुत, हास्य, बीभत्स आदि विविध रसों का परिपाक मिलता है। श्रृंगार का संयोग वर्णन मार्यादित हैं नारदप्रसंग में हास्य रस की व्यंजना हैं। राम और सीता के विप्रलम्भ में मार्मिकता है। लंकाकाण्ड में वीर, बीभत्स, रौद्र आदि का सुन्दर समावेश हुआ है। रामभक्ति के रसिक सम्प्रदाय की रचनाओं में श्रृंगार रस की प्रधानता है। वस्तुतः रामभक्त तुलसी रससिद्ध कवि हैं और कथा में अनेकत्र मार्मिक प्रसंगों की योजना करके विविध रसों का परिपाक करते हैं।

काव्यरूप और काव्यशैलियां- रामकाव्य के शिल्पपक्ष का एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति यह है कि इसमें प्रायः सभी सामयिक काव्य शैलियों का प्रयोग हुआ है। वीरकाव्य की छप्पय-पद्धति, विद्यापति कबीर, सूर, मीरा आदि की गीतिशैली, सूफियों की प्रबन्धात्मकता, दोहा, बरवै, कवित्त-सवैया आदि विविध काव्य-शैलियों का तुलसी के काव्य में समावेश हुआ है। तुलसी की इन विविध काव्य-शैलियों के अतिरिक्त प्राणचन्द चौहान तथा हृदयराम भल्ला ने संवाद-पद्धति तथा नाटकीय शैली का सुन्दर प्रयोग किया है। रामकाव्य के विविध रूपों में काव्य रचना की गई है। प्रबन्धकाव्य (रामचरितमानस), गीतिकाव्य (विनयपत्रिका, गीतावली) तथा मुक्तककाव्य (कवितावली, दोहावली)- काव्य के इन तीनों प्रमुख रूपों में तुलसी ने काव्य रचना की है।

अवधीं तथा ब्रजभाषा का परिमार्जित रूप – भक्तिकाल में अवधी तथा ब्रजभाषा के रूप में पूर्वी हिन्दी तथा पश्चिमी हिन्दी में साहित्यिक भाषा के रूप में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था। सूफी कवियों ने प्रेमाख्यानकों में ठेठ अवधी का प्रयोग किया और सूरदास आदि कृष्णभक्त कवियों ने ब्रजभाषा को साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। रामभक्त कवियों विशेष रूप से तुलसी ने अवधी और ब्रज दोनों में साधिकार लिखा तथा दोनों भाषाओं को गौरवान्वित किया। तुलसी की अवधी सूफी कवियों की ठेठ अवधी न थी। उसमें तत्समनिष्ठता है, अलंकृति है। इनकी भाषा परिष्कृत तथा परिमार्जित भाषा हैं उन्होंने भाषा और संस्कृत का समन्वय कर एक ओर सामान्य लोगों में लोकप्रियता प्राप्त की और दूसरी ओर पण्डितों ने भी उनका लोहा स्वीकार किया। 'मानस' उसकी सर्वश्रेष्ठ रचना अवधी भाषा में रचित है तथा विनयपत्रिका 'गीतावली', 'कवितावली' आदि में उन्होंने ब्रज भाषा का चारु प्रयोग किया है। रामस्वरूप चतुर्वेदी का मानना है कि ''शास्त्रीयता को लोकग्राह्य कैसे बनाया जाए, यह तुलसी की मुख्यं रचना समस्या है, जिसे वे हर दृष्टि से सफल हुए हैं। 'भाखा' में काव्य रचना करके वे लोक में प्रिय होते हैं और शास्त्रीय मर्यादा का निर्वाह करके क्रमशः पण्डितों में प्रबन्ध और मुक्तक, मुक्तक की विविध शैलियां, काव्यभाषा के दोनों प्रमुख आधार-अवधी और ब्रजभाषा, संस्कृत के प्रति आरम्भिक श्लोकों की रचना करके सम्मान प्रदर्शन और फिर भाखा में रचना, जिसमें संस्कृत भी यथावश्यक मिली रहे. तुलसी की जैसी भरपूर व्यवस्था अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकती।''

रामभक्ति के रसिक सम्प्रदाय के कवियों ने अवधी तथा ब्रजभाषा के अतिरिक्त राजस्थानी, मैथिली तथा खड़ीबोली में भी रचनाएं की हैं, पर वे भक्तिकाल के बाद के कवि हैं।

छन्द-विधान तथा अलंकार -योजना – छन्द विधान की दृष्टि से दोहा-चौपाई रामकाव्य के प्रधान छन्द है। इनके अतिरिक्त सोरठा, बरवै, कवित्त, सवैया, छप्पय कुण्डलिया, तोमर, हरिगीतिका आदि छन्दों का भी रामकाव्य में सफल प्रयोग हुआ है। केशव ने 'रामचन्द्रिका' में पाण्डित्यपूर्ण ढंग से छन्दों का नियोजन किया है। इसमें अनेक मात्रिक और वर्णिक छन्दों का प्रयोग हुआ है। अलंकारगत रमणीयता रामकाव्य की विशिष्टता है। प्रायः सभी प्रमुख शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों का प्रयोग इस काव्य में मिलता है। अपनी इन विशेषताओं के कारण अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष की प्रौढ़ता, उदातता, गम्भीरता एवं व्यापकता के कारण रामभक्ति साहित्य परिमाण में अपेक्षाकृत अल्प होने पर भी हिन्दी की प्रथम कोटि का साहित्य है।

सारांशत : रामभक्ति काव्य भक्तिकालीन साहित्य में सर्वोत्तम स्थान का अधिकारी है जिसमें लोकमंगल की भावना के साथ-साथ समन्वय की बड़ी विराट चेष्टा मिलती है।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 तुलसीदास किस दार्शनिक मत के भक्तकारी हैं।

प्र. 2 रामचरितमानस की रचना किस भाषा में की गई है।

प्र. 3 रामायण महानाटक किसकी रचना है।

9.4 सारांश

इस काव्य धारा के कवियों की भक्ति भावना दास्य भाव की है। वे राम को साकार रूप में पाकर स्वयं को राम का सेवक माना है तथा उसी की सेवा करते हुए राम को अपना स्वामी माना है। इस प्रकार की भक्ति के कारण ही इस धारा के काव्य में लछुता, दैन्य, उदारता, आदर्शवादिता आदि भावों की प्रधानता दिखाई देती है।

9.5 कठिन शब्दावली

(1) दरसन – दर्शन

(2) मोहि – मुझे

(3) पीर – शुरू

9.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. विशिष्टा द्वैतवाद

प्र. 2 उ. अवधी

प्र. 3 उ. प्राणनाथ चौहान

9.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।

(2) हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नागेन्द्र ।

9.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 रामकाव्य की परम्परा का परिचय देते हुए अपनी प्रवृत्तियाँ लिखिए।

प्र. 2 तुलसीदास एक समन्वयवादी कवि हैं, स्पष्ट कीजिए।

*****

इकाई-10
कृष्ण काव्य

संरचना

10.1 भूमिका

10.2 उद्देश्य

10.3 कृष्ण भक्ति धारा

10.3.1 कृष्ण भक्ति काव्य धारा के प्रमुख कवि

10.3.2 कृष्ण भक्ति काल की विशेषताएं

स्वयं आकलन प्रश्न

10.4 सारांश

10.5 कठिन शब्दावली

10.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

10.7 संदर्भित पुस्तकें

10.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-10
कृष्ण काव्य

10.1 भूमिका

इकाई-9 में हमने हिंदी साहित्य के इतिहास की रामभक्ति काव्य धारा, प्रमुख कवि और प्रमुख विशेषताओं की विस्तापूर्वक जानकारी प्राप्त की। इकाई-10 के अन्तर्गत हम कृष्ण काव्यधारा, प्रमुख कवि और प्रमुख विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

10.2 उद्‌देश्य

इकाई-10 का अध्ययन करने के पश्चात हम यह ज्ञात करने में सक्षम होंगे कि -

1. कृष्णकाव्य धारा का विकास कैसा हुआ ?
2. कृष्णभक्ति काव्यधारा के प्रमुख कवि कौन-कौन से हैं ?
3. कृष्ण भक्ति काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ क्या हैं ?

10.3 कृष्ण काव्यधारा

जिस प्रकार रामानुजाचार्य ने रामभक्ति का प्रचार किया था, उसी प्रकार निर्म्बाकाचार्य मध्वाचार्य और विष्णु स्वामी के आदर्शों को सम्मुख रखकर चैतन्य महाप्रभु तथा वल्लभाचार्य ने जनता को कृष्ण भक्ति का सन्देश दिया। यद्यपि श्रीराम एवं श्रीकृष्ण में देवत्व की भावना का सामावेश लगभग साथ ही हुआ था तथापित माधुर्य भाव से युक्त होने के कारण कृष्ण भक्ति को अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई। हिन्दी में कृष्ण भक्ति का प्रसार वल्लभाचार्य ने किया। उन्होंने 'भागवत पुराण' के आधार पर प्रेम-लक्षण भक्ति को अपनाया। इस भक्ति-पद्धति में आत्म चिन्तन की अपेक्षा आत्म समर्पण की भावना को मुख्य स्थान दिया जाता है।

वल्लभचार्य ने शुद्धाद्वैतवाद और पुष्टिमार्ग नामक दो भक्ति सिद्धान्तों की स्थापना की। इनके द्वारा उन्होंने भक्त को ईश्वर का अनग्रह (पुष्टि) प्राप्त करने की सरल विधि बतलाई। उनके भक्ति मत में अनेक वैष्णवो ने दीक्षा ली और इस प्रकार कृष्ण भक्ति का क्षेत्र विस्तार हुआ। उनके सिद्धान्तों को मानकर कृष्ण भक्ति का विकास करने वाले कवियों में अष्ट छाप के कवि प्रमुख है। अष्टछाप की स्थापना वल्लभाचार्य के पुत्र गोवस्वामी विट्ठलनाथ ने की थी। कृष्ण भक्तिधारा के प्रमुख कवियों में सूरदास, नन्ददास, कृणदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास, चतुर्भुसदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी आदि है।

10.3.1 कृष्ण काव्य धारा के प्रमुख कवि

मध्यकालीन कृष्णकाव्य धारा अत्यंत पुष्ट और विशिष्ट है। इस काव्य-परम्परा के पोषण एवं विकास में 'भगवत पुराण' का मुख्य योग रहा हैं। 'भगवत पुराण' में ज्ञान की अपेक्षा भक्ति (प्रेम) तथा आत्मचिंतन की अपेक्षा आत्मसर्पण की भावना को महत्व मिला है, मध्ययुगीन कृष्णभक्तिकाव्य की रचना तीन प्रमुख धार्मिक केन्द्रों (क) वल्लभ-सम्प्रदाय, (ख) चैतन्य-सम्प्रदाय तथा (ग) राधावल्लभ-सम्प्रदाय के आश्रय में हुई है। इसके अतिरिक्त सम्प्रदाय-निरपेक्ष कवियों ने भी कृष्ण भक्ति काव्य के विकास में योग दिया है, जिसमें मीरा का नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय है।

(क) वल्लभ-सम्प्रदाय के कवि एवं अष्टछाप - मध्ययुगीन कृष्णभक्ति-साहित्य के विकास में वल्लभाचार्य का बहुत बड़ा योगदान है। इनका दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैतवादद था तथा भक्ति के क्षेत्र में इन्होंने 'पुष्टिमार्ग' की स्थापना की। कृष्णनुग्रह ही पुष्टि है, जिसकी प्राप्ति इस सम्प्रदाय के भक्तों का लक्ष्य है। वल्लभ-सम्प्रदाय के पुष्टि सम्प्रदाय में अनेक वैष्णव दीक्षित हुए, जिन्होंने कृष्ण-भक्ति का प्रचार किया। पुष्टिमार्गीय कवियों में अष्टछाप के कवि उल्लेखनीय हैं। 'अष्टछाप' की स्थापना बल्लभाचार्य के पुत्र गोसाई विट्ठलनाथ ने 1545 ई० में की थी। (क) वल्लभ-सम्प्रदाय में श्रीनाथ जी की सेवा के लिए आठ सखा थे। 'अष्टछाप' में 'छाप' शब्द गोस्वामी विट्ठलनाथ के मौखिक आशीर्वाद की छाप का परिचायक है। 'अष्टछापी' आठ कवियों में से चार वल्लभाचार्य के शिष्य थे और चार

विट्ठलनाथ के महाप्रभु वल्लभ के शिष्यों में - सूरदास, कृष्णदास, परमानंददास, कुम्भनदास, तथा विट्ठलनाथ शिष्यों में नन्ददास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी और गोविन्दस्वामी थे। ये सभी भक्त और कवि थे। इनका जीवन-परिचय 'चौरासी वैष्णव की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में प्राप्त होता है।

सूरदास- अष्टछाप के कवियों में सर्वाधिक प्रतिभाशाली एवं अद्‌भुत कवित्व-शक्ति-सम्पन्न कवि सूरदास थे। इनका जन्म सन् 1478 में दिल्ली के समीप सीही नामक ग्राम में हुआ था। यह जन्मान्ध थे तथा बचपन से ही वैरागी तथा संगीत प्रेमी थे। सूरदास सन् 1510 में वल्लभाचार्य के शिष्य हुए और उन्हीं से भागवत की कथा का उपदेश भी ग्रहण किया । तदनन्तर सूरदास गोकुल में श्रीनाथ जी के मन्दिर में स्वरचित पदों का कीर्तिन करने लगे। इनका देहावसान 1583 ई. के लगभग परसौली ग्राम में हुआ।

सूरदास - रचित तीन ही प्रमाणिक ग्रन्थ माने जाते हैं। (1) सूरसागर (2) सूरसरावली (3) साहित्यलहरी। 'सूरसागर' सूर की कीर्ति का आधार स्तम्भ है। यह ग्रन्थ भागवत के अनुकरण पर रचा गया है। पर अनुवाद नहीं है इसमें भागवत में वर्णित कथाओं जैसा वर्णनात्मक रूप नहीं मिलता। इसमें कृष्ण का लोकरक्षक रूप के स्थान पर लोकरंजक रूप अधिक उभरा है। भागवत की दृष्टि अध्यात्मपरक है पर 'सूरसागर' की लीलापरक। 'सूरसागर' महाकवि सूरदास की मौलिक रचना है। इसमें वात्सल्य एवं श्रृंगार का हृदयहारी चित्रण है। 'सूरसागर' में एक लाख पद होने की अनुश्रुति प्रचलित है, किन्तु वर्तमान संस्करणों में लगभग पांच हजार पद ही उपलब्ध होते हैं। इस कृति का रचनाकाल स्वयं कवि के अनुसार 1550 ई. दिया है।

सूरदास उच्चकोटि के भक्त थे। भक्ति उनके लिए साधन ना होकर साध्य थी। वैधी-भक्ति को यथास्थान समादृत करते हुए भक्त कवि सूरदास ने प्रेमाभक्ति की ओर संकेत किया है। उनकी भक्ति माधुर्य-भाव की भक्ति थी। गोपी विरह-प्रसंग में सूर की गोपिकाओं के हृदय की मार्मिकता व्यंजना हुई हैं ऐसा प्रतीत होता है कि सूरदास ने गोपियों और राधा के माध्यम से अपने हृदय की समस्त पीड़ा को अपने आराध्य के श्री चरणों में समर्पित किया हो। सूर ने कृष्ण की वात्सल्य और श्रृंगार की लीलाओं को सुदूर मौलिक और मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है। वस्तुतः भक्ति-भावना का प्राधान्य होने पर भी सूरदास ने बल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद से, प्रभावित होकर ब्रह्म, जीव, माया, संसार, जगत, मोक्ष, रास, ई मुरली आदि का दार्शनिक विवेचन भी किया है।

नन्ददास - नन्ददास का अष्टछाप के कवियों में सूरदास के उपरान्त महत्वपूर्ण स्थान है। इनका जन्म 1533 ई. तथा देहावसान 1583 ई. माना जाता है। ये सूरदास के समकालीन थे। 'भक्तमाल' में इन्हें चन्द्रहास का भाई कहा गया है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में इन्हें तुलसीदास का भाई बतलाया गया है, परन्तु यह सम्बन्ध प्रामाणिक प्रतीत नहीं होता। इसी वार्ता में नन्ददास के विषय में यह भी कहा गया है कि नन्ददास पहले किसी रूपवती युवती पर आसक्त थे तथा बाद में विट्ठलनाथ जी के शिष्य होकर पुष्टि-सम्प्रदाय में सम्मिलित हुए। नन्ददास की कई रचनाएं मिलती हैं 'रासपंचाध्यायी', 'सिद्धांत पंचाध्यायी', 'अनेकार्थमजरी', 'मानमंजरी', 'रूपमंजरी', 'रसमंजरी', विरहमंजरी', 'गोवर्धनलीला', 'श्यामसगाई', 'भंवरगीत', 'रुक्मिणीमंगल', 'सुदामाचरित', 'भाषादशम स्कन्ध' आदि। नन्दास की इन रचनाओं में प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों प्रकार की रचनाएं हैं। काव्यत्व की दृष्टि से इन रचनाओं में 'भंवरगीत' तथा 'रासपंचाध्यायी' सर्वाधिक उल्लेखनीय है। भंवरगीत की रचना सूर के भ्रमरगीत से प्रेरित होकर ही हुई है। इसका उद्देश्य ज्ञान पर प्रेम की विजय दिखलाना है। सूर तथा नन्ददास के प्रमरगीतों में दोनों कवियों का स्वतंत्र व्यक्तित्त्व एवं मौलिकता सुरक्षित है। सूरदास भावुक हैं और नन्ददास पंडित एवं तार्किक।

परमानंददास- परमानंददास सूर और नन्ददास के बाद काव्यत्व की दृष्टि से परमानन्ददास का स्थान है। इनकी पुस्तक 'परमानन्द सागर' प्रसिद्ध है। कहते हैं कि परमानन्ददास ने भी एक लाख के लगभग पदों की रचना की थी परन्तु आजकल केवल 835 पद ही उपलब्ध होते हैं। सूर की तरह इन्होंने वात्सल्य एवं श्रृंगार के पदों की रचना की है।

कृष्णदास – कृष्णदास ने राधाकृष्ण के प्रेम से सम्बन्धित श्रृंगार रस के पदों का गायन किया है, किंतु इनके पद सूरदास तथा नन्ददास की रचनाओं के सामने साधारण प्रतीत होते हैं। इनके द्वारा रचित 'जुगलमान चरित्र', 'भ्रमरगीत' तथा प्रेमतत्व निरूपण ग्रंथ मिलते हैं।

कुम्भनदास – विरक्त भक्त कवि थे। इनका जन्म 1468 ई. तथा देहावसान 1583 ई. में माना जाता है। 'सन्तन को कहा सीकरी सो काम' वाले प्रसिद्ध पद में कुम्भनदास की निर्लोभिता एवं स्पष्टवादिता का परिचय मिलता है। इन्होंने कृष्ण की बाल एवं प्रणयलीला विषयक फुटकर पदों की रचना की थी।

चतुर्भुजदास – कवि कुम्भनदास के पुत्र तथा गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य थे। इनका जन्म 1537 तथा मृत्यु 1583 ई. में मानी जाती है। चतुर्भुजदास के पदों के तीन संग्रह 'चतुर्भुज कीर्तन संग्रह', 'कीर्तनावली तथा दीनलीला' उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त 'द्वादशयश', 'हित जू को मंगल' तथा 'भक्ति-प्रताप' आदि रचनाएं भी इनके नाम से प्राप्त होती हैं, जो सम्भवत: किसी अन्य चतुर्भुजदास की है। इनका विषय भी भक्ति तथा श्रृंगार है। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से इनकी रचनाएं साधारण ही हैं।

छीतस्वामी- मथुरा के उद्दण्ड प्रकृति के सम्पन्न पण्डा थे। राजा बीरबल के पुरोहित होने के कारण इन्हें उनसे वार्षिक वृत्ति मिलती थी। इनके 200 के लगभग स्फुट पद मिलते हैं। प्रभुदयाल मित्तल के शब्दों में ''उनकं कविता भक्तिपूर्ण हैं। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से इनकी कविता विशेष उत्कृष्ट नहीं कही जा सकती।

गोविन्दस्वामी – जाति के सनाढ्य ब्राह्मण थे। वे विट्ठलनाथ जी के शिष्य होकर वृन्दावन में रहने लगे। वे अपने समय के माने हुए संगीतज्ञ थे। इनके स्फुट पदों की संख्या 600 के लगभग कही जाती है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य में अष्टछाप के कवियों का महत्वपूर्ण स्थान है।

रसखान- अष्टछाप के कवियों के अतिरिक्त वल्लभकुल के रसखान कवि की नाम कृष्णभक्त कवियों में अत्यन्त प्रसिद्ध है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के आधार पर इन्हें 'पुष्टिमार्गीय भक्त कहा गया है। परन्तु इनकी रचना में साम्प्रदायिक सिद्धान्तों की खोज करना व्यर्थ है। रसखान का जीवन-वृत्त बहुत कम ज्ञात है। इनका वास्तविक नाम सैयद इब्राहिम बतलाया जाता है। बाद में कृष्ण भक्ति में लीन होकर वे 'रसखान' कहलाए। 'प्रेमवाटिका' में रसखान ने अपने को पठान वंश से सम्बन्धित कहा है

रसखान की रचनाएं चार संग्रहों में मिलती हैं – 'सुजान-रसखान', 'प्रेम-वाटिका' 'दानलीला' तथा 'अष्टयाम' में कृष्ण की दिनचर्या का वर्णन है। 'दानलीला' में राधाकष्ण का प्रणय-प्रसंग है। 'प्रेमवाटिका के दोहों में रसखान के प्रेम सम्बन्धी गहरे अनुभवों का पता चलता है। 'सुजान रसखान' इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है। इसमें कृष्ण जीवन के विविध प्रसंगों को मुक्तक छन्दों में बांधा गया है। प्रेम और श्रृंगार वर्णन की दृष्टि से उन्हें आलम, घनानन्द आदि स्वच्छन्द कवियों की कोटि में गिना जा सकता है।

(ख) चौतन्य सम्प्रदाय के हिन्दी कवि – चैतन्य सम्प्रदाय का अधिकांश साहित्य संस्कृत एवं बंगला भाषा में मिलता है। इस सम्प्रदाय के कुछ कवियों ने ब्रजभाषा में भी साहित्य रचना की है। इनमें से माधवदास जगन्नाथ जी, रामराय, गदाधर भट्ट, सूरदास, मदनमोहन, चन्द्रगोपाल, भगवानदास, गरीबदास, विष्णुदास, जुगलदास, रसिक, मोहन राय, माधवदास (माधुरी जी), कृष्णदास, भगवत मुदित, गौरगण दास आदि उल्लेखनीय हैं। प्रभुदयाल मित्तल ने 'चैतन्य और ब्रज साहित्य' में अठाहरवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी के कवियों का भी विस्तृत विवरण दिया है।

(ग) राधावल्लभ संप्रदाय के हिंदी कवि – राधावल्लभ संप्रदाय के हिंदी कवियों का भी कृष्णकाव्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। गोस्वामी हितहरिवंश इस संप्रदाय के संस्थापक थे और हिंदी कृष्णभक्ति-साहित्य के अन्यतम प्रेरणा-स्रोत थे। राधावल्लभी भक्त उन्हें श्रीकृष्ण के वंश का अवतार मानते हैं। हितहरिवंश का जन्म 1502 ई. में हुआ था, संस्कृत में 'राधासुधानिधि' और 'यमुनाष्टक' नामक दो रचनाएँ हैं। हिंदी में 'हित चौरासी' और 'स्फुटवाणी' दो ग्रंथ लिखे गए हैं। इसमें श्री कृष्ण का रूप-वर्णन, रतिक्रीड़ा तथा राधा की उन्मादपूर्ण दशा का भी चित्रण है। इस रचना का भाषा-प्रवाह प्रशंसनीय है।

राधावल्लभी साधना- पद्धति से मिलता-जुलता सखी सम्प्रदाय का भी कृष्ण भक्ति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। इसके प्रवर्तक गोस्वामी हरिदास (रचनाकाल सन् 1543 से 1563 तक) एक अच्छे कवि तथा संगीतज्ञ थे। 'केलिमाल' तथा 'सिद्धान्त के पद' इनकी दो रचनाएं हैं। 'केलिमाल' में नित्यविहार, नखशिख, मान आदि का वर्णन है तथा 'सिद्धांत के पद' में सम्प्रदाय की भक्ति निरूपित है। इनके शिष्य विटुविपुल तथा प्रशिष्य बिहारिनदेव के भी कुछ फुटकर पद मिलते हैं।

(घ) सम्प्रदाय निरपेक्ष कृष्ण भक्तिकाव्य - कृष्ण भक्तिकाव्य-परम्परा के अंतर्गत सम्प्रदाय-निरपेक्ष कृष्ण भक्ति कवियों का अपना विशिष्ट स्थान है। इसमें मीरा, नरोत्तमदास आदि उल्लेखनीय है।

मीराबाई - राजस्थान की मंजु मन्दाकिनी तथा कृष्ण-भक्तिकाव्य-कानन की कोकिला मीरा हिन्दी की श्रेष्ठ भक्तिन कवयित्री हैं। इनका जन्म कुडकी गांव में सन् 1504 के आसपास हुआ। मीराबाई के पिता मेड़ता के रावदूदा जी के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह थे। मीराबाई का विवाह उदयपुर के महाराणा सांगा के कुमार भोजराज के साथ हुआ, किन्तु विवाह के तीन-चार वर्ष बाद ही इनके पति परलोक सिधार गए। इधर इनके पिता का भी किसी युद्ध में देहान्त हो गया। अब मीरबाई लौकिक संबंधों को छिन्न-भिन्न कर भगवान् कृष्ण की भक्ति में लीन हो गई। कृष्ण-भक्ति में मीरा की तन्मयता प्रसिद्ध है। कहते कि कभी-कभी संकीर्तन में वे इतनी तल्लीन हो जाती थीं कि उन्हें शरीर की सुधि भी नहीं रहती थी। ''गिरधर गोपाल'' भक्तिन मीरा को लोकलाज की चिन्ता नहीं थी, अतः उनके सम्बन्धी उनसे रुष्ट रहने लगे। कहा जाता है कि मीरा को कई बार सम्बन्धियों द्वारा विष भी दिया गया किन्तु कृष्ण-कृपा से मीरा पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। घरवालों के व्यवहार से तंग आकर मीरा गृहत्याग कर वृन्दावन और बाद में द्वारका जाकर रहने लगीं। मीराबाई का देहावसान सन् 1546 में माना जाता है।

मीराबाई की रचनाएं हैं - (1) नरसी जी रो माहेरी (2) गीतगोविन्द की टीका (3) राग गोविन्द (4) सोरठ के पद (5) मीराबाई का मलार (6) गर्वागीत (7) फुटकर पद (पदावली)। इन रचनाओं में से मीराबाई की पदावली ही विद्वानों द्वारा प्रामाणिक रचना मानी जाती है। पदावली का प्रतिपाद्य कृष्ण-भक्ति है। मीरा ने अपने आभ्यान्तरिक भावों का प्रकाशन अपने पदों में किया हैं। उन्होंने अपने इष्टदेव कृष्ण की आराधना पति के रूप में की है तथा उनकी भक्ति माधुर्य भाव की भक्ति है।

नरोत्तमदास- ये सीतापुर जिले के बाड़ी नामक कस्बे के रहने वाले थे। 'शिवसिंह सरोज' में इनका सन् 1545 ई. में वर्तमान रहना लिखा है। इनका 'सुदामाचरित' ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। इनका 'सुदामाचरित' ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। 'सुदामाचरित' में सुदामा की दैन्यावस्था का सरस एवं हृदयग्राही चित्रण है। इसमें कवि की भावुकता तथा उसकी परिमार्जित भाषा का सुन्दर रूप देखने को मिलता है।

10.3.2 कृष्णकाव्य की विशेषताएं :

भक्तिकालीन कृष्ण काव्यधारा के कवियों ने श्रीकृष्ण के साकार रूप की उस प्रेममयी मूर्ति के प्रेमतत्व को अपने काव्य का आधार बनाया जिसमें लोकपक्ष का समावेश नहीं हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार इन भक्तों के कृष्ण प्रेमोन्मत्त गोपियों से घिरे हुए गोकुल के श्रीकृष्ण है, बड़े-बड़े भूपालों के बीच लोक व्यवस्था की रक्षा करते हुए द्वारका के श्रीकृष्ण नहीं है। कृष्ण के जिस मधुर रूप को लेकर ये भक्त कवि चले हैं वह हास विलास की तरंगों से परिपूर्ण अनंत सौन्दर्य का समुद्र है। उस सार्वभौम प्रेमालंबन के सम्मुख मनुष्य का हृदय निराले प्रेमलोक में फूला फूला फिरता है। कृष्णकाव्य की निम्नलिखित विशेषताएं हैं।

श्रीकृष्ण की लीलाओं का चित्रण - इस काव्यधारा के कवियों ने श्रीकृष्ण को अपना उपास्य देव माना और उनकी बाल लीलाओं, रास लीलाओं आदि का विस्तृत चित्रण किया है। उनकी माधुर्य पूर्ण लीलाओं का वर्णन करने में इन कवियों ने इतनी अधिक रूचि ली है कि इनका काव्य मधुरा भक्ति का केन्द्र बन गया है।

वात्सल्य एवं श्रृंगार रस की प्रधानता – कृष्णभक्ति । काव्य में वात्सल्य एवं श्रृंगार रस का अति सुंदर प्रयोग हुआ है। इस विषय में सूरदास प्रसिद्ध कवि हैं कि वे वात्सल्य और श्रृंगार का कोना-कोना झांक आए थे। वात्सल्य का मनोवैज्ञानिक वर्णन इनके काव्य में मिलता है।

मैया कबहि बढैबी चोटी ?

किती बार मोहि दूध पिवंत भई, यह अजहूं है छोटी।

मैया मोहि दाऊ बहुत खिजायो

मोसो कहत मोल को लीन्हों तू जसुमति कब जायो।

संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार की तुलना में वियोग श्रृंगार अधिक मार्मिक रहा है – **अखियां हरि दरसन की भूखी।**

भक्ति भावना- कृष्णकाव्य में वत्सल, दास्य, सख्य, कान्त आदि भक्तियों का रूप देखा जा सकता है। जिसमें रागानुगा या प्रेमलक्षणा या माधुर्य भक्ति ही प्रधान रही हैं। यह भक्ति वैधी भक्ति से भिन्न है। इस भक्ति में जीवात्मा (पत्नी) परमात्मा (पति) से मिलने जाती है। इस काव्य में कृष्ण पति है। और गोपियां पत्नी है।

साधना के क्षेत्र में वैधी भक्ति प्रथम सोपान है। जबकि रागानुगा भक्ति अंतिम सोपान है। कृष्णकाव्य के सभी संप्रदायों में सही भक्ति महत्व रखती है। इसी कारण इन कवियों ने परकीया नायिका को भी स्थान दिया है कि उसमें प्रणय भावना, अश्लीलता, अनैतिकता व शंका से परे आदर्श प्रेम से पूर्ण है। इसके अतिरिक्त अष्टायाम और नवधा भक्ति का रूप भी देखा जा सकता है।

प्रकृति चित्रण – कृष्णभक्ति काव्यधारा के कवियों ने प्रकृति का स्वतंत्र रूप से चित्रण प्रायः नहीं किया है। उन्होंने प्रकृति का उद्दीपन रूप में या भाव की पृष्ठभूमि के रूप में चित्रण अधिक किया है-

मधुबन तुम कत रहत हरै।

विरह वियोग श्याम सुंदर के ठाडे क्यों न जरै॥

पात्र चरित्र चित्रण- रामकाव्य की भांति कृष्णकाव्य में पात्रों के चरित्र विविध पक्ष से रहित है। इस काव्य में कृष्ण कथा नायक है। जिसमें मानव एवं अतिमानव के विरोधी तत्वों का समिश्रण है। कृष्ण ब्रह्म है, गोपियाँ जीवात्मा है जो ब्रह्म से मिलने के लिए तड़पती रहती है।

सामाजिक महत्व – यद्यपि कृष्णभक्ति काव्य लीलावादी काव्य है किंतु फिर भी इस काव्य में उस समय की सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दशाओं का यथार्थ वर्णन है। उद्धव गोपी प्रसंग में संतों पंडिताभिमानियों, निरत, हठयोगियों, अद्वैतवादियों आदि की अच्छी खबर ली है।

ऐतिहासिक पक्ष- निसंदेह कृष्णभक्त कवि मथुरा और वृंदावन में बैठे हुए है किन्तु इनके साहित्य में अपने ढंग से ऐतिहासिकता अवश्य है। भक्तों की स्तुतियां और प्रशस्तियां ऐतिहासिक दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं है।

लोकरंजन की भावना- कृष्णकाव्य धारा के कवियों ने अपने उपास्य देव के लोकरंजक रूप को ही प्रधानता दी हैं। उन्होंने समाज एवं देश से विशेष सम्बन्ध न रखते हुए कृष्ण की लोकरंजक लीलाओं का ही विस्तृत वर्णन किया है। आचार्य शुक्ल के अनुसार 'समाज किधर जा रहा है, इस बात की ये परवाह नहीं करते थे, यहां तक कि अपने भगवत प्रेम की दृष्टि के लिए जिस श्रृंगारमयी लोकोतर छट और आत्मोत्सर्ग की अभिव्यंजना से इन्होंने जनता को रसोन्मत्त किया, उसका लौकिक स्थूल दृष्टि रखने वाले विषय वासनापूर्ण जीवों पर कैसा प्रभाव पड़ेगा इसकी ओर इन्होंने ध्यान नहीं दिया।

नवीन प्रसंगों की उद्भावना– कृष्णभक्ति काव्य का मूलाधार 'भगवत पुराण' है। लेकिन इन कवियों ने अनुवाद मात्र नहीं किया। 'भगवत' के कृष्ण आद्योपांत ब्रह्म है लेकिन इनके कृष्ण कहीं बच्चे, कहीं रसिक कहीं छलिया है। इसी प्रकार राधा भी इनकी कल्पना है।

प्रतीकात्मकता– कृष्णकाव्य में पात्रों का चयन अभिप्राय से हुआ है उनके चित्रण में प्रतीकात्मकता मिलती है जैसे राधा माधुर्य भाव की भक्ति का प्रतीक है, श्रीकृष्ण परमात्मा है और गोपियां जीवात्माएं। उद्धव बुद्धि, ज्ञान और निर्गुण के प्रबल समर्थन है। उनकी पराजय निर्गुण ब्रह्म की पराजय है। गोपियों की विजय सगुण ब्रह्म की विजय है।

मुक्तक काव्य की प्रधानता – इस धारा के कवियों ने श्रीकृष्ण के जीवन के जिस अंश का चयन किया वह मुक्तक काव्य के लिए ही उपयुक्त था। ब्रजभाषा का प्रयोग – कृष्णकाव्य में ब्रजराज की जन्मभूमि ब्रज की लोक प्रचलित भाषा प्रयुक्त हुई है और लोकप्रिय भी हुई जिसने अवधी को पूर्णतः ढकेल दिया। इस भाषा को इन कवियों ने मधुर, कोमल एवं व्यापक बना दिया जिससे भावी कवियों ने सुगमता से काव्य रचना की।

गीतिशैली की प्रधानता – कृष्णकाव्य में गीति शैली की प्रधानता मिलती है। इन कवियों ने अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों को गोपियों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। जिसके लिए गीति शैली को आधार बनाया। इनके काव्य में गीति शैली के सभी गुण संक्षिप्तता, वैयक्तिकता, संगीतात्मकता, भावात्मकत्ता, कोमलता आदि गुण मिलते है।

छंद एवं अलंकार – भावात्मक काव्य होने के कारण अधिकतर इस साहित्य में गीति पदों का प्रयोग हुआ है। कलात्मक प्रयोगों में दोहा, चौपाई, रोला आदि का मिश्रित रूप है। भाषा में सहज प्रभाव के कारण अलंकार बहे आए हैं। इस काव्य में रीतितत्व का समावेश है।

संक्षेप में कृष्णभक्ति काव्य आनन्द और उल्लास का काव्य है। यह शुद्ध कलात्मक लोकरंजन की दृष्टि से अपना उपमान आप है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार यह काव्य। 'मनुष्य की रसिकता को उद्‌बुद्ध करता है, उसकी अन्तनिहित अनुराग लालसा को ऊर्ध्वमुखी करता है और उसे नितांत रसासिकत करता है।'

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 कृष्ण काव्य के प्रमुख कवि कौन हैं।

प्र. 2 'श्यामसगाई' किसकी रचना है।

प्र. 3 राधावल्लभ संप्रदाय के संस्थापक कौन हैं।

10.4 सारांश –

कृष्ण काव्यधारा सामंती जड़ताओं का विरोध करते हुए जीवन के प्रति आवश्यक राग व रंग पर विश्वास करती है। इस धारा में एक और प्रेम, बाल लीला चित्रण एवं वात्सल्य चित्रण के माध्यम से समाज को सुदृढ़ करने की चित्रण के माध्यम समाज को सुदृढ़ करने की कोशिश की गई है तो दूसरी ओर मानव की स्वतंत्रता के बाधक तत्वों का विरोध किया गया है।

10.5 कठिन शब्दावली

(1) स्तम्भ – खंभा

(2) सुदूर – बहुत दूर का

(3) मुरली – बांसुरी

10.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र.1 उ. सूरदास

प्र.2 उ. नंददास

प्र.3 उ. गोस्वामी हितहरिवंश

10.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन सिंह

(2) हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास - विश्वनाथ त्रिपाठी

10.8 सात्रिक प्रश्न

(1) कृष्ण काव्य की विशेषताओं का वर्णन कीजिए

(2) सूरदास का परिचय देते हुए उनके साहित्य की विशेषताएं बताइए।

*****

इकाई–11
रामकृष्ण काव्येत्तर काव्य

संरचना

11.1 भूमिका

11.2 उद्देश्य

11.3 रामकृष्ण काव्येतर काव्य

11.3.1 भक्तिकालीन वीर काव्य

11.3.2 भक्तिकालीन नीति काव्य

स्वयं आकलन प्रश्न

11.4 सारांश

11.5 कठिन शब्दावली

11.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

11.7 संदर्भित पुस्तकें

11.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई–11
रामकृष्ण काव्येत्तर काव्य

11.1 भूमिका

इकाई–10 में हमने हिंदी साहित्य के इतिहास की कृष्ण–भक्ति काव्य धारा, प्रमुख कवि और कृष्णभक्ति काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियों की विस्तापूर्वक जानकारी प्राप्त की। इकाई–12 के अन्तर्गत हम रामकृष्ण काव्येतर काव्य, भक्तिकालीन वीर काव्य कालीन नीतिकाव्य का अध्ययन करेंगे।

11.2 उद्देश्य

इकाई–11 का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह ज्ञात करने में सक्षम होंगे कि –

1. रामकृष्ण काव्येत्तर काव्य का महत्व क्या है?
2. भक्तिकालीन वीरकाव्य की समीक्षा कैसे करेंगे?
3. भक्तिकालीन नीतिकाव्य भूल पतिपाद्य क्या है?

11.3 रामकृष्ण काव्येतर काव्य

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में चार काव्यधाराएँ प्रसिद्ध हैं। ये हैं–निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा (संत काव्य परम्परा), सूफी प्रेमाख्यान परम्परा, राम काव्य परम्परा और कृष्ण काव्य परम्परा। इन काव्य परम्परा के कवियों ने अपने सम्प्रदाय के अनुसार ही काव्य रचनाएँ लिखीं। उदाहरण के रूप में, कबीरदास, नानक, रैदास आदि संत कवियों ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर बल दिया। तुलसीदास तथा उसके वर्ग के कवियों ने राम की भक्ति पर बल दिया। सूरदास, नन्ददास आदि अष्टछाप के कवियों ने श्रीकृष्ण की भक्ति को प्रमुखता प्रदान की। इसी प्रकार सूफी कवि प्रेमाख्यानक काव्यों की रचना करते रहे, लेकिन भक्तिकाल में भक्तिकाव्य के अतिरिक्त भी रचनाएँ काफी मात्रा में लिखी गई। जिनका उल्लेख डॉ. नगेन्द्र ने अपने इतिहास ग्रन्थ में भक्तिकाल की अन्य काव्य की प्रवृत्तियाँ शीर्षक के अन्तर्गत किया है। भक्तिकालीन भक्तितर–काव्य को हम निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं

11.3.1 भक्तिकालीन वीर काव्य

हिन्दी साहित्य में वीर काव्य लिखने की परम्परा आदिकाल से देखी जा सकती –है, लेकिन भक्तिकाल में भक्ति को प्रमुखता देने के कारण इस ओर कवियों का बहुत कम ध्यान गया है। फिर भी कुछ भक्तिपरक रचनाओं जैसे–'रामचरितमानस', 'रामचन्द्रिका' आदि में वीर रस का सुन्दर परिपाक देखा जा सकता है।

नरोत्तमदास– ये सीतापुर जिले के बाड़ी नामक कस्बे के रहने वाले थे। 'शिवसिंह सरोज' में इनका सन् 1545 ई. में वर्तमान रहना लिखा है। इनका 'सुदामाचरित' ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। इनका 'सुदामाचरित' ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। 'सुदामाचरित' में सुदामा की दैन्यावस्था का सरस एवं हृदयग्राही चित्रण है। इसमें कवि की भावुकता तथा उसकी परिमार्जित भाषा का सुन्दर रूप देखने को मिलता है।

कृष्णकाव्य की विशेषताएं

भक्तिकालीन कृष्ण काव्यधारा के कवियों ने श्रीकृष्ण के साकार रूप की उस प्रेममयी मूर्ति के प्रेमतत्व को अपने काव्य का आधार बनाया जिसमें लोकपक्ष का समावेश नहीं हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार इन भक्तों के कृष्ण प्रेमोन्मत्त गोपियों से घिरे हुए गोकुल के श्रीकृष्ण है, बड़े–बड़े भूपालों के बीच लोक व्यवस्था की रक्षा करते हुए द्वारका के श्रीकृष्ण नहीं है। कृष्ण के जिस मधुर रूप को लेकर ये भक्त कवि चले हैं वह हास विलास की तरंगों से परिपूर्ण अनंत सौन्दर्य का समुद्र है। उस सार्वभौम प्रेमालंबन के सम्मुख मनुष्य का हृदय निराले प्रेमलोक में फूला फूला फिरता है। कृष्णकाव्य की निम्नलिखित विशेषताएं हैं।

श्रीकृष्ण की लीलाओं का चित्रण - इस काव्यधारा के कवियों ने श्रीकृष्ण को अपना उपास्य देव माना और उनकी बाल लीलाओं, रास लीलाओं आदि का विस्तृत चित्रण किया है। उनकी माधुर्य पूर्ण लीलाओं का वर्णन करने में इन कवियों ने इतनी अधिक रूचि ली है कि इनका काव्य मधुरा भक्ति का केन्द्र बन गया है।

वात्सल्य एवं श्रृंगार रस की प्रधानता - कृष्णभक्ति । काव्य में वात्सल्य एवं श्रृंगार रस का अति सुंदर प्रयोग हुआ है। इस विषय में सूरदास प्रसिद्ध कवि हैं कि वे वात्सल्य और श्रृंगार का कोना-कोना झांक आए थे। वात्सल्य का मनोवैज्ञानिक वर्णन इनके काव्य में मिलता है।

मैया कबहि बढैबी चोटी ?

किती बार मोहि दूध पिवंत भई, यह अजहूं है छोटी।

मैया मोहि दाऊ बहुत खिजायो

मोसो कहत मोल को लीन्हों तू जसुमति कब जायो।

संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार की तुलना में वियोग श्रृंगार अधिक मार्मिक रहा है - **अखियां हरि दरसन की भूखी।**

भावना भक्ति- कृष्णकाव्य में वत्सल, दास्य, साख्य, कांत आदि भक्तों का रूप देखा जा सकता है। जिसमें रागानुगा या प्रेमलक्षणा या माधुर्य भक्ति ही प्रधान रही है। यह भक्ति वैधी भक्ति से भिन्न है। इस भक्ति में जीवात्मा (पत्नी) परमात्मा (पति) से मिलने जाती है। इस काव्य में कृष्ण पति है। और गोपियां पत्नी है।

साधना के क्षेत्र में वैधी भक्ति प्रथम सोपान है। जबकि रागानुगा भक्ति अंतिम सोपान है। कृष्णकाव्य के सभी सम्प्रदायों में सही भक्ति महत्व रखती है। इसी कारण इन कवियों ने परकीया नायिका को भी स्थान दिया है कि उसमें प्रणय भावना, अश्लीलता, अनैतिकता व शंका से परे आदर्श प्रेम से पूर्ण है। इसके अतिरिक्त अष्टायाम और नवधा भक्ति का रूप भी देखा जा सकता है।

प्रकृति चित्रण- कृष्णभक्ति काव्यधारा के कवियों ने प्रकृति का स्वतंत्र रूप से चित्रण प्रायः नहीं किया है। उन्होंने प्रकृति का उद्दीपन रूप में या भाव की पृष्ठभूमि के रूप में चित्रण अधिक किया है-

मधुबन तुम कत रहत हरै।

विरह वियोग श्याम सुंदर के ठाडे क्यों न जरै॥

पात्र चरित्र चित्रण- रामकाव्य की भांति कृष्णकाव्य में पात्रों के चरित्र विविध पक्ष से रहित है। इस काव्य में कृष्णं कथा नायक है। जिसमें मानव एवं अतिमानव के विरोधी तत्वों का समिश्रण है। कृष्ण ब्रह्म है, गोपियाँ जीवात्मा है जो ब्रह्म से मिलने के लिए तड़पती रहती है।

सामाजिक महत्व - यद्यपि कृष्णभक्ति काव्य लीलावादी काव्य है किंतु फिर भी इस काव्य में उस समय की सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दशाओं का यथार्थ वर्णन है। उद्धव गोपी प्रसंग में संतों पंडिताभिमानियों, निरत, हठयोगियों, अद्वैतवादियों आदि की अच्छी खबर ली है।

यहाँ हम केवल उन्हीं कवियों की चर्चा करेंगे जिन्होंने विशुद्ध वीरकाव्य लिखे हैं। स्वतंत्र रूप से वीरकाव्य लिखने वाले ये सभी कवि प्रायः दरबारी कवि थे और उन्होंने अपने-अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए उसकी वीरता और दानशीलता का बढ़-चढ़कर वर्णन किया है।

1. केशवदास- केशवदास भक्तिकाल और रीतिकाल की सीमा पर बैठे हुए कवि हैं, फिर भी कुछ विद्वान् इनको भक्तिकाल में समाहित करते हैं। इनकी कीर्ति का आधार स्तम्भ तो रामचन्द्रिका है। लेकिन वीरकाव्य परम्परा पर आधारित इनकी दो रचनाएँ- **'जहाँगीर जस चन्द्रिका'** तथा **'रत्ना बावनी'** हैं। जहाँगीर जस चन्द्रिका में कवि ने जहाँगीर

बादशाह के यश, वीरता और दानशीलता का वर्णन किया है। रत्नाबावनी में कवि ने ओरछा नरेश मधुकर के पुत्र रत्नसेन की वीरता का वर्णन किया है। इनकी एक अन्य रचना है–**'वीर सिंह देवचरित'** जिसमें वे ओरछा नरेश वीर सिंह की वीरता का यशोगान करते हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है ।

''जुद्ध को वीर नरेश चढ़े धुनि दुंदुभि को दसहूँ दिसि धाई।

प्रात चली चली चतुरंग चमूबरनी अब केसव क्यों हूँ न जाई॥''

2. कवि श्रीधर– भक्तिकालीन वीर कवियों में श्रीधर का नाम उल्लेखनीय है। वे राजा रणमल राठौर के आश्रित कवि थे। लगभग 1400 ई. में उन्होंने रणमल छंद नामक वीरकाव्य की रचना की। अभी तक इसके केवल 70 छन्द ही प्राप्त हुए हैं। इस काव्य रचना में कवि ने पाटन के सूबेदार जफर खाँ के साथ हुए रणमल के युद्ध का वर्णन किया है। इस युद्ध में राजा रणमल की विजय हुई थी इसलिए कवि ने ओजस्वी भाषा में रणमल की वीरता का प्रभावशाली वर्णन किया है।

3. नरपति नाल्ह– इनके जीवनकाल के बारे में विद्वानों में काफी मतभेद हैं। इनके द्वारा रचित विजयपाल रासो की चर्चा आदिकालीन रासोकाव्य में की जा चकी है। मिश्र बन्धुओं ने इसका रचनाकाल 1298 ई. माना है, लेकिन अन्य विद्वान इसका रचनाकाल 1543 ई. मानते हैं। इसलिए भक्ति काव्य में इसकी चर्चा की जा रही है। इस रचना में विजयगढ़ के राजा विजयपाल तथा पग राजा प्रभावशाली वर्णन किया गया है। इस काव्य रचना के केवल 42 छन्द ही मिले है।

4. राव जैतसी रासो (अज्ञात कवि)– इस रचना के रचनाकार के नाम व रचनाकाल के बारे में कोई प्रमाणित जानकारी नहीं है। इस रचना में दोहा, छप्पय आदि छन्दों के 80 पद मिले हैं। इस काव्य की रचना डिंगल भाषा में की गई है। इस काव्य रचना में बीकानेर के राजा राव जैतसी तथा हुमायूँ के भाई कामरान के बीच हुए युद्ध का वर्णन किया गया है।

5. दुरसाजी आड़ा– इनका जन्म मारवाड के धुंधला गाँव में 1535 ई. में हुआ। भले ही ये गरीब परिवार में उत्पन्न हुए थे और जाति के चारण थे, लेकिन डिंगल भाषा के प्रतिभावान कवि थे। अकबर, बीकानेर के राजा, जयपुर के राजा आदि द्वारा इनको अनेक बार सम्मानित किया गया। इनकी एकमात्र रचना का नाम है 'विरुद्ध चिहत्तरी'। इस रचना में कवि ने महाराणा प्रताप की वीरता का यशोगान किया है। यह पूरी रचना दोहा छन्द में रची गई है।

6. दयाराम (दयाल कवि)– यह सूर्यवंश के राजा के दरबारी कवि थे। 1618 ई. के लगभग इन्होंने 'राणा रासो' नामक काव्य ग्रंथ की रचना की जिसमें कुल 875 छंद हैं। इस काव्य रचना में कवि दयाराम ने सिसोदिया वंश के प्रमुख राजाओं की वीरता का सजीव वर्णन किया है। इसकी रचना भी डिंगल भाषा में की गई है। विशेषकर राजा कुंभा, उदयसिंह, प्रताप सिंह, अमर सिंह आदि की वीरता और युद्धों का जो वर्णन किया गया है, वह काफी प्रभावशाली है।

भक्तिकाल में वीर काव्य की रचना करने वाले अन्य कवियों में कुंभकरण, न्यामक खाँ, कवि होलराय आदि के नाम गिनवाए जा सकते हैं। कुम्भकरण की रचना का नाम है– **'रतन रासो'** जिसमें रतनाम के महाराजा रतन सिंह की वीरता का वर्णन किया गया है। इनकी ओजपूर्ण भाषा डिंगल है तथा इसका रचनाकाल 1618 से 1624 ई. के मध्य हो सकता है।

11.3.2 भक्तिकालीन नीतिकाव्य–

भारतीय साहित्य में आरम्भ से ही परमार्थ को विशेष महत्त्व दिया गया है। भारतीय ऋषियों और मुनियों ने क्षमा, दान, परोपकार, अहिंसा, दया, सहनशीलता आदि गुणों को अपनाने पर बल दिया है और हिंसा, लोभ, घृणा, मोह, अहंकार को त्यागने का उपदेश दिया है। आगे चलकर बौद्ध धर्म और जैन धर्म के ग्रंथों में भी त्याग, संयम, दया, अपरिग्रह आदि व्यसन की सलाह दी गई है। संस्कृत में नीति संबंधित श्लोक रामायण, महाभारत, मनुस्मृति आदि ग्रंथों में पढ़ने को मिल जाते हैं। संस्कृत कवि भर्तृहरि ने तो **'नीतिशतक'** नामक रचना भी लिखी। अत: भक्तिकाल में नीति काव्य परम्परा निरन्तर प्रवाहित होती रही। संत कवियों की काव्य रचनाओं तथा सगुण गोपासक काव्य रचनाओं में भी नीतिपरक कथन मिल जाते हैं, लेकिन यहाँ केवल स्वतंत्र रूप से रचित नीति काव्य की रचना की रही है।

1. पद्म नाभ- ये जैन कवि थे तथा इन्होंने 1486 ई. में **'डुंगढ़ बावनी'** काव्य रचना लिखी। वस्तुत: यह रचना कवि ने अपने आश्रयदाता सेठ डुंगढ़ मल के नाम पर लिखी है तथा इसमें कुल 7 छप्पय हैं। कवि ने दान, दया, अहिंसा आदि की चर्चा करते हुए जुआ, मांस भक्षण, सुरापान, परनारी गमन आदि दुष्ट प्रवृत्तियों से बचने की सलाह दी है।

2. ठाकुर जी - अगले कवि ठाकुर जी हैं। ये भी जैन कवि हैं। **'कृपण चरित्र'** तथा **'पंचेन्द्रीवेलि'** इनकी दो काव्य रचनाएँ हैं। इन रचनाओं का समय 1523 ई. से 1526 ई. के मध्य माना गया है। ये दोनों रचनाएँ मुम्बई के दिगम्बर मन्दिर तथा जयपुर के वधीचंद मन्दिर में सुरक्षित हैं। कृपण चरित्र में एक कंजूस सेठ और उसकी उदार पत्नी का वर्णन किया गया है। पंचेन्द्रीवेलि में इन्द्रिय निग्रह पर बल दिया गया है।

3. छीहल- ये अग्रवाल कुल में उत्पन्न हुए थे। नीतिकाव्य के कवियों में इनका स्थान महत्त्वपूर्ण है। इनके द्वारा रचित **'छीहल बानी'** नीति से सम्बन्धित काव्य रचना है। इसमें कुल 53 छप्पय है तथा कवि ने व्यावहारिक सम्बन्ध पर नीति सम्बन्ध की बातें कहीं हैं। भक्तिकालीन नीति काव्यों में इस रचना का विशेष महत्त्व है। इनकी दो अन्य रचनाएं **'पंचसहेली की बात'** तथा **'पंथीगीत'**।

4. रत्नावली - ये गोस्वामी तुलसीदास की पत्नी थी तथा नीतिकाव्य इनके नीतिपरक में इनकी अत्यधिक रूचि थी। इनके नीतिपरक कथनों को सुनकर तुलसीदास घर से विरक्त होकर चले गए थे। इनकी एकमात्र रचना का नाम है-**'रत्नावली दोहा संग्रह'** जिसमें कुल 111 दोहे हैं। इनकी काव्य रचना से एक उदाहरण देखिए

''घी को घट है कामिनी, पुरुष तपत अंगार।

रत्नावलि घी अगिन को, उचित न संग विचार।''

5. देवीदास- भक्तिकाल के नीति कवियों में देवीदास का नाम प्रमुख है। इनका समय 16वीं शताब्दी का मध्यकाल की एकमात्र रचना का नाम है-**'राजनीति के कवित्त'**। इस रचना की एक हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है। देवीदास जाति के वैश्य थे तथा शेखावती के राव लूणकर्ण के मंत्री थे। ब्रजभाषा में रचित इस काव्य में राजनीति के अतिरिक्त अन्य सामाजिक विषयों पर भी कवित्त रचे गए हैं।

6. जमाल- राजस्थान के लोक नीतिकारों में जमाल का नाम प्रमुख है। मुसलमान कवि होते हुए भी ये भारतीय और सभ्यता से पूर्णतया परिचित थे। इनकी कोई स्वतंत्र रचना उपलब्ध नहीं हुई फिर भी जमाल दोहावली में इनके को संकलित किया गया है। इनकी रचना से एक उदाहरण देखिए

''रंग ज चोल मजीठ का, सन्त बचन प्रतिपाल।

पाहण रेख रु करम गत, ए किमि मिटे जमाल।।

पूनम चाँद कुसुम्भ रंग, नदी-तीर द्रुम-डाल।

रेत भीत भुरू लीपणो, ए थिर नहीं जमाल।।

7. उदैराज- ये बीकानेर के राजा राजसिंह के आश्रित कवि थे। इनकी दो रचनाओं का नाम हैं- **'उददैराजक वैदूहा'** तथा **'राज बावनी'**। ये दोनों रचनाएँ बीकानेर के अभाव जैन ग्रंथालय में सुरक्षित हैं। इनकी भाषा सामान्य बोलचाल की राजस्थानी है तथा इन्होंने विभिन्न विषयों पर दोहे लिखे हैं। उदैराज का समकालीन बाणं नाम का एक अन्य कवि भी है। **'कवि चरित्र'** जिसकी प्रसिद्ध रचना है। महाराजा महासिंह के आश्रित कवि थे। कवि चरित्र में कुल 45 पद्य हैं जिनमें बादशाह जहाँगीर की प्रशस्ति लिखी गई है। प्रवाहमयी ब्रजभाषा में रचित इस काव्य रचना में कलियुग का वर्णन किया गया है।

8. अब्दुर्रहीम खानखाना- ये अकबर के दरबारी कवियों में से एक थे। इनके पिता बैरम खाँ अकबर के अभिभावक थे। इन्होंने योद्धा के रूप में अनेक युद्धों में भाग लिया। यूं तो इन्होंने **'बरवै नायिका भेद'** तथा **'ज्योतिष ग्रंथ'** की भी रचना की, परन्तु नीति कवि के रूप में भी इनका नाम लिखा जा सकता है। इनके दोहों में नीति सम्बन्धी मार्मिकता तथा प्रभाव क्षमता देखी जा सकती है। कुछ विद्वानों ने अकबर के दरबारी कवियों में भी इनकी गणना की है। नीतिपरक कुछ उदाहरण देखिए

''रहिमन वे नर मर चुके, जो कहुँ माँगन जाहिं।
उन ते पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं।
ज्यों रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगै, बढ़े अंधेरो होय।।

9. बनारसी दास जैन- इनको हिन्दी का प्रथम आत्मकथाकार कहा गया है। इनका समय 1643 ई. से 1698 ई. के मध्य माना गया है। आरम्भ में वे बुरी संगत में फंसे हुए थे, लेकिन बाद में इन्होंने आत्म सुधार किया और नीतिपरक काव्य रचना में लीन हो गए। इन्होंने कुछ स्थानों पर हिन्दी गद्य का भी प्रयोग किया है। इन पर सुन्दरदास का प्रभाव भी देखा जा सकता है।

भक्तिकालीन अन्य नीति कवियों में वाजिद का नाम गिनवाया जा सकता है जो दादू दयाल के शिष्य थे। इनके द्वारा रचित 14 ग्रंथों का उल्लेख किया गया है जिनमें 'ग्रंथ गुण उत्पत्तिनामा', 'ग्रंथ प्रेमनामाग्रंथ गरजनामा', 'सायी वाजिद' आदि उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार जैन कवि राज समट (कर्मबत्तीसी तथा शील) बत्तीसी), कुशल वीर (कर्म चौपाई) आदि के नाम भी गिनवाए जा सकते है।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 रहीम का पूरा नाम क्या था।

प्र. 2 प्रद्युमन चरित किसकी रचना है।

प्र. 3 'गंगा लहरी' की भाषा कौन सी है।

11.4 सारांश

भक्ति काल में धार्मिक काव्यों की प्रमुखता रही है किन्तु इसमें वीर काव्य धारा भी निरंतर चलती रही है तुलसी तथा में जायसी ने अपने प्रबंध काव्यों में वीररस का उल्लेख किया है। साथ ही नीति काव्यों के निर्माण की परंपरा भी इसमें व्याप्त रही। वेद, रामायण, महाभारत, पुराणों तथा अन्य काव्यों में नीतिपरक उपदेश मिल जाते हैं। यह परंपरा पालि प्राकृत तथा अपभ्रंश से होती हुई कबीर, नानक दादू दयाल आदि संतों की वाणी तथा रामचरित मानस तथा पद्मावत इत्यादि ग्रंथों में भी मिल जाती है।

11.5 कठिन शब्दावली

(1) यथोचित - जैसा चाहिए वैसा

(2) पद्धति - प्रणाली, ढंग

(3) प्रचुर - बहुत अधिक

11.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. अब्दुर्रहीन खान-ए-खाना

प्र. 2 उ. सुधांशु अग्रवाल

प्र. 3 उ. अलंकृत डिंगल भाषा

11.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ नगेन्द्र ।

(2) हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।

11.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 भक्तिकालीन नीतिकाव्य का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्र. 2 भक्तिकाल के दरबारी काव्य की विशेषताएं बताइए।

*****

इकाई–12

भक्तितर काव्य व प्रमुख कवि और उनका रचनागत वैशिष्टय

संरचना

12.1 भूमिका

12.2 उद्देश्य

12.3 भक्तितर काव्य व प्रमुख कवि

12.3.1 दरबारी काव्य

12.3.2 प्रबंधात्मक चरित काव्य

स्वयं आकलन प्रश्न

12.4 सारांश

12.5 कठिन शब्दावली

12.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

12.7 संदर्भित पुस्तकें

12.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-12
भक्तितर काव्य व प्रमुख कवि और उनका रचनागत वैशिष्टय

12.1 भूमिका

इकाई-11 में हमने हिन्दी साहित्य के इतिहास के रामकृष्ण काव्येतर काव्य, भक्तिकालीन वीरकाव्य और भक्तिकालीन नीति काव्य के बारे में विस्तारपूर्वक जानकारी हासिल की। इसके अतिरिक्त इकाई-12 के अन्तर्गत हम भक्तित्तर काव्य, प्रमुख कवि, दरबारी काव्य और प्रबंधात्मक चरित काव्य का अध्ययन करेंगे।

12.2 उद्‌देश्य

इकाई-12 का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह ज्ञात करने में सक्षम होंगे कि -

1. भक्तितर काव्य का प्रतिपाद्य क्या है ?
2. भक्तितर काव्य के प्रमुख कवि कौन हैं ?
3. दरबारी काल का क्या महत्व है?
4. प्रबंधात्मक काव्य के काव्य-वैशिष्टय क्या रहा है ?

12.3 भक्तितर काव्य व प्रमुख कवि

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में रीतिकाव्य भी काफी लिखा गया। हिन्दी साहित्य से पहले संस्कृत भाषा में अनेक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ लिखे गए थे। भक्तिकाल तक आते-आते हिदी साहित्य यूं तो काफी समृद्ध हो चुका था, लेकिन अब तक इसमें लक्षण ग्रंथों का निर्माण नहीं हुआ था। इधर डॉ. शिव सिंह सेंगर ने अलंकार रत्नाकर को हिन्दी का प्रथम ग्रंथ माना है। इसका रचनाकाल 1300 ई. बताया गया है तथा इसके रचयिता पुरुष कवि है, लेकिन आज तक यह रचना प्राप्त नहीं हुई और न ही कही पर इसका उल्लेख हुआ है। इसलिए भक्तिकालीन कवि कृपाराम को ही रीति काव्य का प्रथम कवि कहा जा सकता है। भक्तिकालीन रीति कवियों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है

1. कृपाराम- कृपाराम को हिन्दी साहित्य में रीतिकाव्य का प्रवर्तक कहा गया है। इनकी रचना का नाम **'हिततरंगिणी'** है जिसकी रचना सन् 1541 में हुई। इस रचना में कुल पाँच तथा अध्याय तथा 400 छन्द हैं। पहले तरंग में नायक-नायिका के भेदों का वर्णन किया गया है। दूसरे में दूती, सरदी तथा उनके कर्मों का वर्णन है। तीसरे में स्वकीया नायिका का वर्णन है और चौथे में सामान्य नायिका के भेदों का वर्णन है। इस रचना पर भानुदत्त की रस मंजरी का प्रभाव भी देखा जा सकता है, परन्तु यह रचना अपनी मौलिकता के लिए प्रसिद्ध है। रीति-निरूपण तथा कवि कर्म की दृष्टि से यह रचना महत्त्वपूर्ण कही जा सकती है।

2. सूरदास- यूं तो सूरदास कृष्ण काव्यधारा के सर्वाधिक प्रमुख कवि हैं, लेकिन इनकी रचना **'साहित्य लहरी'** रीति काव्य की सभी विशेषताओं पर खरी उतरती है। **'सूरसागर'** के अनेक पदों में नायिका भेद तथा श्रृंगार रस आदि का विवेचन शास्त्रीय गुणो के आधार पर किया गया है। प्रभु दयाल मीतल ने तो साहित्य लहरी को अलंकार ग्रंथ की संज्ञा दी है। इसके आरम्भिक 37 पदों में नायिका भेद का वर्णन है तथा अन्य पदों में अलंकारों का वर्णन किया गया है, लेकिन यहाँ इस बात का उल्लेख करना जरूरी होगा कि सूरदास ने काव्य शास्त्रीय लक्षण बिल्कुल नहीं दिए। पुनःदृष्ट कूट शैली का प्रयोग होने के कारण इसे चित्र काव्य भी कहा जा सकता है।

3. नन्ददास- नन्ददास भी सूरदास के समान कृष्ण काव्यधारा के प्रमुख कवि माने जाते हैं। ये गोसाई विट्ठल नाथ के शिष्य थे। यूं तो नन्ददास के साथ अनेक काव्य रचनाएँ जुड़ी हुई हैं, लेकिन रीति काव्य से सम्बधित इनकी एकमात्र रचना है- **'रस मंजरी'** जिसका रचनाकाल है संवत् 1607। दोहा-चौपाई छन्दों में रचित इस काव्य रचना में स्वकीया, परकीया आदि के दो भेद हैं। कवि ने नायिका के नौ भेदों के साथ-साथ नायक के भी चार भेद दिए हैं। कवि ने लक्षणों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया केवल नायिकाओं के गुण, स्वभाव, चेष्टा आदि पर प्रकाश डाला है। एक उदाहरण देखिए-

''बिन जाने यह भेद सब, प्रेम न परचौ होय।

चरन होन ऊँचे अचल, चढ़त न देख्यों कोया।।

4. केशवदास- केशवदास की गणना भक्तिकालीन कवियों तथा रीतिकालीन कवियों में की जाती है। रामचन्द्रिका इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध काव्य रचना है, लेकिन इनको रीतिकाल का प्रवर्तक भी माना जा सकता है। यूँ तो केशवदास ने लगभग 10 काव्य रचनाओं की रचना की लेकिन रीति काव्य से सम्बधित उनके केवल तीन ग्रंथ है-**'कवि प्रिया'**, **'रसिक प्रिया'** तथा **'छन्द माला'** रसिक प्रिया में कुल 13 प्रकाश (अध्याय) हैं। पहले 13 प्रकाशों में कवि ने श्रृंगार रस के भेदों, नायक-नायिका भेद, मिलन स्थलों, हाव-भावों, वियोगश्रृंगार के भेदों तथा काम दशाओं का वर्णन किया है। शेष तीन प्रकाशों में कवि ने श्रृंगार से इतर रसों तथा रस दोषों पर प्रकाश डाला है।

'कवि प्रिया' में 16 प्रकाश (अध्याय) हैं। यद्यपि इसके चार प्रकाशों में अपने आश्रयदाता से सम्बधित जानकारी दी गई है, लेकिन इसके 5वें से लेकर 8वें प्रकाश तक अलकारों का निरूपण किया गया है। शेष प्रकाशों में विशेष अलंकारों की चर्चा की गई है। 'छन्द माला' के दो भाग है। इसमें विभिन्न छन्दों पर प्रकाश डाला गया है। केशवदास आचार्य होने के साथ-साथ उच्च कोटि के कवि भी थे तथा इन पर भानुदत्त की रस मंजरी तथा आचार्य विश्वनाथ के साहित्य दर्पण का प्रभाव भी देखा जा सकता है।

5. रहीम - रहीम का पूरा नाम अब्दुल रहीम खानखाना था। इनके जीवन वृत्त के बारे में अन्यत्र चर्चा हो चुकी है। इनके दो रीति काव्य प्रसिद्ध है- **'नायिका भेद'** तथा **'नगर शोभा'**। नायिका भेद में नायिकाओं के भेदों का वर्णन किया गया है और नगर शोभा में विभिन्न जातियों के अनुसार नायिकाओं का वर्णन किया गया है। यदि नायिका भेद भानुदत्त रस मंजरी से प्रभावित है तो नगर शोभा केशवदास की रसिक प्रिया से प्रभावित है। दोनों रचनाओं से कछ उदाहरण देखिए-

नायिका भेद ''भोरहि बोलि कोइलिया बढ़वति ताप।

घरी एक भरि अलिया! रह चुपचाप।।

बाहर लेकै दिया बरन जाई।

सासु ननद पर पहुँचत देति बुझाई।।

नगर शोभा ''उत्तम जाति है ब्राह्मणी, देखत चित्त लुभाय।

परम ताप ल में हरत, परसन बाके पाय।।

रूप रंग रतिराज में छतरानी इतरान।

मानौ रची विरंचि पचि कुसुम कनक में सान।।

6. कविराय सुन्दर- ये मूलतः ब्राह्मण जाति के थे और शाहजहाँ के दरबारी कवि थे। 1631 ई. में इन्होंने सुन्दर श्रृंगार की रचना की। यह पूर्णतया रीति ग्रंथ है तथा इसमें नायिका भेद और श्रृंगार रस का वर्णन किया गया है। इसमें सखी कर्म, दूती भेद तथा हाव-भाव का भी वर्णन देखा जा सकता है। कवि ने लक्षणों के लिए दोहा छन्द का प्रयोग किया है तथा उदाहरणों के लिए कवित्त, सवैया आदि छन्दों का प्रयोग किया है। सुन्दर श्रृंगार रचना पर भानुदत्त की रस मंजरी का प्रभाव देखा जा सकता है। इनकी कविता सरस होने के साथ-साथ रोचक भी है। कवि को यमक तथा अनुप्रास अलंकारों से अत्यधिक मोह दिखाई देता है। एक उदाहरण देखिए

''काके गए बसन? पलटि आए बसन सु,

मेरो कुछ बस न रसन उर लागै हौं।

भौहैं तर छौहें कवि सुन्दर सुजान सौहैं,

कछू अलसौहैं गौंर हैं जाके रस पागे हौं।।

7. न्यामक खाँ जान- भक्तिकालीन रीति कवियों में न्यामक खाँ जान का नाम विशेष महत्त्व रखता है। ये मूलत: प्रेममार्गी कवि थे, लेकिन काव्यांग निरूपण में भी इन्होंने विशेष रुचि दिखाई। **'रस कोष'**, **'कवि वल्लभ'**, **'श्रृंगार तिलक'** तथा **'रस मंजरी'** इनकी चार काव्य रचनाएँ हैं। 'रस कोष' में नव रसों तथा नायक-नायिका भेद का वर्णन किया गया है। 'कवि वल्लभ' में अलंकार, छन्द, गुण-दोष आदि का वर्णन है। शेष दो ग्रंथ रूद्र भट्ट द्वारा रचित 'श्रृंगार तिलक' तथा भानुदत्त की 'रस मंजरी' के अनुवाद मात्र हैं। इनके रीति निरूपण ग्रंथों में कोई विशेष मौलिकता नहीं है। एक स्थल पर काव्य-भाषा के बारे में ये लिखते भी हैं

''अच्छर सरल सरल ही भाव,
समझत ही बाढै चित्त चाव।
अच्छर सरल होइ सुध भाषा,
ताकी सब करिहैं अभिलाषा।
उकति बिसेष साई कै जानहु,
भाषा जो आवै सौ जानहूं।
उकति भली भाषा में आवै,
तो यह सोना सुगन्ध कहावै।।''

12.3.1 दरबारी काव्य

मुगल शासनकाल में फारसी ही राजभाषा थी, लेकिन सम्राट अकबर को हिन्दी भाषा से भी बड़ा प्रेम था। इसलिए नित्य प्रतिदिन के व्यवहार में हिन्दी भाषा का ही प्रयोग होता था इसलिए उनके दरबार में हिन्दी कवियों को भी उचित आदर मान दिया जाता था। आसकरण, पृथ्वीराज, मनोहर टोडरमल नरहरि, बीरबल नंदकवि तानसेन, रहीम आदि इनके दरबारी कवि थे। इनमें चतुर्भुजदास की चर्चा अष्टछाप के कवियों में की जा चुकी है। बीरबल के माध्यम से इनको अकबर के दरबार में सम्मान मिला। 'दादश यश' प्रसिद्ध काव्य रचना है। आसकरण नरवरगढ़ के राजा भीमसिंह के बेटे थे। इन्होंने गोसाई विट्ठल नाथ की शिष्यता ग्रहण कर ली थी। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' तथा कीर्तन संग्रह में इनके कुछ पद संकलित हैं। **पृथ्वीराज** राव बीका के वंश में पैदा हुए थे। दर्शन शास्त्र, ज्योतिष तथा संगीत के अच्छे जानकार थे। इनकी प्रमुख रचनाएं **'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री'**, पृथ्वीराज कशी, **'श्यामलता', 'दशरथ रावउत', 'वसुदेव रावउत'** और **'गंगा लहरी'** इनकी भाषा अलंकृत डिंगल है। इनकी काव्य रचनाओं में राज भक्ति, ईश्वर भक्ति तथा राष्ट्र भक्ति का वर्णन देखा जा सकता है। मनोहर कवि संस्कृत फारसी तथा हिन्दी के समर्थ विद्वान थे। ये पहले अकबर के दरबार में रहे और बाद में जहाँगीर के अकबर ने इनको राय की उपाधि प्रदान की। शत प्रश्नोत्तरी इनका उल्लेखनीय ग्रंथ है। राजा टोडरमल भले ही अकबर के शासनकाल में भूमिकर विभाग के मंत्री थे, लेकिन इन्होंने कुछ दोहे भी लिखे हैं। नरहरि भी अकबर के दरबारी कवि थे। संस्कृत, हिन्दी तथा फारसी तीनों भाषाओं पर इनका अच्छा अधिकार था। रुक्मिणी मंगल, छप्पय नीति तथा कवित्त संग्रह इनकी तीन काव्य रचनाएँ मानी गई हैं। भक्ति, नीति, राज प्रशंसा इनकी काव्य रचनाओं का प्रतिपाद्य है। इन्होंने कृष्ण भक्ति के अतिरिक्त नीति पर भी कुछ छन्द लिखे हैं। यही नहीं, इन्होंने हुमायूँ, अकबर, रीवा नरेश वीरभान आदि की यश प्रशस्तियाँ भी लिखी हैं। **'बीरबल ब्रह्म'** सम्राट अकबर के अनन्य मित्र थे। इनका काल 1528 ई. से 1583 के मध्य माना गया है। य बड़े ही विनोदी स्वभाव के व्यक्ति थे। इनके नाम से अनेक चुटकुले आज भी प्रसिद्ध हैं, लेकिन इनके लगभग 200 पद्य भी प्राप्त हुए हैं जिसमें श्रृंगार, कृष्ण लीला भक्ति और नीति का भी वर्णन किया गया है। गंगभाट अकबर के विशेष दरबारी कवि थे। इनका पूरा नाम गंगा प्रसाद था। इनके छन्दों में काव्य चमत्कार, वाग् वैदग्ध्य तथा भाषा शास्त्र उच्च कोटि का है। ये राजा मानसिंह, टोडरमल और रहीम के बहुत निकट थे। इनके कुल 400 छन्द प्राप्त हुए हैं जिसमें श्रृंगार, भक्ति और नीति का वर्णन किया गया

है। तानसेन, भी अकबर के दरबारी कवि और संगीतकार थे। ये पहले हिन्दू थे और बाद में मुसलमान बन गए। संगीत सार, रागमाला तथा गणेश स्रोत आदि इनकी प्रसिद्ध काव्य रचनाएँ हैं। इन्होंने ईश्वर, अल्लाह मुहम्मद, सरस्वती, गणेश, महादेव आदि की स्तुति में कुछ छन्द लिखे हैं। यही नहीं, कृष्ण की बाल लीला राधा-कृष्ण प्रेम, गोपी-विरह वर्णन में भी इनको सफलता प्राप्त हुई है। इनकी भाषा ब्रज है। जो कि फारसी से अत्याधिक प्रभावित है।

12.3.2 प्रबन्धात्मक चरित काव्य

भक्तिकाल के कुछ कवियों ने प्रबन्ध काव्य की भी रचना की है जिसमें वे किसी पौराणिक पात्र का यशोगान करते हैं। सुधांशु अग्रवाल ने **'प्रद्युमन चरित्र'** की रचना की जिसमें जैन धर्म के 24 तीर्थकरों की वंदना के साथ-साथ प्रद्युमन की कथा का भी वर्णन किया गया है। इसी प्रकार जाखू मणियार ने **हरिश्चन्द्र पुराण** की रचना की जिसमें सत्यवादी हरिश्चन्द्र के जीवन चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्तिकालीन भक्तितर काव्य की परम्परा काफी प्रसिद्ध है।

स्वयं आकलन हेतु प्रश्न

प्र. 1 बीरबल ब्रह्म किसके मित्र थे ?

प्र. 2 हरिशचंद्र पुराण किसकी रचना है ?

प्र. 3 अकबर के दरबारी कवि और संगीतकार कौन हैं ?

12.4 सारांश

भक्तिकाल जिसे स्वर्ण युग कहा जाता है। इसमें जहां ऐसे कवि भी थे जो दरबार में रहते थे जिसमें आसकरण पृथ्वीराज राव, बीरबल जैसे अनेक कवि थे जिन्होंने दर्शन शास्त्र, ज्योतिष तथा संगीत से संबंधित रचनाएं गढ़ी। सुधांशु अग्रवाल, मणियार जैसे कवि भी थे जिन्होंने प्रद्युमन हरिशचंद्र के जीवन चरित्र को लेकर प्रबंध चरित काव्यों की रचना की।

12.5 कठिन शब्दावली

(1) परोपकारी - भलाई करने वाला

(2) ओज - उजाला, प्रकाश

(3) रूष्ट - अप्रसन्न

12.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. अकबर

प्र. 2 उ. जाखू मणियार

प्र. 3 उ. तानसेन

12.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त

(2) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - रामकुमार वर्मा

12.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. । भक्तितर प्रबन्धात्मक चरित काव्य का विस्तार से वर्णन करें।

प्र. 2 भक्तितर काव्य में दरबारी कवियों का परिचय दीजिए।

****

इकाई–13
रीतिकाव्य

संरचना

13.1 भूमिका

13.2 उद्देश्य

13.3 उत्तर मध्यकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

13.3.1 रीतिकालीन परिस्थितियाँ

- राजनीतिक परिस्थितियाँ
- सामाजिक परिस्थितियाँ
- धार्मिक परिस्थितियाँ

स्वयं आकलन प्रश्न

13.4 सारांश

13.5 कठिन शब्दावली

13.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

13.7 संदर्भित पुस्तकें

13.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई–13
रीतिकाव्य

13.1 भूमिका

इकाई–12 में हमने हिन्दी साहित्य के इतिहास के भक्तित्तर काव्य, प्रमुख कवि, दरबारी काव्य और प्रबंधात्मक चरित काव्य के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की। इसके पश्चात् इकाई–13 के अन्तर्गत हम उत्तर मध्यकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, रीतिकालीन विविध परिस्थितियों, राजनीतिक परिस्थितियों, सामाजिक परिस्थियाँ और धार्मिक परिस्थितियों का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

13.2 उद्देश्य

इकाई–13 का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह ज्ञात करने में सक्षम होंगे कि

(1) उत्तर मध्यकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का वर्णन किस प्रकार किया है?

(2) रीतिकालीन परिस्थितियाँ कौन–कौन सी हैं?

(3) राजनीतिक परिस्थितियों का महत्व क्या है?

(4) सामाजिक परिस्थितियों का प्रमुख प्रतिपाद्य क्या है?

(5) धार्मिक परिस्थितियां क्या है?

13.3 उत्तर मध्यकाल (रीति काल) की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

उत्तर मध्यकाल को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल नाम दिया है तथा इसके लिए संवत् 1700 से संवत् 1900 तक का काल निर्धारित किया है। इस काल में काव्य–रचना करने की एक विशेष परिपाटी का अनुकरण हुआ। आदिकाल के समान रीतिकाल का नाम भी काफी विवादास्पद रहा है। विश्वनाथ मिश्र ने इसको 'श्रृंगार काल' कहा है तो मिश्र बन्धुओं ने 'अलंकृत काल' और डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'कला–काल' कहा है, लेकिन आज भी आचार्य शुक्ल द्वारा दिया गया नामकरण 'रीतिकाल' ही अधिक प्रचलित है। शुक्ल जी से पहले मिश्र बन्धुओं का ध्यान भी 'रीति' की ओर गया था, लेकिन उन्होंने इसका नामकरण उत्तर मध्यकाल किया था। संस्कृत काव्यशास्त्र में रीति नाम से एक विशेष काव्यशास्त्रीय सिद्धान्त चल निकला था जिसके प्रवर्तक आचार्य वामन थे। यहाँ रीति का अर्थ है– काव्य रचना की एक विशेष पद्धति, जिसमें काव्यशास्त्र के लक्षणों को आधार बनाकर काव्य–रचना की गई और इस पद्धति को रीति कहा गया। अत: यह नामकरण कुछ सीमा तक उचित प्रतीत होता है। रीतिकाल में तीन प्रकार का काव्य लिखा गया– रीतिबद्ध, रीतिमुक्त और रीतिसिद्ध। रीतिसिद्ध के अन्तर्गत वे कवि आते हैं जिन्होंने काव्यशास्त्रीय लक्षण देते हुए उदाहरण जुटाए। इसमें केशव, देव, चिन्तामणि, मतिराम आदि के नाम गिनवाए जा सकते हैं। रीतिबद्ध कवियों ने केवल उदाहरण दिए हैं, लक्षण नहीं। इनमें बिहारी का नाम प्रमुख है। रीतिमुक्त कवियों ने न तो लक्षण दिए और न ही उदाहरण। इन्होंने रीति की परिपाटी से मुक्त होकर काव्य रचना की है। धनानन्द, ठाकुर आदि प्रमुख कवि हैं।

अधिकांश विद्वान आचार्य शुक्ल द्वारा दिए गए नामकरण रीतिकाल से सहमत प्रतीत होते हैं क्योंकि इस काल में श्रृंगार के साथ–साथ भक्ति, नीति, वीरता आदि को आधार बनाकर कुछ उच्चकोटि की रचनाएं लिखी गई हैं। भले ही रीतिसिद्ध कवि हों, रीतिबद्ध था रीतिमुक्त– इन सबके साथ रीति नाम तो जुड़ा हुआ। इन सबकी रचना रीति के साथ ही हुई, अत: इसे रीतिकाल नाम देना सर्वथा उचित है।

13.3.1 रीतिकालीन परिस्थितियां

हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) की कालावधि लगभग 1650 से 1850 ई. तक स्वीकार की जाती है। रीतिकाल, श्रृंगारकाल, मुक्तकाल, अलंकृतकाल, शास्त्रीकाल, कलाकाल आदि इस युग के विविध नाम सुझाए गए हैं, जिनमें से रीतिकाल ही सर्वाधिक सारवान एवं सार्थक प्रतीत होता हैं रीतिकाव्य परम्परा में रीतिग्रन्थों अथवा रीतिबद्ध रचनाओं की प्रचुरता रही है तथा अपने क्षीण रूप में इस काव्यधारा का प्रवाह भारतेन्दु–युग तक की रचनाओं में व्याप्त है। आचार्य कवि केशव को इस रीत्तिकाव्य–परम्परा का प्रवर्तक माना जाता है। इस काल की सहित्यिक गतिविधि को यथार्थ रूप से जानने के लिए तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिवेश की जानकारी आवश्यक है।

● **राजनीतिक परिस्थितियां** – रीतिकाल राजनीतिक दृष्टि से निरंकुश राजतन्त्र तथा सामन्तवाद का युग था। इस काल में मुगल–शासन अपने विकास के चरम शिखर पर पहुंचकर औरंगजेब के शासन के बाद जर्जरित होकर पुनः अनेक प्रदेशों में बंटकर छोट–छोटे शासकों के अधीन हो गया। रीतिकाल के आरम्भिक वर्षो में शाहजहां का शासन था। परन्तु शाहजहां के शासनकाल के उत्तराध में ही इस साम्राज्य में अशान्ति के लक्षण दृष्टिगत होने लगे थे। एक ओर मध्य एशिया आक्रमणों से मुगल साम्राज्य की प्रतिष्ठा को धक्का लगा आर दूसरी ओर शाहजहां के अपव्यय के कारण आर्थिक स्थिति भी। उत्तराधिकार के लिए युद्ध हुआ जिसमें औरंगजेब की विजय हुई तथा दारा का वध कर दिया गया। दारा की हत्या मानवता. धार्मिक सहिष्णुता तथा उदारता की हत्या थी। औरंगजेब (मृत्यु 1707 ई.) का शासनकाल साम्राज्य विस्तार, धार्मिक अनुदारता, कला तथा संगीत के पतन का युग था। औरंगजेब की अमानवीय धार्मिक नीति के कारण अनेक देशी नरेश उसके विरूद्ध हो गए तथा मराठों और सिक्खों की जनशक्ति भी औरंगजेब के विरुद्ध संगठित हुई। औरंगजेब सन्देही प्रवृत्ति का व्यक्ति था। उसे अपने पुत्रों पर भी विश्वास नहीं था। परिणामतः औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल वंश को कोई योग्य उत्तराधिकारी प्राप्त नहीं हुआ। केन्द्रीय शासन के जर्जरित होने के कारण अनेक प्रदेशों में छोटे–छोटे शासकों के स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिए। पंजाब में बंदा बैरागी ने मुसलमानों को तंग कर रखा था। मध्यप्रदेश में भोंसले तथा गोंड राजाओं का शासन चल रहा था। दक्षिण में मराठों की शक्ति बढ़ने लगी थी। 1739 ई. में ईरान के नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया तथा दिल्ली को अच्छी तरह लूटा। मुगल शासक मुहम्मदशाह नादिरशाह के आक्रमण का सामना करने में असमर्थ रहे और मुगल साम्राज्य की रही सही शक्ति भी नष्ट हो गई। सन् 1757 तथा सन् 1761 में ईरान के अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किए। सदाशिव राव भाऊ, विश्वनाथ राव आदि की संगठित शक्ति ने पानीपत के मैदान में उसका सामना किया, किन्तु उन्हें पराजित होना पड़ा। इस पराजय के कारण मराठा शक्ति को बहुत धक्का लगा और मराठों का अपकर्ष आरम्भ हो गया। हिन्दी साहित्य के मध्ययुग का अन्त होते–होते भारतीय राजनीतिक जीवन विश्रृंखल एवं अराजकतापूर्ण हो गया था।

● **सामाजिक परिस्थितियां**– रीतियुगीन सामाजिक अवस्था अत्यन्त कारुणिक थी। राजनीतिक पृष्ठभूमि ने सामन्तवाद को जन्म दिया था। समाज में राजाओं एवं सामन्तों को ईश्वर–तुल्य समझा जाता था। राजाओं एवं बादशाहों के समान सामन्तों तथा अमीर लोगों में सुरा तथा सुन्दरी के प्रति प्रेम था। उनके पास रखैलों की भरमार थी। हिन्दुओं और मुसलमानों में समान रूप से मदिरापान चलता था। द्यूत का व्यसन भी उनमें था। नारी को इस समाज में उपभोग तथा वासना–तृष्पित का उपकरण मात्र समझा जाता था। भक्तिकालीन पारलौकिक प्रेम के आदर्श समाप्त हो चुके थे। और लौकिक प्रेम सर्वस्व था।

रीतियुगीन समाज उत्पादक तथा उपभोक्ता इन दो वर्गों में बंटा हुआ था। उत्पादक वर्ग में किसान मजदूर, व्यापारी आदि रखे जा सकते हैं तथा उपभोक्ता में बादशाह, सामन्त तथा उनसे सम्बन्धित लोग। उत्पादक वर्ग का यह प्रथम कार्य था कि वह उपभोक्ता वर्ग के लिए अन्न तथा अन्य सामान जुटाए। इस प्रकार उत्पादक वर्ग के श्रम पर उपभोक्तावर्ग का ऐश्वर्य–भोगपूर्ण जीवन चलता था। आधुनिक शब्दावली में उपभोक्ता–वर्ग तथा उत्पादक वर्ग का सम्बन्ध शोषक और शोषित का सा था। इन सामन्तों द्वारा प्रतिभाशाली कवियों एवं विद्वानों को राज्याश्रय भी प्राप्त था। उच्च तथा साधारण वर्ग के जन–समाज में अंध–विश्वास और रूढ़िया बढ़ती जा रही थी। जनता प्रायः अशिक्षित थी। ज्योतिषियों की भविष्यवाणियों में उन्हें विश्वास था। धर्म का उदात्त रूप विकृत हो चुका था और रीतिकालीन सामान्य समाज उसी विकृत रूप के प्रति ही अपनी अंधश्रद्धा रखता था। नरबलि जैसे अमानुषिक कृत्यों का संकेत भी कछ इतिहासकारों ने किया है। बालविवाह तथा बहुविवाह जैसी प्रथाएं भी प्रचलित थीं। भक्ति विलास का रूप धारण कर चुकी थी।

● **धार्मिक परिस्थितियां** – रीतियुग संस्कृति और सभ्यता की दृष्टि से ह्रास का युग था। ऐसी स्थिति में धर्म के उदात्त रूप की आशा करना व्यर्थ है। धर्म के नाम पर भी अनेक विकृतियां ही अवशिष्ट रह गई थीं। उस युग में अंधाविश्वास, रूढ़ियों का अनुसरण और बाह्याडम्बरों का पालन ही धर्म की परिभाषा थी। ईश्वर और खुदा की प्रेरणामयी भावनाओं के स्थान पर पण्डित्तों और मुल्लाओं का स्थूल और लौकिक अस्तित्व स्थापित हो गया था।

इस युग में पूर्व-मध्यकाल की भक्तियुगीन भावधाराएं अवश्य प्रवाहित हो रही थीं सामने न रहा था। परंतु भक्ति का उदात्त उनके सामने न रहा था। निर्गुण सन्तों की परम्परा इस समय विविध सम्प्रदायों के रूप में विद्यमान थी। परन्तु इन सम्प्रदायों में महात्मा कबीर और गुरुनानक के आदशों का अभाव था। सूफी-सिद्धांतों पर आधारित रचनाओं में भी स्थूल श्रृंगार की प्रचुरता थी। इसी प्रकार वैष्णव धर्म भी विविध शाखाओं-प्रशाखाओं में विभक्त था। इनकी भक्ति में श्रृंगारिकता का प्रवेश हो चुका था। लीलापुरुष कृष्ण के प्रति माधुर्य भक्ति अब राधाकृष्ण के स्थूल श्रृंगार का रूप धारण कर लेती है। रामभक्ति के अनुयायियों की भी यही स्थिति थी। तुलसी का राम-भक्ति का आदर्श लुप्त हो गया था। शौल-सौन्दर्य-शक्ति-सम्पन्न लोकमंगल विधायक पुरुषोत्तम राम अब सरयू के किनारे विहार करने वाले छैल छबीले नायक मात्र रह गए थे। कालान्तर में राधा कृष्ण के चरित्र अपने रूप में हट गए और वे महज दाम्पत्य जीवन के प्रतीक रूप में अवशिष्ट रह गए। प्रेम और भक्ति की सम्पक्त अनुभूति में से भक्ति क्रमश: क्षीण पड़ती गई और प्रेम का श्रृंगारिक रूप केन्द्र में आ गया। भक्तिकाल के रीतिकाल में रूपान्तरण की यही प्रक्रिया है।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 रीतिकाल की समय सीमा क्या है ?

प्र. 2 औरंगजेब की मृत्यु कब हुई थी ?

प्र. 3 केशवदास का जन्म कब हुआ ?

13.4 सारांश

रीतिकाल मुगलों के शासन के प्रभाव एवं वैभव के चरमोकर्ष का युग था। अकबर, जहांगीर और शाहजहां की उदारवादी नीति भी औरंगजेब के शासनकाल में समाप्त हो गई थी। औरगंजेब की कट्टरता के कारण धार्मिक कार्य व्यापार भी नहीं हो पा रहा था। सामाजिक दृष्टि से यह काल घोर अध:पतन का युग रहा। इस दौरान सामंतवाद सभी दोषों से युक्त था।

13.5 कठिन शब्दावली

(1) प्रक्रिया - वह क्रिया जिसमें कोई कार्य होता है

(2) प्रबल - बलवान

(3) अविछिन्न - लगातार

13.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र.1 उ. - वि.स. 1643-1700

प्र.2 उ. - 1707 ई. में

प्र.3 उ. - सन् 1555 में

13.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त

(2) हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नागेन्द्र

13.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 रीतिकाल की परिस्थितियों का वर्णन करें।

प्र. 2 रीतिकाल की राजनीतिक पृष्ठभूमि कैसी थी विस्तार से बताएं।

*****

इकाई–14

रीतिकाव्य परंपरा

संरचना

14.1 भूमिका

14.2 उद्देश्य

14.3 रीतिकाव्य परंपरा

- रीति का अर्थ
- रीतिकाल-परंपरा का प्रवर्तन

14.3.1 काल सीमा और नामकरण

- रीतिकाल का नामकरण

स्वयं आकलन प्रश्न-1

14.4 सारांश

14.5 कठिन शब्दावली

14.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

14.7 संदर्भित पुस्तकें

14.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई–14
रीतिकाव्य परंपरा

14.1 भूमिका

इकाई–13 में हमने हिंदी साहित्य के इतिहास के अंतर्गत उत्तर मध्यकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, रीतिकालीन विविध परिस्थितियों, राजनीतिक परिस्थितियां, सामाजिक परिस्थितियां और धार्मिक परिस्थितियों की जानकारी हासिल की। इसके पश्चात इकाई–14 के अंतर्गत हम रीति काव्य परंपरा, रीति का अर्थ, रीति काव्य–परंपरा का प्रवर्तन, रीतिकाल की काल सीमा तथा नामकरण का अध्ययन करेंगे।

14.2 उद्‌देश्य

इकाई–14 का अध्ययन करने के पश्चात हम यह ज्ञात करने में सक्षम होंगे कि

1. रीतिकाव्य परंपरा कैसी है ?
2. रीति का अर्थ क्या है ?
3. रीति काव्य–परंपरा का प्रवर्तन कैसे हुआ ?
4. रीतिकाल की काल सीमा और नामकरण कैसे हुआ ?

14.3 रीतिकाव्य परंपरा

● **रीति का अर्थ**– संस्कृत काव्यशास्त्र में 'रीति' शब्द का प्रयोग काव्यांग विशेष के अर्थ में हुआ है। आचार्य वामन ने 'विशिष्ट पदरचना को 'रीति' कहकर इस काव्यागों में सर्वाधिक महत्त्व देते हुए इसे काव्य की आत्मा घोषित किया था परन्तु बाद में रीति को रस का उपकारक मात्र ही स्वीकार किया गया। वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली आदि इसके भेदों का वामन ने प्रतिपादन किया था। हिन्दी के आचार्यों ने भी रीति को इसी अर्थ में ग्रहण कर उसे काव्यांग विशेष के रूप में निरूपित किया है। परन्तु रीतिकाल अथवा हिन्दी की रीतिकाव्य परम्परा से सम्बद्ध रीति शब्द का अर्थ संस्कृत के रीति शब्द से भिन्न है। यहां इसका अर्थ काव्य–रचना–पद्धति (तथा उसके निर्देशक शास्त्र) से है। शुक्ल जी ने उत्तर–मध्यकाल (1650–1850 में रचित हिन्दी साहित्य में रीति–ग्रन्थों की प्रचुरता के कारण इस काल को रीतिकाल कहा।

● **रीतिकाव्य परम्परा का प्रवर्तन** – रीतिकाल में जिस साहित्यिक दृष्टिकोण का विकास हुआ, वह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। वह एक प्राचीन साहित्यिक परम्परा का ही विकास था। संस्कृत में काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों को सम्पन्न एवं समृद्ध परम्परा मिलती है। हिन्दी में रीतिग्रन्थों का सूत्रपात भक्तिकाल में देखा जा सकता है। भक्ति–साहित्य में कृष्णकाव्य के प्रेणताओं ने अप्रत्यक्ष रूप से रीतिकाव्य की रचना की है। परन्तु परिणाम तथा गुण की दृष्टि से सन् 1650 ई. से पूर्व का रीतिकाव्य भक्तिकाव्य को अपेक्षा अत्यन्त गौण था। इस परम्परा के प्रवर्तक महाकवि केशव (1555–1617 ई.) थे।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने चिन्तामणि को रीतिकाल का प्रवर्तक माना है। वे केशव को रीतिकाल का प्रवर्तक स्वीकार नहीं करते। इसका विषय में उनका कथन है ''इसमें सन्देह नहीं कि काव्यरीत्ति का सम्यक् समावेश पहले–पहल आचार्य केशव ने ही किया था, पर हिन्दी में रीतिग्रन्थों की अविरल और अखंडित्त परम्परा का प्रवाह केशव की कविप्रिया के पचास वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर, केशव के आदर्श को नहीं'' आचार्य शुक्ल केशव को अलंकारवादी मानते हैं। उनके मत में चमत्कार की केशव का आदर्श था।

केशवदास के रीति–निरूपण विषयक दो ग्रन्थ हैं 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया'। केशव ने अलंकारों को महत्व देते हुए भी 'रसिकप्रिया' में रस का विवेचन किया है। अन्य रीतिकालीन कवियों की भांति केशव ने आचार्यत्व के साथ कवि कर्म का भी निर्वाह किया है। 'रामचन्द्रिका' उनके कवि रूप का कीर्तिस्तम्भ है।

आचार्यत्व की दृष्टि से केशवदास का महत्त्व चिन्तामणि से कहीं अधिक है। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक लिखते हैं, ''चिन्तमामणि यदि रोतिकाव्य परम्परा के प्रमुख आचार्य होते तो परवर्ती रीतिबद्ध आचार्य-कवि अवश्य उनका नामोल्लेख अपने ग्रंथों में करते, किन्तु किसी ने चिन्तामणि का आचार्य-कवि के रूप में स्मरण नहीं किया। हा, केशवदास के प्रति देव और दास जैसे महाकवियों ने भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है।'' इस प्रकार प्रभाव की दृष्टि से, ख्याति की दृष्टि से और असाधारण साहित्यिक व्यक्तित्व की दृष्टि से और असाधारण साहित्यिक व्यक्तित्व की दृष्टि से चिन्तामणि केशव से बहुत पीछे पड़ जाते हैं। जहां तक अनुकरण का सम्बन्ध है, रीतिकालीन काव्य में अनुकरणजन्य साम्प्रदायिकता की अपेक्षा विविध क्षेत्रों से प्रभाव ग्रहण की प्रवृत्ति अधिक लक्षित होती है। अतएव चिन्तामणि के ही रीतिकालीन कवियों द्वारा अनुकरण सम्बन्धी बात में अधिक तथ्य दिखाई नहीं देता। अत: कहा जा सकता है कि रीतिकाल में चिन्तामणि का महत्त्व संयोगजन्य है कि उनके समय से रीति-ग्रंथों को एक अविच्छिन परम्परा चल पड़ी। परन्तु युग प्रवर्तन का गौरव उन्हें नहीं दिया जा सकता और न ही इस रूप में किसी परवर्ती रीतिकवि ने उनका स्मरण ही किया है। वस्तुत: केशवदास ही रीति काव्य-परम्परा के प्रवर्तक होने के अधिकारी हैं। वे ही हिन्दी के पहले सचेत और जागरूक आचार्य हैं जिन्होंने रीति-निरूपण में पाण्डित्यपूर्ण रूचि का प्रदर्शन किया। 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' जैसे ग्रंथ उनके आचार्यत्व के प्रबल प्रमाण हैं। यहां डॉ. नगेन्द्र का मत उद्धृत करना समीचीन प्रतीत होता है यदि हम अपनी दृष्टि को सीमित कर लें और हिन्दी काव्यशास्त्र की परम्परा में ही केशव के आचार्यत्व का विचार करें तो केशव का महत्व असंदिग्ध है। उनको हिन्दी काव्यशास्त्र का प्रवर्तक होने का गौरव प्राप्त है। हिन्दी के उस व्यापक युग के प्रवर्तक होने का श्रेय न तो केशव के किसी पूर्ववर्ती कवि को दिया जा सकता है और न हो परवर्ती को। नि:सन्देह, केशव ही रीतिकाव्य परम्परा के प्रतिष्ठाता हैं। अनेक परवर्ती कवियों ने उनकी स्तुति करते हुए उन्हें मार्गदर्शक के रूप में स्वीकार किया है। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी की स्पष्ट मान्यता है, ''कई काव्यशास्त्रीय पक्षों, और प्रबन्ध तथा मुक्तक काव्य-शैलियों का प्रतिनिधित्व करने के कारण भक्ति से रीति काव्यधारा में रूपान्तरण का श्रेय अधिकतर केशवदास को दिया जाता है। वे कालक्रम से भक्तिकाल में है, पर प्रवृत्ति की दृष्टि से रीतिकाल में।'' अत: केशवदास ही रीतिकालीन साहित्य के प्रवर्तक कहे जाने चाहिए।

14.3.1 काल सीमा और नामकरण

● **रीतिकाल का नामकरण** - काल की अविच्छिन धारा कि के समान साहित्यिक परम्परायें और प्रवृत्तियां निरंतर गतिशील रहा करती है। साहित्य में एक बार जो प्रवृत्ति उद्‌बद्ध हो जाती है उसमें अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण तीव्रता और मन्दता की प्रक्रिया का होना तो सहज विश्वसनीय है किंतु उसका सर्वथा विलुप्त होना नितांत अकल्पनीय है। प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ विकास और हास की प्रक्रिया से अनिवार्यत: सम्बद्ध हैं। साहित्य की इस धारा प्रवाह में अनेक मोड़ आते हैं और ऐसी स्थिति में प्रत्येक मोड़ की पहचान हेतु उस युग और की प्रवृत्ति विशेष आदि के आधार पर उस युग का नामकरण कह आवश्यक हो जाता है।

अत: अब समस्या सामने आती है कि नामकरण का आधार क्या है? बिना नाम के किसी वस्तु, व्यक्ति, स्थान आदि की पहचान नहीं होती है। उसी प्रकार किसी युग के नामकरण के लिए उस युग, कृति, कर्ता, रचना पद्धति, वर्ण्य विषय आदि विशेषता को आधार बनाया जा सकता है। कभी संपूर्ण युग में ऐसी कोई विशेष प्रवृत्ति नहीं होती है जिसे प्रधान में रखकर नामकरण किया जा सके ऐसे में काल के पूर्ण व उत्तर के दो भाग कर दिए जाते हैं। हिंदी साहित्य के अनेक इतिहासकारों ने इन चारों बातों को दृष्टि में रखते हुए उसके विभिन्न कालों का नामकरण किया है किंतु नामकरण की इन चार पद्धतियों में कृति और कर्ता सबंधी आधार अपने आप में से अत्यंत स्थूल और अवैज्ञानिक कहे जा सकते हैं क्योकि किसी भी युग में न तो समस्त रचनाओं के नामों में किसी भी प्रकार का साम्य रहता है और न एक ही कवि का प्रभाव भी सब पर एक-सा हो सकता है। जहां तक वर्ण्य विषय अथवा रचना पद्धति के आधार बनाए जाने का प्रश्न है ये दोनों अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म और वैज्ञानिक हैं, कारण किसी भी वर्ग को प्रेरित और प्रभावित करने

वाले शक्ति जब एक होती है तो उसका वर्ण्य विषय अथवा रचना शैली साधारण रूप से एक जैसी ही हो जाती है। रचनाओं के नामों में साम्य एक एक कवि का अपने समकालीनों अथवा परवर्तियों पर प्रभाव भी वर्ण्य विषय तथा रचना शैली के साम्य के कारण ही हो जाया करता है पर इन दोनों में कौन सा श्रेयकर है यह बताना अपने आप में कठिन है, कारण वर्ण्य विषय तथा अभिव्यक्ति अर्थात् रचना शैली का अन्योन्याश्रित संबंध होता है वैसे भी वर्ण्य विषय और शैली यदि सभी कवियों की एक सी हो जाए तो उस दशा में एक कवि की रचना को दूसरों की कृतियों से पृथक करना कठिन हो जायेगा साधारणत: देखा यही जाता है। कि युग विशेष के कवियों का वर्ण्य विषय और रचना पद्धति इन दोनों में से एक का ही साम्य होता है अत: इन दोनों प्रणालियों में जिसकी आलोचना युग में प्रधानता हो उसी को आधार मानना चाहिए।

हिन्दी साहित्य के उत्तर-मध्यकाल में सामान्यत: श्रृंगारपरक लक्ष्ण ग्रंथों की रचना हुई। नामकरण की दृष्टि से विद्वानों में पर्याप्त मतभेद का विषय रहा है। मिश्रबधुओं ने इसे 'अलंकृत काल' कहा जबकि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'रीतिकाल' और प. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'श्रृंगारकाल' की संज्ञा दी। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन अभिधानों में से प्रथम दो के लिए जहां रचना पद्धति का आधार ग्रहण किया गया है वहां अंतिम उस युग की रचनाओं के आधार पर है।

मिश्रबंधुओं ने इस काल को जिस 'अलंकृतकाल' नाम से अभिहित किया उसके समर्थन में इनका मत था कि इस काल में अलंकारों की प्रवृत्ति मुख्य थी जिसके लिए इन्होंने केशव आदि आचार्यों के काव्यों को अपने मत का आधार बनाया, किन्तु आलोचकों ने इस मत का खंडन करते हुए अपने विचार व्यक्त किए। इनके अनुसार केशव के अतिरिक्त अधिकांश रीतिकवियों ने रस और ध्वनि को काव्य की आत्मा मानकर सुंदर काव्य रचना की जिसमें मतिराम व बिहारी उल्लेखनीय है। दूसरी बात अलंकार की प्रवृत्ति तो आदिकाल से विभूषित रही है, ''इस आधार पर क्या सभी कालों को अलंकृत काल कहा जाए। मिश्र बंधुओं ने स्वयं रीतिकालीन कवियों के ग्रंथों की रीति ग्रंथ और उनके विवेचन को रीतिकथन कहा है। इस पर भी क्या वे इस काल को अलकृतकाल नाम देना समीचीन समझते थे। 'इस प्रणाली के साथ रीति ग्रंथों का भी प्रचार बढ़ा और आचार्यता की वृद्धि भी। आचार्य लोग तो स्वयं कविता करने की रीति सिखलाते थे। मानों के संसार से यों कहते हैं अमुक-अमुक विषयों के वर्णन में अमुक प्रकार के कथन उपयोगी है और अमुक प्रकार के अनुपयोगी।'' आश्चर्य होता है कि मिश्रबंधुओं ने उस काल की सामान्य प्रवृत्ति रौति को इतनी स्वच्छ व्याख्या करते हुए उसमें इसकी प्रधानता देखते हुए भी अपने काल विभाजन का आधार उसे क्यों नहीं बनाया? संस्कृत काव्यशास्त्र में अलंकार शब्द विविध काव्यांगों का बोधक अवश्य रहा है अत: इस अर्थ में यदि अलकार विशेषण इस युग की काव्यांग निरूपण प्रवृत्ति के लिए ग्रहण किया जाए तो असंगत नहीं पर चूंकि 'अलंकृत शब्द 'कृत' प्रत्यय के कारण इस युग की कविता का ही विशेषण हो सकता है। लक्षण ग्रंथों का नहीं जो प्रचुर परिणाम में उपलब्ध होते हैं इसलिए इस युग को किसी सीमा अलंकृतकाल नहीं। किन्तु हिंदी में अलंकार शब्द काव्यांग विशेष के लिए ही रूढ़ है, काव्यशास्त्र के लिए, गृहित नहीं होता। अत: हार आर अव्याप्ति के कारण इस नाम को स्वीकार करना भी संगत नहीं होता। जहा तक शेष दो विशेषणों-रीति और श्रृंगार का प्रश्न है वे दोनों ही अपने-अपने स्थानों पर महत्त्वपूर्ण है। इस युग के लिए 'रीति' विशेषण का प्रयोग करने वाल आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तक ने इसे श्रृंगारकाल कहे जान में आपत्ति प्रकट नहीं की। किंतु इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि इस युग का श्रृंगारकाल कहना सर्वथा समीचीन है। इस नाम के पक्ष में जो यह तर्क दिया जाता है कि इस युग के कवियों की व्यापक प्रवृत्ति श्रृंगार वर्णन की थी, उसके स्वीकार किए जाने में आपत्ति की जा सकती हैं इसमें संदेह नहीं कि इस युग में अधिकाश रचनाए श्रृंगारिक ही हैं तथापि ये आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए ही लिखी गई है। इनका प्रेरक तत्व कवियों की कामवासना नहीं 'अर्थभावना' है जो विलासी आश्रयदाताओं से इस प्रकार के काव्य की रचना करके ही प्राप्त की जा सकती थी। वैसे इस युग में अनेक ऐसे कवि भी हुए हैं जो इस प्रकार के वर्णन करने पर भी अपने कर्म से असंतुष्ट रहे हैं यथा -

आगे के कवि रीझि हैं तो कविताई

न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानौ है

स्पष्टत: यह ध्वनि निकलती है कि इस प्रकार के श्रृंगारिक काव्य को वे 'काव्य' कहने में ही संकोच करते थे। गोप, रसरूप, सेवादास आदि कतिपय कवियों द्वारा अपने लक्षण ग्रंथों में श्रृंगार का बहिष्कार भी इसी बात को प्रमाणित करता है कि इन कवियों की मूल प्रवृत्ति श्रृंगारिक नहीं थी श्रृंगार वर्णन के स्थान पर वे अपने ग्रंथों का प्रणयन सामान्यत: काव्यांग निरूपण के उद्देश्य से ही करते थे। अनेक कवियों ने अपने ग्रंथों में प्राय: यही कहा है कि वे इनका निर्माण दूसरों को काव्य रचना पद्धति का ज्ञान कराने के लिए कर रहे हैं जैसे-

भाषा भूषण ग्रंथ को जो देखै चित लाय

विविध अर्थ साहित्य रस, ताहि सकल दरसाय

यद्यपि ये लोग उस अर्थ में आचार्य नहीं थे जिसमें कि संस्कृत काव्यशास्त्र विवेचक आचार्य आते हैं पर स्वच्छ और सुबोध निरूपण के कारण शिक्षक के अर्थ में तो आचार्य कहे ही जा सकते हैं। इनमें चिंतामणि, कुलपति, प्रतापसाहि पूर आदि शुक्ल जी ने इस नाम की आलोचना करते हुए कहा है वास्तव में श्रृंगार और वीर इन दो रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधानता श्रृंगार रस की ही रही इस काल को रस विचार के से कोई 'श्रृंगार काल' कहे तो कह सकता है।

अत: यह कह सकते है कि इस युग की मूल प्रवृत्ति श्रृंगारिक नहीं और इसलिए इसे श्रृंगारकाल कहना भी अपने से युक्ति युक्त नहीं। श्रृंगारकाल की संज्ञा रीति आंतरिक प्रवृत्ति का ठीक से प्रतिनिधित्व नहीं करती कारण है कि हिंदी जगत में श्रृंगारकाल के नाम का अनुसरण नहीं किया गया। जहां तक इस काल के अन्य नाम 'रीतिकाल' का प्रश्न है उस पर विचार करने से पूर्ण तत्सम्बन्धी अन्य सुझावों पर विचार कर लेना संगत होगा इनमें प्रथम अनुसार 'दरबारी युग' कहा जाना चाहिए जबकि द्वितीय के अनसार इसे 'मुक्तक काल' तथा तृतीय के अनुसार 'कलाकाल' भी कहा जा सकता है।

रमाशंकर शुक्ल द्वारा दिया 'कलाकाल' नाम समीचीन नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि काव्य में भाव व कला पक्ष को मिश्रित रूप में ही देखा जाता है। केवल कला से काव्य का निर्माण नहीं हो सकता। जैसे वाणी के होने पर भी अभिव्यक्ति तभी की जा सकती है जब अनुभूति होती है। घनानंद के शब्दों से स्पष्ट हो जाता है कि इन कवियों में कला की अपेक्षा भाव उत्कर्ष ही प्रधान था तभी वे कहते हैं -

लोग लागि है कवित्त बनावत

मोहि को मोरे कवित्त बनावत

'दरबारी युग' के कहे जाने में सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि इस नाम से इस काल की मूल प्रवृत्ति का बोध नहीं हो पाता। दूसरे, इस काल का साहित्य केवल दरबारियों द्वारा ही नहीं रचा गया -दरबारों में प्रवेश प्राप्त न कर सकने वाले अनेक कवियों ने भी बहुत बड़े परिणाम में इसमें अपना योगदान किया है। इतना ही नहीं जिन कवियों को राजाश्रय प्राप्त रहा, उन्होंने भी राजदरबार में प्रवेश प्राप्त करने से पूर्व अथवा राजदरबार के परिवेश से बाहर निकल आने के बाद अनेक ग्रंथों की रचना की। तीसरे यह कवि सही अर्थ में दरबारी नहीं थे अन्य दरबारी जहां वेतनभोगी राजकर्मचारी हुआ करते थे वहां ये लोग राजाश्रय प्राप्त प्रतिष्ठत नागरिक समझे जाते थे तथा राजाओं नवाबों तथा श्रीमन्तों के निमंत्रण पर कुछ समय के लिए उनके यहां रहने के लिए चले जाते थे कर्मचारियों के समान बंधकर दरबार में रहने वाले बहुत ही कम कवि थे।

इसी प्रकार इस काल को 'मुक्तककाल' नाम देने में सबसे बड़ी कठिनाई यह आती है कि इस युग के समान इसके पूर्ववर्ती भक्तिकाल में भी सामान्य रूप से मुक्तक काव्य की रचना हुई है- प्रबंधकाव्यों की रचना दोनों ही युगों

में सीमित परिणाम में हुई है। यदि रचनी पद्धति के आधार पर इस काल को यह नाम दिया जाता है, तो दूसरे युग को इसी आधार पर क्या नाम दिया जाएगा? इसके साथ ही अतिव्याप्ति दोष से भी यह नाम मुक्त नहीं है। उधर इससे इस काल की साहित्यिक चेतना का भी पूरा बोध नहीं हो पाता– केवल इस काल के मुक्तक साहित्य के बाहरी रूप की सामान्य प्रतीति होती है, उसके समग्र वैशिष्टय की प्रतीति नहीं हो पाती। रही बात इस काल को रीति विशेषण सहित प्रयोग में लाने की उसके विषय में यह सहज ही कहा जा सकता है कि– 'श्रृंगारकाल' आदि अन्य सभी नामों की अपेक्षा यह अपने आप में अधिक वैज्ञानिक एवं संगत है, कारण इसमें रीति संबंधी ग्रंथ ही अधिकांशत: नहीं लिखे गए अपितु इस युग के कवियों की है प्रवृत्ति भी ऐसे ही ग्रंथ रचने की थी। उस समय का वातावरण ही कुछ ऐसा था। उस युग के प्राय: प्रत्येक कवि ने रीति परम्परा के सांचे में ढलकर ही लिखा, क्योंकि तभी उसे समुचित प्रतिष्ठा प्राप्त हो सकती थी। डॉ. भगीरथ मिश्र के शब्दों में, ''उसे इस अलंकार, नायिका भेद, ध्वनि आदि के वर्णन के सहारे ही अपने कवित्व प्रतिभा दिखाना आवश्यक था। इस युग में उदाहरणों पर विवाद होते थे। इस बात पर कि उसके भीतर कौन सा अलंकार है? कौन सी शब्द शक्ति है? कौन सा रस या भाव है? उसमें वर्णित नायिका किस भेद के अन्तर्गत है? काव्यों की टीकाओं और व्याख्याओं से काव्य सौन्दर्य को स्पष्ट करने के लिए भी उसके भीतर अलंकार इस नायिका भेद को ही स्पष्ट किया जाता था कवि गोष्ठियों में भी यही प्रवृत्ति थी अत: यह युग रीति पद्धति का ही युग था और इसमें इससे संबंधित असंख्य ग्रंथ लिखे गए।''

आचार्य शुक्ल द्वारा दिए गए 'रीति' शब्द के अर्थ को भी देख लेना आवश्यक है। संस्कृत काव्यशास्त्र में सर्वप्रथम वामन ने 'रीति' शब्द का प्रयोग किया। उनके मतानुसार यह विशिष्टा पद रचना रीति है। वामन ने इसे काव्य की आत्मा रूप में स्वीकारा और इसके तीन भेद किए वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली पर आगे चलकर आनंदवर्धन के समय ध्वनि संप्रदाय की काव्यजगत में विशिष्ट प्रतिष्ठा हुई जिसके कारण अलंकार के वक्रोक्ति के समान रोति को भी महत्ता नष्ट हो गई। विद्यापति के समय यह काव्य रचना पद्यति तथा उसका निर्देशक शास्त्र के रूप में प्रयुक्त हुई। रीतिकालीन आचार्य कवियों ने इसी अर्थ में 'पंथ' शब्द का अर्थ रस, अलंकार, शब्द शक्ति, छद आदि काव्यांगों का निरुपण ही रह गया और वामन द्वारा गृहीत अर्थ से इसका व्यापक रूप हो गया। अत: रोति कबि या 'रीति' ग्रंथ में प्रयुक्त रीति शब्द का सबंध काव्यशास्त्र से समझना चाहिए।

शुक्ल जी द्वारा दिए गए इस नाम पर कुछ आक्षेप लगे जैसे कि घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर सूदन आदि वे कवि इस नाम में समाहित नहीं होते जिन्होंने अपने काव्य ग्रंथों की रचना न तो काव्यांगों के विवेचन के लिए की और न उन पर काव्यशास्त्र का प्रभाव ही रहा किन्तु इसके उत्तर में यह स्पष्ट कर देना असंगत न होगा कि इन कवियों में सूदन, बोधराज, प्रभूति गिने चुने वीर कवि आदिकाल अर्थात् वीरगाथा की परंपरा में भी रखे जाने चाहिए, कारण इनकी रचना शैली उस युग के ग्रंथों की शैली से दूर नहीं है। इसी प्रकार इस युग में वृंद आदि नीति कवियों की रचनाएं भी भक्तिकाल की मर्यादावादी विचारधारा को परपरा की द्यांतक है। उक्त आलोचनाओं से लेकिन रीतिकाल सत्ता पर कोई विशिष्ट प्रभाव नहीं पड़ता है। क्योंकि इन कवियों और रचनाओं को 'रीतिमुक्त' नाम देने में कोई हर्ज नहीं न होगा।

विषय चयन के आधार पर इस काल को रीतिकाल कहने में किसी प्रकार का अव्याप्ति दोष न होगा क्योंकि प्रत्येक कवि द्वारा इसमें श्रृंगार को न्यूनाधिक रूप से ग्रहण किया जाना भी तो एक विशेष प्रकार की रीति (पद्धति) ही है। इस विषय में डॉ. भागीरथ मिश्र के निष्कर्ष को उपन्यस्त करना अधिक संगत प्रतीत होगा, ''कलाकाल कहने से कवियों की रसिकता को अपेक्षा होती है, श्रृंगारकाल कहने से वीर रस और राजप्रशंसा की। रीतिकाल कहने से प्राय: कोई भी महत्त्वपूर्ण वस्तुगत विशेषता उपेक्षित नहीं होती और प्रमुख प्रवृत्ति सामने आ जाती है। यह युग रीति पद्धति का युग थां यह धारणा वास्तविक रूप से सही है। वस्तुत: तथाकथित रीतिकाल भक्तिकाल (पूर्व-मध्यकाल) का बढ़ा हुआ रूप है अत: इसे उत्तर-मध्यकाल कहना अधिक समीचीन है। रीति पद्धति नि:संदेह इस काल में प्रबल रही है किंतु इसके साथ-साथ भक्ति और वीरता की धाराएं भी अत्यंत वेगवती रही है और इन्हें किसी भी दशा में रीति पद्धति से

गौण नहीं कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस काल में संस्कृत के पौराणिक काव्यो चरित काव्यों और पुराणों के अनुवाद की परम्परा भी प्रवाहमयी रही। इस प्रकार भक्तिकाल (पूर्व-मध्ययुग) के साहित्य की लगभग सारी प्रवृत्तियां उत्तर-मध्यकाल में देखी जा सकती है। जिस प्रकार पूर्व-मध्यकाल में पौराणिक युग की भक्ति के आदोलन का पुर्नजागरण देखा जा सकता है, उसी प्रकार उत्तर उत्तर-मध्यकाल में भी भारतीय संस्कृत साहित्य को हिंदी में उलथाने का स्तुत्य प्रयास किया गया है अत: उक्त काल को क्षेत्र विस्तार सृजन की विविधता प्रकाश में आई नवीन सामग्री तथा नए दृष्टिकोण के आधार पर उत्तर-मध्यकाल कहना अधिक संगत होगा।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 मिश्रबंधुओं ने रीतिकाल को क्या नाम दिया है।

प्र. 2 रीतिकाल को 'कलाकाल' नाम किसने दिया।

प्र. 3 रीति को 'काव्य की आत्मा' किसने कहा।

14.4 सारांश

संस्कृत काव्यशास्त्र की परंपरा में रचित कतिपय, जिन लक्षण ग्रंथों की रीतिकाल से रीतिमरूपण करने वाले लक्षण ग्रंथों की व्यापक रचना हुई। उस काल में यह रीति विमिरूपण का विस्तार ही था कि हर प्रकार की काव्य रचना को काव्य रीति या रीति काव्य कहा जाने लगा। उसी क्रम में अलंकार रीति, रस रीति आदि रूप भी प्रचलित हो गए। इसी आधार पर विद्वानों द्वारा इसे श्रृंगार काल, अलंकृत काल आदि नामों से सुशोभित किया गया।

14.5 कठिन शब्दावली

(1) उत्तरोत्तर - आगे-आगे

(2) वैशिष्टय - विशेषताएं

(3) मुरव्वत - लिहाज

14.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. - अलंकृत काल

प्र. 2 उ. - डॉ. रामकुमार वर्मा तया डॉ. रमाशंकर शुक्ल रसाल

प्र. 3 उ. - आचार्य वामन

14.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी ।

(2) हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।

14.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 रीतिकाल की ऐतिहासिक परिस्थितियों का वर्णन करें।

प्र. 2 रीतिकाल का नामकरण स्पष्ट करें।

*****

इकाई-15
रीतिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराएं

संरचना

15.1 भूमिका

15.2 उद्देश्य

15.3 रीतिकालीन कविगणों की काव्य धाराएं

- रीतिबद्ध कवि
- रीतिमुक्त कवि
- रीतिसिद्ध कवि

स्वयं आकलन प्रश्न

15.4 सारांश

15.5 कठिन शब्दावली

15.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

15.7 संदर्भित पुस्तके

15.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-15
रीतिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराएं

15.1 भूमिका

इकाई-14 में हमने हिन्दी साहित्य के इतिहास की रीतिकाव्य परंपरा, रीति का अर्थ, रीति काव्य परंपरा का पवर्तन, रीतिकाल की कालसीमा तथा नामकरण की विस्तारपूर्वक जानकारी हासिल की। इसके पश्चात् इकाई-15 मैं हम रीतिकालीन कविगणों के काव्य धाराएं, रीतिबद्ध काव्य के कवि, रीतिसिद्ध काल के कवि तथा रीतिमुक्त काव्य के कवियों का अध्ययन करेंगे।

15.2 उद्देश्य

इकाई-15 का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह ज्ञात करने में सक्षम होंगे कि

1. रीतिकालीन कविगणों की काव्य धाराएं कौन सी हैं?
2. रीतिबद्ध काव्य धारा क्या हैं और उसके प्रतिनिधि कवि कौन है?
3. रीति सिद्ध कायधारा की काव्य विशेषता क्या है?
4. रीतिमुक्त काव्यधारा का प्रमुख प्रतियाद्य क्या है?

15.3 रीतिकालीन कविगणों की काव्यधाराएं

हिन्दी साहित्य के रीतिकाव्य में जिन कवियों ने काव्य सृजन किया है, उन कवियों को तीन प्रकार की काव्य धाराओं में विभाजित किया जा सकता है। रीतिबद्ध कवि, रीतिमुक्त कवि और रीतिसिद्ध कवि।

- **रीतिबद्ध कवि**

रीतिबद्ध एक काव्य धारा है जिसका श्रीगणेश भक्तिकाल में ही हो चुका था। जिनमें आचार्यो केशव का नाम सम्माननीय और अग्रगण्य है। रीतिबद्ध कवियों को मुख्य रूप से तीनों वर्गो में रखा गया है- अलंकार निरूपक आचार्य, रस और नायिका भेद के निरूपक आचार्य और सर्वांग निरूपक आचार्य। कुछ समीक्षकों ने पिंगल निरूपक आचार्य की भी एक चौथी कोटि निर्धारित की है। सर्वांग निरूपक आचार्यो ने सभी विषयों पर अपना ध्यान आकर्षित किया- आचार्य चिन्तामणि, कुलपति मिश्र, देव, सूरति मिश्र, कुमारमणि शास्त्री, सोमनाथ, श्रीपति, भिखारीदास, प्रतापसिंह आदि आचार्य इस क्षेत्र के प्रमुख थे। अलंकार निरूपक आचार्यो ने अपने लक्षण ग्रन्थों के निर्माण के लिए चन्द्रलोक, कुवलयानन्द आदि पूर्ववर्ती ह्रसोन्मुख ग्रन्थों को ही आधार बनाया था। इन आचार्यों में केशव, जसवंत सिंह, मतिराम, भूषण, गोप, रसिक गोविन्द, दूलह, गोकुलनाथ और पद्माकर के नाम लिए जा सकते हैं। रस और नायिका भेद के निरूपक आचार्यो की दो कोटियाँ हैं- कतिपय आचार्यो ने मूल रूप से नायिका भेद और स्थूल से शृंगार रस का निरूपण किया है। कुछ आचार्य ऐसे भी रहे जिन्होंने सभी रसों पर विचार किया। किन्तु सभी की दृष्टि श्रृंगार रस की ओर अधिक केन्द्रित रही। इस वर्ग के आचार्यो में तोष कवि, मतिराम, देव, कालिदास, कृष्ण भट्ट, श्रीपति, उदयनाथ, सोमनाथ, रसलीन, भिखारीदास, उजियारे, रामसिंह, गोविन्द, बेनी और पद्माकर आदि प्रमुख थे।

देव द्वारा किया गया रस-विवेचन अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत और मौलिक है। मतिराम, पद्माकर आदि के लक्षण उदाहरण न केवल स्टीक हैं अपितु सरस भी हैं। रीतिकाल की रसिकता और सरसता के वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत करने वाले ये ही कवि हैं। रीति ग्रन्थों के प्रस्तोता आचार्य केशव ही माने जाते हैं।

'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' दोनों ही उत्तम कोटि के ग्रन्थ माने गए हैं। रीति काल के जसवंत सिंह ने भाषा भूषण की रचना कर अपने आचार्यत्व का साक्षात्कार कराया है। भूषण का 'शिव भूषण' ग्रन्थ एक अलंकार निरूपक ग्रन्थ है। मतिराम का कवि रूप आचार्य की तुलना में कहीं अधिक प्रबल है। आचार्य देव का आचार्य और कवि रूप

दोनों ही समान रूप से अपना महत्त्वपूर्ण परिचय देता है। देव के सृजन में काव्यत्व के साथ-साथ एक श्रेष्ठ आचार्य तुल्य मौलिक चिन्तन भी स्वत: समाविष्ट हो गया है। भावों की सूक्ष्मता, भाषा पर असाधारण अधिकार, शब्दों की सगोत्रता, सरसता और इसके साथ-साथ उचित वैचित्र्य पर देव ने पूरा ध्यान आकर्षित किया है। श्रृंगार कालीन आचार्यो में भिक्षारीदास सर्वोच्च स्थान के अधिकारी है। ध्वनि, रस, अलंकार, गुण, दोष आदि सभी विषयों पर भिखारीदास ने लक्षण उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। रीतिबद्ध कवियों ने लक्षण ग्रन्थों के आधार पर व्रत में काव्य रचना की इन्हें हम आचार्यवादी कह सकते हैं।

- **रीतिमुक्त कवि**

रीति काव्य की एक दूसरी धारा रीतिमुक्त कवियों की हैं। इसे 'स्वच्छन्द काव्यधारा' भी कहा जा सकता है। इस वर्ग के प्रमुख कवियों में घनानन्द, बोधा, ठाकुर, आलम आदि विशिष्ट रहे हैं। ये वे कवि हैं जिन्होंने प्रयत्न करके कविता नहीं लिखी है अपितु कविता तो स्वयं इनके हृदय से प्रस्फुटित होकर मुक्त कण्ठ से प्रवाहित हुई है। रीतिबद्ध कवियों ने चमत्कार की अभिव्यक्ति के लिए बुद्धि प्रेरित कविताएं लिखीं, जबकि रीतिमुक्त कवियों ने भाव भावित कविता लिखी, जिसका प्रमाण समुचा रीति काव्य है। रीतिमुक्त कवियों ने काव्य को साधन रूप में नहीं बल्कि साध्य रूप में ग्रहण किया है। घनानन्द ने कहा है कि-

'लोग है लागि कवित्त बनावत, मोहि तो मेर कवित्त बनावत।'

प्रस्तुत उक्ति केवल घनानन्द पर ही चरितार्थ नहीं होती है, अपितु समुचे रीतिमुक्त काव्य पर लागू है। घनानन्द की कविता में संकलकर्ता बृजनाथ ने भी इसी दृष्टिकोण से अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा **'जग की कविताई के धोखे रहे. ह्याँ प्रवीनन की मति जाती जकी।'** अर्थात् रीतियुक्त कवियों की कविता को नेत्रों से नहीं बल्कि हृदय की आंखों से पढ़ा जाना चाहिए।

- **रीतिसिद्ध कवि**

रीति काल के अन्तर्गत एकमात्र कवि बिहारी ऐसे है, जिन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा जा सकता है, क्योंकि उन्होंने किसी भी प्रकार से किसी लक्षण ग्रन्थ का निर्माण नहीं किया है, अपितु रीति परिपार्टी की सभी विशेषताएं उनकी 'बिहारी सतसई' में सहज-स्वाभाविकता उपलब्ध है। उनकी सतसई में रस, भाव, नायिक भेद, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति आदि को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस संदर्भ में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपने तर्क में कहा है कि, ''बिहारी ने आचार्य कर्म से दूर रहकर जो सतसई रची उसमें रीतियाँ स्वत: ही सिद्ध होती चली गई हैं, इसलिए उन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा जा सकता है।'' बिहारी को रससिद्ध कवि कहा जा सकता है। बिहारी की विख्यात रचना सतसई ने अप्रत्याशित लोकप्रियता प्राप्त की है क्योकि उसमें मुक्तक शैली और रसात्मकता है। रसात्मकता ही बिहारी सतसई में प्रधान है अत: बिहारी उच्च कोटि के रीतिसिद्ध कवि रहे हैं। आचार्यत्व एवं कवित्व रसात्मकता ही बिहारी सतसई में प्रधान है अत: बिहारी उच्च कोटि के रीतिसिद्ध कवि रहे है। आचार्यत्व एवं कवित्व का मनोहारी संगम बिहारी में दिखाई देता है।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 रीतिकाल को कितनी काव्यधाराओं में बांटा जाता है।

प्र. 2 चिन्तामणि किस काव्यधारा के कवि हैं।

प्र. 3 कवि प्रिया किसकी रचना है।

15.4 सारांश

रीतिकाल में रीति निरूपण, श्रृंगार और अंलकार की प्रधानता रही। इसी के आधार पर जिन कवियों ने संस्कृत के लक्ष्य ग्रंथों का अनुसरण करके काव्य रचना की वह रीतिबद्ध काव्यधारा के अंतर्गत आ गए। कुछ कवियों द्वारा उनका अनुसरण तो नहीं किया किन्तु फिर भी लक्षण ग्रंथों का प्रभाव उनके काव्य में देखने को मिलता है।

15.5 कठिन शब्दावली

(1) निरूपण – अच्छी तरह समझना

(2) चित्रण – चित्रित करना

(3) विवेचन – जांचना जाँचना

15.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. – तीन

प्र. 2 उ. रीतिबद्ध काव्य धारा

प्र. 3 उ. केशवदास

15.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

(2) रीतिकाल की इतिहास दृष्टि – सुधीन्द्र कुमार

15.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 रीतिकाल की रीतिबद्ध काव्य धारा का विस्तार से वर्णन करें।

प्र. 2 रीतिमुक्त काव्यधारा की विशेषताएं बताइए।

*****

इकाई–16
रीतिकाल की प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएं

संरचना

16.1 भूमिका

16.2 उद्देश्य

16.3 रीतिकाल की प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएं

- रीति निरूपण
- श्रृंगारिकता
- राजप्रशस्ति
- भक्ति
- नीति
- इत्तर प्रवृत्तियां

स्वयं आकलन प्रश्न

16.4 सारांश

16.5 कठिन शब्दावली

16.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

16.7 संदर्भित पुस्तकें

16.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-16
रीतिकाल की प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएं

16.1 भूमिका

इकाई पन्द्रह में हमने रीतिकालीन कविगणों की काव्यधाराओं का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में हम रीतिकाल की प्रवृत्तियों एवं विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

16.2 उद्‌देश्य

इकाई सोलह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि-

1. रीतिकाल की प्रवृत्तियां एवं विशेषताएँ क्या है ?
2. रीति निरुपण क्या है ?
3. श्रृंगगरिकता क्या है ?
4. राजप्रशास्ति क्या है।
5. रीतिकाल में किस प्रकार की भक्ति भावना थी ?

6 रीति इतर प्रवृत्तियां कौन-कौन सी हैं ?

16.3 रीतिकाल की प्रवृत्तियां एवं विशेषताएं

'प्रवृत्ति' में 'प्र' उपसर्ग लगकर बना है जिसका अर्थ है एक ओर चलना जब किसी युग के सभी रचनाकार एक विशेष विषय, शैली आदि के आधार पर एक ही दिशा में प्रवृत्त होते हैं अर्थात् आगे बढ़ते हैं तो उनका यह कदम उस युग की प्रवृत्ति कहलाता है। कुछ ना को 'प्रवृत्ति' और 'विशेषता' शब्द में भ्रम पैदा हो जाता है जिसे अज्ञानवश वे एक युग की प्रवृत्तियों को उस युग की विशेषताएं या इस युग की विशेषताओं को प्रवत्तियां मानने की भूल करते हैं। वास्तव में जब एक युग के रचनाकारों के काव्यों में भेदक तत्वों को देखा जाता है और उस आधार पर उस का आकलन किया जाता है, तो वे उस युग की विशषताएं अर्थात् गुण दोष होते हैं। विभिन्न देशों के वेश, भाषा तथा व्यवहार की बातों को जो प्रकट करे वह प्रवृत्ति है। जहां वृति एक प्रकार से शब्दों द्वारा अभिव्यंजना पद्धति है वहां प्रवृत्ति रहन सहन को पूर्णतया प्रकट करने की पद्धति है।

साहित्य में प्रत्येक युग की प्रवृतियां किसी नई सोच, मानसिकता की उपज नहीं होती है इन प्रवृतियों के पीछे उस युग की परिस्थितियां और परपराएं क्रियान्वित रहती हैं। इन्हीं को आधार बनाकर युग में प्रवृत्तियां प्रस्फुटित होती हैं। इन प्रवृत्तियों को रामचन्द्र शुक्ल परिस्थितियों की देन मानते हैं जबकि हजारीप्रसाद द्विवेदी जी इन्हें परिस्थितियों की देन न कहकर परंपरा से उत्पन्न मानते हैं। लेकिन काव्य का हेतु यद्यपि सृष्टा की अपनी जन्मजात शक्ति प्रतिभा ही हुआ करती है तथापि इसकी विशिष्ट दिशा का नियमन उसकी बाह्य परिस्थितियों तथा उसके वैयक्तिक संस्कारों द्वारा ही हुआ करता है - परिस्थितियां जहां इसे सामग्री प्रदान करती है वहां संस्कार इसमें वैशिष्टय का समोवश करते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि रीतिकालीन काव्य इन दोनों आधारभूत तत्वों के समन्वित अथवा पृथक योग का ही परिणाम है। बात यह है कि यह काव्य मुख्य रूप से राजाओं, नवाबों और श्रीमंतों के आश्रय में लिखा था। चूंकि इस युग के राजा नवाब और श्रीमंत विलासी थे तथा श्रृंगारिक कविता उनकी विलास सामग्री का एक भाग बन गई थी। अत: यह स्वाभाविक ही था कि इनके आश्रय में रहने वाले कवि भी इस प्रकार की रचनाओं द्वारा इन्हें प्रसन्न करते थे। दूसरी ओर ऐसे वीर भी थे जिनके जीवन का अंग विलास के उपकरणों के स्थान पर युद्ध और उसका संदेश ही बन गया था। इन वीरों में एक वर्ग था जिनके मन में भारतीय संस्कारों तथा राष्ट्रीय भावना का इतना प्राबल्य था कि विदेश शासन को शक्ति के बल पर उखाड़ फेंकने के लिए मुगल शासकों के साथ प्राय: युद्ध करते रहते थे और दूसरा उनका था

जिन्हें राजनीतिक कारणों से अथवा मुगलशासन की रक्षा के निमित्त प्रतिपक्षी राष्ट्रवीरों के साथ युद्ध के लिए समय-समय पर युद्धभुमि में जाना पड़ता था। इन दोनों वर्गों के योद्धाओं के आश्रयों में कवि रहा करते थे। जो या तो उनके युद्धों और पराक्रम के अतिरंजित वर्णन करके या फिर उनके दान, गुण और वैभव संबंधी प्रशस्तियां लिखकर उन्हें प्रसन्न करते थे। इधर भक्तिकाल के संस्कार भी लोगों में चले आ रहे थे, इसलिए कवि लोग प्राय: अपना परलोक को सुधारने की भावना से अथवा ग्रंथ विशेष के आरंभ में उसकी निर्विघ्न समाप्ति के लिए भक्ति और स्तुतिपरक रचनाएं भी कर लेते थे। साथ में दर्शन ग्रंथों के अध्ययन तथा दार्शनिक गोष्ठियों से थोड़ा बहुत संपर्क होने के कारण ये कभी-कभी दर्शन संबंधी छंदों की भी रचना कर लिया करते थे। इनके अतिरिक्त जीवन के कटु और मधुर अनुभव जहां इन्हें नीतिपरक रचनाएं करने के लिए प्रेरित करते थे वहां विभिन्न स्थानों के आकर्षक प्रकृति दृश्यों के इनके मन पर पड़े हुए एकाकी और संशिलष्ट प्रभाव भी समय-समय पर इनकी रचनाओं में स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त होते थे। रीतिग्रंथों के निर्माण में उसके विवेचन को पूर्ण बनाने के लिए इन्होंने इतर विषयों पर भी रचनाएं लिखी। इस प्रकार कुल मिलाकर रीतिकवियों की प्रवृत्तियों को दो वर्गों में रखा जा सकता है -

(1) मुख्य प्रवृत्तियां (क) रीतिनिरूपण
(ख) श्रृंगारिकता
(2) गौण प्रवृत्तियां (क) रांजप्रशस्ति (वीरकाव्य)
(ख) भक्ति
(ग) नीति)
(घ) इत्तर प्रवृत्तियां

यहां प्रत्येक का संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है

● **रीति निरूपण** - रीति निरूपण की इस व्यापक प्रवृति का अध्ययन करने पर इसके भीतर कतिपय अन्त: प्रवृत्तियां भी दृष्टिगत होती है। इनका विश्लेषण ग्रंथकार की दृष्टि, काव्यांग विवेचन तथा निरूपण शैली के आधार पर पृथक-पृथक किया जा सकता है।

इनमें ग्रंथकारों की दृष्टि के आधार पर यदि अन्त: प्रवृत्तियों का अध्ययन करें तो कहना होगा कि इस युग में रीति ग्रंथों की रचना मुख्य रूप से उसके परिचायक वे ग्रंथ हैं जिनमें सामान्यत: रूप से काव्यांग विशेष का परिचय करना ही उनके रचयिताओं का उद्देश्य रहा है अपने कवित्व का प्रदर्शन करना इनका उद्देश्य नहीं रहा। जसवंत सिंह का भाषा भूषण, कविकुल कंठाभरण, रसरूप का तुलसी भूषण आदि इसी प्रवृत्ति के परिचायक हैं। द्वितीय प्रवृत्ति में रीति कर्म के साथ कवि कर्म का समान महत्व रहा है। चिंतामणि, मतिराम, भूषण, देव भिखारीदास, पदमाकर, श्रीपति आदि के रीति विषयक ग्रंथ इसी प्रकार के हैं। तृतीय प्रवृत्ति के अन्तर्गत लक्षणों को (महत्व नहीं दिया गया। ग्रंथकारों ने प्राय: सभी छन्दों की रचना काव्याशास्त्र के नियमों के बद्ध होकर करने पर भी लक्षणों के फेर में पड़ना उचित नहीं समझा बिहारी, मतिराम, चंदन, भूपति आदि की सतसइयां नखशिख संबंधी ग्रंथ इस प्रवृत्ति के परिचायक हैं। काव्यांग विवेचन के आधार पर इस प्रवृत्ति की दो अन्त: प्रवृत्तियां कही जा सकती है। (1) संग विवेचन की (2) विष्टिांग विवेचन की।

सर्वांग विवेचन की प्रवृत्ति के अन्तर्गत आने वाले ग्रंथों में सामान्य रूप से काव्य लक्ष्ण, काव्य हेतु, काव्य प्रयोजन, काव्य भेद, शब्द शक्ति, काव्य की आत्मा, काव्य गुण, काव्य दोष, काव्य, रीति, अलंकार तथा छंद का निरूपण किया गया है। कतिपय लोगों ने काव्यांग का विवेचन एक ग्रंथ में किया है और छंद का पृथक रूप से करने का प्रयत्न किया है। चिंतामणि का कवि कुलकल्पतरू, देव का शब्द रसायन, कुलपति का रस रहस्य, भिखारीदास का काव्यनिर्णय, सोमनाथ का रस पीयूषनिधि अमीरदास का सभामंडन आदि इसी प्रवृत्ति के परिचायक ग्रंथ है। विशिष्टांग

विवेचन की प्रवृत्ति के अन्तर्गत वे ग्रंथ कहे जा सकते हैं जिनमें उक्त काव्यांगों में से किसी एक दो या तीन को विवेचन का विषय बनाया गया है ये विषय रस, अलंकार और छंद। देव के भावविलास और याकूब खां के रसभूषण ग्रंथों में किंतु रस और अलंकार का विवेचन साथ-साथ किए जाने का प्रयत्न भी रहा है।

विवेचन शैली के आधार पर यदि प्रवृत्ति विश्लेषण किया जाए तो कहना होगा कि इस काल में रीति निरूपण की तीन शैलियां प्रचलित थी। इनमें प्रथम तो काव्यप्रकाश, साहित्यदर्शण की शैली है जिसमें लक्षणों-उदाहरणों अतिरिक्त मुख्यत वृति देकर विषय को समझाने का प्रयत्न किया गया है। इसके अतर्गत कविकल्पतरु, शब्द रसायन, रस रहस्य, काव्य निर्णय, व्यंग्यार्थ कौमुदी आदि ग्रन्थों को लिया जा सकता है। इनमें ब्रजभाषा गद्य की वृत्ति देकर विषय को समझाने का प्रयत्न है। दूसरी शैलो चन्द्रालोक-कुवलयानंद की संक्षेप शैली है। भाषा, भूषण, रस भूषण, पदमाकरभरण आदि इसके परिचायक कहे जा सकते हैं। इन ग्रंथों में एक ही छंद में लक्षण और उदाहरण का साथ-साथ निर्वाह हुआ है। अत: इस शैली का पूरा अनुकरण कहा जा सकता है। तीसरी शैली भानुदत्त की रसमंजरी को कही जा सकती है जिसमें लक्षण और सरस उदाहरण देकर विषय निरूपण किया गया है रीतिकवियों ने इसका निर्वाह केवल भानुदत्त के समान श्रृंगार रस और नायक नायिका भेद विवेचन के लिए ही नहीं किया, रस अलंकार और छंदों के विवेचन में किया है। यही शैली की अन्य अपेक्षा लोकप्रिय रही है।

रीति निरूपण की समस्त अन्त प्रवृत्तियों का अध्ययन करने पर कतिपय सामान्यत: बातें कही जा सकती है कि इस युग के रचनाकारों ने अपने ग्रंथों का निर्माण सामान पाठकों को काव्यशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिए किया है। अत: सभी शास्त्रीय शैलियों का अनुकरण किया है। साथ ही लक्षणों के आधार पर इस प्रवृत्ति की। ब्रजभाषा में अनुवाद करके इन लोगों ने आचार्य कर्म की अपेक्षा कवि शिक्षक के कर्म का ही निर्वाह किया है। अत: ये विभिन्न काव्यांगों का मनोयोगपूर्वक निरूपण करते हुए भी ये लाग मूलत: रसवादी थे। इन रौति निरूपक कवियों को इन ग्रंथों की परंपरा से मिली लेकिन रीतिकालीन राजाओं की काव्यशास्त्रीय सिद्धातों को जानने की लालसा ने इस परंपरा को परिस्थितिवश रीतिकाल में प्रवृत्त किया।

● **श्रृंगारिकता** - श्रृंगारिकता की प्रवृत्ति रीतिकवियों की कविता का प्रभाव है। रीतिनिरूपण की प्रवृत्ति के समान इस प्रवृत्ति के भीतर यद्यपि स्वतंत्र अन्त: प्रवृत्तियां तो विद्यमान नहीं तथापि एक ओर से काव्यशास्त्रीय बंधनों के निर्वाह और दूसरी ओर से नैतिक बंधनों की छूट तथा विलासी आश्रयदाताओं के प्रोत्साहन के कारण इस प्रवृत्ति ने जो स्वरूप प्राप्त किया उसे कवियों की श्रृंगारिता प्रवृत्ति से सहज ही पृथक करके देखा जा सकता है।

शास्त्रीय बंधनों ने तो इसे इतना रूढ़ बना दिया है कि श्रृंगार के विभाव पक्ष में नायक नायिकाओं के प्रत्येक भेद सामग्री के प्रत्येक अंग, अनुभावों के विविध रूपों, प्रत्येक संचार तथा संयोग के भीतर वर्णित संयोग और वियोग के भेदोपभेदों सहित विभिन्न कामदशाओं संबंधी रचनाओं के पृथक-पृथक वर्ग बनाए जा सकते है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन विषयों में से प्रत्येक से संबद्ध बिंबों का एक सांचा है जिसमें से ढालकर उन्हें निकाला गया है।

दूसरी ओर नैतिक बंधनों के इतने पंख फैलाए कि काव्यशास्त्रीय घेरे के भीतर भी बिंबों की रेखाएं उभरकर अपने निर्माताओं की अभिरुचि और दृष्टि की व्यंजना प्रकट कर सके। इन कवियों की श्रृंगार भावना में दमन से उत्पन्न किसी प्रकार की मानसिक ग्रंथियां न होकर शरीर सुख की वह साधना है जिसमें विलास के समस्त संग्रह की ओर ही व्यक्ति की दृष्टि केन्द्रित रहती है। यहां प्रेम को अतीन्द्रिय रूप देने अथवा वासना के उन्नयन का प्रयत्न नहीं होता यही कारण है कि संयोग के नग्न चित्रों तथा नायकों की धृष्टताओं के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत करते समय इन्होंने किसी प्रकार का संकोच नहीं किया है। इसी विलासिता के कारण प्रेम भावना अनेकोन्मुख है और नारी के प्रति इनकी दृष्टि समान्तीय ही रही है। इस प्रवृत्ति में गृहस्थी जन्य प्रेम की व्यापक स्वीकृति देखने को मिलती है। ''छोड़ि आपनो भौन तु, भौन कौन के जात'' इन्होंने स्वकीया व परकीया दोनों के प्रेम को व्यक्त किया है। ''पररस चाहे परकीया तजे आपु गुन गीत'' सामान्य प्रेम विषयक छंद भी इन्होंने रचे पर उनमें प्रभाव शक्ति नहीं आ सकी क्योंकि इसमें इनका इतना मनोयोग नहीं रहा।

कुल मिलाकर रीतिकवियों की श्रृंगारिकता में सामान्य रूप से इंद्रियदमनजन्य कुंठा का अभाव, शारीरिक सुख की साधना, प्रेमजन्य विलासिता, रूपलिप्सा, भोगेच्छा, नारी के प्रति सामंतीय दृष्टि के गुण दोष के रहते हुए भी ऐसी ताजगी जो काव्यशास्त्रीय नियमों के घेरे में बंद रहकर भी साधारण पाठक को एक छन्द के लिए आत्मविभोर कर सकती है। इन रीतिकवियों को इन श्रृंगारिक प्रवृत्ति को प्रभावित करने तथा पुष्ट करने वाली एक तो श्रृंगार की परंपरा रही है। जो हाल की गाथासप्ताशती, गोवर्दनाचार्य कृत आयांसप्तशती, अमरूक शतक, भृर्तहरि के शतक से आती है यह शुद्ध श्रृंगारिक पंरपरा है। दूसरी परंपरा स्रोतों की है जिसमें जयदेव का गीत गोविंद कालिदास का कुमार संभव सार आदि आधार है। तीसरा श्रृंगार परंपरा का रूप कामशास्त्र के ग्रंथ है। जिसमें वात्सयायन का कामसूत्र, कल्याणमल्ल का अनंगरंग कोक्कन का रतिरहस्य, जयदेव की रतिमंजरी वीरभद्र की कदर्प चिंतामणि आदि। इन परंपराओं को आधार बनाकर रीतिकवियों ने अपने युग की परिस्थितियों के अनुरूप श्रृंगार काव्य लिखे क्योंकि तद्युगीन विलासी राजाओं और वातावरण को यही श्रृंगारी कवि ग्राह्य थी।

● **राजप्रशस्ति**– जहां तक रीतिकाव्य में विद्यमान गौण प्रवृत्तियों का प्रश्न है, उसमें राज्यप्रशस्ति अथवा वीरकाव्य की प्रवृत्ति मूलतः अलंकार और छंदों विवेचन में देखने को मिलती है। रस विवेचन के ग्रंथों में यह ग्रंथ विशेष की भूमिका के रूप में अथवा वीर और रौद्र रसों के निरूपण के प्रसंग में देखी सकती हैं इसका मुख्य विषय आश्रयदाताओं की दानवीरता अथवा युद्धवीरता ही है। इनकी वीरकाव्य प्रवृत्ति में अलंकार निबद्ध राजविषयक रति का ही प्राधान्य है उत्साह का प्रायः अभाव ही रहा है।

श्रृंगार के समान वीरकाव्य की परंपरा भी संस्कृत आदि हिंदी की पूर्ववर्ती भाषाओं में अत्यंत समुद्ध एवं विशद् है। इस परंपरा में प्रबंधकाव्यों की रचना अधिक हुई है। जोकि आश्रयदाता के उत्साह भाव को दिखने की दृष्टि से अनुकूल ही था। इस परंपरा में चार धाराएं देखी जा सकी है। पहली तो उन काव्यों की है जिनके नायक रामायण अथवा महाभारत के वीर पात्र रहे हैं। जैसे कालिदास का रघुवंश, प्रवरसेन का भारवि का किरातार्जुनीय माघ का शिशुपाल वध, देवप्रभसूरि का पाण्डव चरित आदि। दूसरी धारा उन चरित काव्यों की है। जिनमें कवियों ने अपने आश्रयदाता अथवा उनके किसी पूर्वज के चरित्र का सांगोपांग वर्णन किया हो जैसे बाणक्त हर्षचरित, जयानक का पृथ्वीराज विजय, गंगा देवी का मथुरा विजय आदि। तीसरा धारा में वे काव्य है जिन्हें कवियों ने अपने श्रद्धापात्रों की प्रशस्ति में लिखा। जैसे मेरुतुंग की प्रबंधचितामणि, राजशेखर का प्रबंध कोश आदि। चौथी धारा उन ग्रंथों की है जो इतिहास निर्माण की दृष्टि से लिखे गए जैसे कल्हण की राजतरगिनी तथा सन्धया करनंदी का रामपाल चरित। आदिकाल के पृथ्वीराज रासो, आल्हाखंड तथा भक्तिकाल के वीरसिंह देवचरित, जहांगीर जसचद्रिका भी ऐसे प्रबंधात्मक वीर काव्य है जिन्होंने रीतिकालीन वीरकाव्यों को पुष्ट किया अपने युग में अपने आश्रयदाताओं की वरीता का बखान करने के लिए 'परिस्थितिनुकूल परंपरा के प्रभावित होकर काव्य सृजन किया।

● **भक्ति**– भक्ति की प्रवृत्ति रीतिग्रंथों के मंगलाचरणों, ग्रंथों की परिसमाप्ति पर आशीर्वचनों, भक्ति और शांत रसों, निर्वेदादि संचारियों तथा अलंकार विवेचन संबंधी ग्रंथों में दिए गए उदाहरणों में मिलती है। सामान्य रूप से विष्णु के राम और कृष्ण इन दोनों अवतारी रूपों में विशेष आस्था रखते हुए भी ये लोग गणेश, शिव और शक्ति में भी वैसी ही श्रद्धा रखते थे अतः यह कहा जा सकता है कि ये लोग किसी विशिष्ट सम्प्रदाय के अनुयायी नहीं थे। वास्तव में इस युग में भक्ति धार्मिकता की ही परिचायक नहीं थी, विलास जर्जर दरबारी वातावरण के बाहर विषय वासना जन्य दुख के आकुल मन के मंगलाचरण के लिए शरणभूमि भी थी।

मंगलाचरण आदि में व्यक्त भक्ति परंपरागत भक्ति वर्ग में कही जा सकती है दूसरा भक्ति का आधार इन कवियों के वैयक्तिक संस्कार भी कहे जा सकते हैं। पारिवारिक आस्थाओं तथा धर्म और दर्शन ग्रंथों के श्रवण और अध्ययन के परिणाम स्वरूप ये लोग किसी विशिष्ट देव के उपासक न होकर पंचदेवों की उपासना करते थे। तीसरा कारण इन कवियों की वृद्धावस्था है क्योंकि जब व्यक्ति का चित सांसारिक भोगों से उपरत हो जाता है और वह अपना परलोक

सुधारने की कामना से सत्संगादि के साथ धर्म और दर्शन के ग्रंथों का अध्ययन श्रवण करता है। इन कवियों के मन में भी राजवैभव विलासों के अनेक प्रकार के रंगीन और नग्न चित्रों को देख लेने के पश्चात् उनकी प्रतिक्रिया में परलोक सुधारने की भावना अवश्य ही जाग्रह हुई होगी।

● **नीति** – भक्ति यदि इन कवियों के आकुल मन के लिए शरणभूमि थी तो नीति संघर्षमय दरबारी जीवन के घात प्रतिघातों के उत्पन्न मानसिक द्वंद्व के विवेचन के परिणामस्वरूप शांति का आधार थी इसलिए आत्मोपदेश और अन्योक्तिपरक छंदों में इनके वैयक्तिक अनुभवों की छाप प्राय: देखने को मिलती है।

नीति मुक्तकों की परंपरा भक्ति से भी प्राचीन है। संस्कृत में चाणक्य के चाणक्य शतक, क्षेमेन्द्र के चारूचर्चा, कुसुमदेव के दृष्टांत शतक, गुमान कवि के उपदेश शतक आदि उल्लेखनीय हैं जैनों में हेमचन्द्र का योगशास्त्र, प्रसिद्ध है। भक्तिकालीन संत कवियों ने अनेक नीति रचनाएं लिखी हैं। अत: इसी परंपरा को आधार बनाकर वैयक्तिक अनुभवों से उत्पन्न विवेक को विशेष स्थान दिया है।

● **इत्तर प्रवृत्तियां** – उक्त प्रवृत्तियों के अतिरिक्त रीतिकालीन कवियों ने अपने काव्य के अन्तर्गत कतिपय विषय और ग्रहण किए हैं ये हैं। वीर, रौद्र, करूण अद्‌भुत, वीभत्स, भयानक और वात्सल्य रस। इनका वर्णन सामान्यत: रस निश्चत संबंधी ग्रंथों में उदाहरणों को प्रस्तुत करने के लिए किया गया है। इसके अतिरिक्त इन विषयों संबंधी अनेक छंद स्वतंत्र ग्रंथों और स्फुट रचनाओं के रूप में और उपलब्ध हो जाते हैं। इस प्रकार गौण प्रवृत्तियां में राजप्रशस्ति की प्रवृत्ति के समान उस युग के दरबारी जीवन में प्रवृत्ति की परिचायक है, जबकि भक्ति और नीति की प्रवृत्तिया उससे निवृति की। चूंकि प्रकृति और चिवृत्ति जीवन के परस्पर पूरक पक्ष हैं अतएव इन प्रवृत्तियों को एक दूसरी के पूरक कहा जा सकता है।

निष्कर्षत : कोई भी साहित्यिक प्रवृत्ति अचानक जन्म लेकर पुष्ट नहीं हो जाती इसके लिए अनुकूल परिस्थितियों और पुष्ट परंपरा का होना अनिवार्य है। रीतिकाल में रीतिकाव्य के लिए अनुकूल परिस्थितियां तो थी ही इसके लिए अपेक्षित आधाररूप परंपराओं को संस्कृत काव्यशास्त्र और पूर्ण साहित्य से ग्रहण कर कवियों ने काव्य सृजन किया जिससे इस युग के कवियों में व्यापक प्रवृत्ति रीतिनिरूपण की ही रही साथ ही विलासिता के इस युग ने श्रृंगारिकता प्रवृत्ति को भी उभारा। इसी समय अपने आश्रयदाताओं की प्रशस्ति में काव्य लिखने वाले तथा भक्ति-नीति विषयक कवि भी काव्य रचना करते रहे। इस प्रकार रीतिकालीन कवियों ने परंपरा से प्रभावित होकर परिस्थितिनुकूल काव्य रचना की जो इस युग की प्रवृत्तियां बन गई हैं।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 रीतिकाल की प्रमुख प्रवृति क्या है?

प्र. 2 रीतिकाल को श्रृंगारकाल किसने कहा हैं ?

प्र. 3 रीतिकाल की प्रमुख रीतियां कौन-सी है ?

प्र. 4 रीति का अर्थ क्या है ?

16.4 सारांश

रीतिकाल में भले ही रीति निरूपण, श्रृंगार और अलंकार को प्रधानता हो, व्यापक मात्रा में भक्ति और नीति से संबंधित पद भी मिल जाते हैं जो इस युग की एक नई देन है। राधा कृष्ण लीलाओं में श्रृंगारिकता के साथ भक्ति भावना भी विद्यमान है। नगेन्द्र ने लिखा है कि रीतिकाल का कोई भी कवि भक्ति भावना से हीन नहीं है और हो भी नहीं सकता था।

16.5 कठिन शब्दावली

1. निरूपण - वस्तु का विवेचन करना
2. व्यापक - विशद
3. समावेश - अंतर्भाव
4. प्रवृत्तिमूलक - आसक्तिजन्य
5. अलंकार - सजावट

16.6 स्वयं आकलन के उत्तर

उ. श्रृंगारिकता

उ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

उ. वैदर्भी, गौडी और पांचाली

उ. प्रतिपाटी

16.7 संदर्भित पुस्तकें

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास
2. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास
3. रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

16.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियों का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए ?

प्र. 2 रीतिकाल की प्रमुख विशेषता श्रृंगारिकता का रीति के अनुसार निरूपण करें ?

*****

इकाई–17
रीतिबद्ध काव्यधारा

संरचना

17.1 भूमिका

17.2 उद्देश्य

17.3 रीतिबद्ध काव्य धारा

17.3.1 रीतिबद्ध काव्य की सामान्य प्रवृत्तियां–विशेषताएं

- श्रृंगार वर्णन
- विरह वर्णन
- नारी का कामुक वर्णन
- भक्ति भावना
- नीतिपरक काव्य की रचना
- प्रकृति वर्णन
- उक्ति वैचित्र्य का प्रयोग

स्वयं आकलन प्रश्न

17.4 सारांश

17.5 कठिन शब्दावली

17.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

17.7 संदर्भित पुस्तकें

17.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-17
रीतिबद्ध काव्यधारा

17.1 भूमिका

इकाई सोलह में हमने रीतिकाल की प्रवृत्तियां एवं विशेषताओं का अध्ययन किया। इकाई सत्रह के अंतर्गत हम रीतिबद्ध काव्यधारा के उद्‌भव एवं विकास तथा रीतिबद्ध काव्यधारा की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

17.2 उद्देश्य

इकाई सत्रह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि

1. रीतिबद्ध काव्य धारा क्या है ?
2. रीतिबद्ध काव्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएं क्या है ?
3. रीतिकाल में किस प्रकार की श्रृंगारिकता का वर्णन है ?

17.3 रीतिबद्ध काव्य धारा

विद्वानों ने रीतिकालीन कवियों को तीन वर्गों में विभक्त किया है-रीतिबद्ध कवि, रीतिसिद्ध कवि तथा रीतिमुक्त कवि। जहाँ तक रीतिमुक्त काव्य का प्रश्न है, उसके बारे में किसी प्रकार का मतभेद नहीं है। लेकिन रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों को लेकर विद्वानों ने अलग-अलग विचार व्यक्त किए हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार रीतिबद्ध कवि वे हैं जिन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र को आधार बनाकर काव्यांगों के लक्षण दिए और साथ ही उनके उदाहरण भी दिए। इनको **'शास्त्र कवि'** भी कहा जाता है। वस्तुत: ये अपने-आपको शिक्षक मानकर काव्यांगों का वर्णन करते रहे। **आचार्य शुक्ल** ने इन कवियों का अध्ययन **'रीति ग्रंथकार कवि'** के रूप में किया है। डॉ. नगेन्द्र ने इन कवियों को रीतिकवि या 'आचार्य कवि' की संज्ञा दी है। आचार्य विश्वनाथ मिश्र ने इनको **'रीतिबद्ध'** कवि कहा है। इन्होंने लक्षणों तथा उदाहरणों से युक्त रचनाएँ लिखी है। रीतिबद्ध कवियों (रीतिकार आचार्य कवियों) का प्रमुख उद्देश्य या तो काव्य की शिक्षा देना है या किसी काव्यशास्त्रीय विषय का सोदाहरण प्रतिपादन करना है। डॉ. नगेन्द्र ऐसे कवियों को रीतिसिद्ध कवि कहते हैं। आजकल रीतिबद्ध कवियों के विष में डॉ. नगेन्द्र का मत अधिक प्रचलित है। उनके अनुसार रीबिद्ध कवि वे है जिन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र के लक्षण ग्रंथों के आधार पर लक्षण ग्रंथों की रचना न करके मात्र काव्य की रचना की। **'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास'** (षष्ठभाग) में रीतिबद्ध कवियों में बिहारी, बेनी, कृष्ण कवि, रसनिधि, नृप शम्भु, निवाज, राम सहाय दास, पजनेस, द्विजदेव के नाम गिनवाए गए हैं। इन कवियों के अतिरिक्त सेनापति वृन्द तथा विक्रम के नामों को भी सम्मिलित करना आवश्यक होगा। अत: हम इन कवियों को रीतिबद्ध मानकर उनका विवेचन करेंगे।

बिहारी रीतिबद्ध कवियों में सर्वश्रेष्ठ कहे जा सकते हैं। इनका जन्म सन् 1595 में ग्वालियर में हुआ तथा पिता का नाम केशवराय था। नरहरि दास इनके गुरु थे। मिर्जा राजा जयसिंह के ये दरबारी कवि थे। **'सतसई'** इनकी एकमात्र रचना है जो कि अलंकार, रस, नायिका भेद, वक्रोक्ति रोति आदि सभी दृष्टियों से रीतिकाल की सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। **रसनिधि** का मूल नाम पृथ्वी सिह था। ***'रत्न हजारा', 'विष्णु पद कीर्तन', 'बारहमासा', 'कवित्त', 'रसनिधि सागर', 'हिण्डोला', 'अरिल्ल'*** आदि इनकी प्रसिद्ध काव्य रचनाएँ हैं। लेकिन इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना 'रत्न हजारा' है। मूलत: ये प्रेम और श्रृंगार के कवि हैं, परन्तु वैष्णव भक्ति की तरफ भी इनका झुकाव था। वृन्द कवि मेड़ता के रहने वाले थे। यहीं इनका जन्म हुआ। काशी में रहकर इन्होंने व्याकरण, साहित्य, वेदान्त, गणित, दर्शन शास्त्र आदि का अध्ययन किया। जोधपुर नरेश महाराज जसवंत सिंह ने इनको सम्मानित किया। ये औरंगजेब के दरबारी कवि भी थे। **'बारहमासा', 'भाव पंचाशिका', 'नयन पच्चीसी', 'यमक सतसई'** आदि इनकी प्रसिद्ध काव्य रचनाएँ हैं। नृप शम्भु के रचनाकाल, जन्म आदि सभी कुछ विवादास्पद हैं। इनके नाम भी अनेक हैं। ये महाराज शिवाजी के पुत्र थे तथा

इनका जन्म सन् 1657 में पुरन्दर के किले में हुआ। संस्कृत तथा फारसी दोनों भाषाओं का इनको समुचित ज्ञान था। ***'नखशिख'*** तथा ***'सात सतक'*** इनकी काव्य रचनाएँ है। भले ही ये मराठी थे, लेकिन इन्होंने साहित्यिक ब्रजभाषा में ही काव्य रचना की।

कृष्ण कवि ने बिहारी सतसई के प्रत्येक दोहे पर नए सवैये की रचना की। 'बिहारी सतसई की टीका' तथा 'विदुर प्रजागर' इनके दो ग्रंथ प्राप्त हुए हैं। ये जयपुर नरेश महाराज के मंत्री जयशाह के आश्रित कवि थे। **हठी जी** का सम्बन्ध राधा वल्लभ सम्प्रदाय से है। इनका जन्म सन् 1780 के लगभग हुआ। कृष्ण भक्त कवि होते हुए भी इनकी रचनाओं में उक्ति वैचित्र्य, नखशिख, सौन्दर्य चित्रण, श्रृंगार वर्णन आदि रीति परम्परा के अनुसार हुआ। ***'श्री राधा सुधा शूतक'*** इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है। इस रचना में राजा के राजसी ठाठ-बाट और भोगविलास का सुन्दर चित्रण किया गया है। विक्रमादित्य बुंदेलखण्ड में स्थित चरखारी के राजा थे। इनका राज्यकाल सन् 1782 से 1829 के मध्य स्वीकार किया गया है। ***'बिहारी सतसई'*** का अनुसरण करते हुए इन्होंने ***'विक्रम सतसई'*** की रचना की तथा साथ ही भागवत के दशम स्कन्द का हिन्दी में अनुवाद भी किया। **पजनेस** का जन्म पन्ना में हुआ था तथा इनका काल सन् 1815 के आस-पास माना गया है। **'नखशिख'** और **'मधुर प्रिया'** दो काव्य रचनाएँ इनके नाम से जुड़ी हुई हैं, लेकिन ये दोनों अभी तक प्राप्त नहीं हुई। ***'पजनेश प्रकाश'*** नाम से इनका एक ग्रंथ प्रकाशित हुआ है जिसे पढ़कर पता चलता है कि इन्होंने रीति परम्परा के अनुसार ही काव्य रचना की है। बेनी नाम से तीन कवियों का उल्लेख मिलता है। ये हैं-बेनी भण्डौआकार, बेनी प्रवीण तथा बेनी वाजपेयी। विद्वानों ने बेनी वाजपेयी को ही असली कवि माना है जिसे बेनी बन्दीजन के नाम से पुकारा जाता है। इनका समय सन् 1823 के लगभग है। इनके कुछ फुटकर छन्द मिले हैं जो कि रीति परम्परा से पूर्णतया प्रभावित है।

17.3.1 रीतिबद्ध काव्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ/विशेषताएँ-रीतिबद्ध काव्य की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

• **श्रृंगार वर्णन**- लगभग सभी रीतिबद्ध कवियों ने अपनी रचनाओं में श्रृंगार वर्णन को प्रथम स्थान दिया है। इन कवियों ने श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सुन्दर वर्णन किया है। ये कवि प्रेम को ही जीवन का सार मानते थे इसलिए श्रृंगार को सर्वाधिक महत्त्व देते थे। इसका प्रमुख कारण यह हो सकता है कि ये सभी कवि राजदरबार के आश्रित कवि थे, इसलिए उन्होंने अपने विलासी आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए श्रृंगारपरक साहित्य की रचना की। ऐसा करते समय इन्होंने राधा-कृष्ण को भी सामान्य नायिका-नायक के रूप में प्रस्तुत कर दिया। सच्चाई तो यह है कि इनका श्रृंगार वर्णन अश्लीलता का स्पर्श करता हुआ दिखाई देता है। इन कवियों ने नखशिख वर्णन, नायक-नायिका भेद, अलंकार आदि के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए भी श्रृंगार को ही प्रमुखता प्रदान की है। इसलिए डॉ. नगेन्द्र को कहना पड़ा कि साँचा चाहे जैसा भी हो, इसमें ढली श्रृंगारिकता ही है। कवि यदि नायक के सौन्दर्य का वर्णन करता। तो नायिका के सौन्दर्य का भी प्रभावशाली वर्णन करता है।

नायक के सौन्दर्य का वर्णन-

''पलनु दीपक, अंजुन अधर, धरे महावर भाल।
आजु मिले, सु भली करि, भले बने हौ लाल।।''

नायिका के सौन्दर्य का वर्णन-

''करि की चुराई चाल, सिंह को चुरायौ लंक।
ससि को चुरायो मुख, नासा चोरी कीर की।।''

इसी प्रकार से इन कवियों ने संयोगश्रृंगार और वियोगश्रृंगार के भी सुन्दर चित्र अंकित किए हैं। एक उदाहरण देखिए

"बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।

सौंह करै भौंहनि हंसै, दैन कहै नटि जाइ॥

कंज नयनि मंजनु किए, बैठी ब्यौरति वार।

कंच अँगुरी बिच दीठि दै, चितवति नंद कुमार॥''

• **विरह वर्णन**-बिहारी आदि रीतिबद्ध कवियों ने संयोग के साथ-साथ वियोग का भी सफल चित्रण किया है। लेकिन कविवर बिहारी को विरह वर्णन में अधिक सफलता नहीं मिली, बल्कि उनके द्वारा वर्णित विरह वर्णन अनेक स्थलों पर ऊहात्मक बन गया है। कवि चमत्कार तथा वक्रता उत्पन्न करने के लिए इस प्रकार का विरह वर्णन करता है जिसे पाठक को पढ़कर हँसी आती है। इसलिए **विश्वम्भर मानव ने लिखा है ''बिहारी का संयोग वर्णन जैसा सफल हुआ है, वैसा वियोग वर्णन नहीं। एक तो यह उतना विस्तृत नहीं है, दूसरा स्वाभाविकता का स्थान यहां उक्तियों के चमत्कार और समासोक्तियों ने ले लिया है।''**

बिहारी सतसई से विरह वर्णन के दो-एक उदाहरण देखिए -

''इत आवित चलि जाति उत, चली छ सातक हाथ।

चढ़ी हिण्डोरे सी रहै, लगी उसासनु साथ॥

औंधाई सीसी सुलीखि विरह बरनि बिललात।

बीचहि सूखि गुलाब गौ छींटौ छुई न जात।

• **नारी का कामुक वर्णन**-रीतिकालीन कवि तथा उनके आश्रयदाता नारी को मात्र भोग-विलास की वस्तु मानते थे। इन कवियों ने नारी के केवल प्रेमिका रूष तथा विलासिनी रूप की ओर ध्यान दिया। नारी के माँ, बहन, बेटी आदि रूप इन कवियों की दृष्टि के सामने आए ही नहीं। अतः इनकी कविता नारी के रूप वर्णन तथा नखशिख वर्णन तक ही सीमित रही। इसका प्रमुख कारण यही है कि ये कवि अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए ही काव्य रचना कर रहे थे। इस सन्दर्भ में **डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी** ने उचित ही लिखा है- **''नारी की विशेषता इनकी दृष्टि में कुछ नहीं है, वह केवल पुरुष के आकर्षण का एक केन्द्र भर है। उसका सामाजिक अस्तित्व मानो कुछ है ही नहीं। इतना होते हुए भी रीतिकालीन कवियों की नारी के प्रति दृष्टि सामन्तीय रही है। ये कवि नारी को पुरुष के समकक्ष समाज की चेतन इकाई न मानकर केवल उपभोग की वस्तु मात्र स्वीकार करते दिखाई पड़ते हैं। विलास भावना के कारण इन कवियों की दृष्टि नारी के साढ़े तीन हाथ के शरीर व अंग प्रत्यंगों ही टिकी रही उन्हीं का विभिन्न प्रकार से श्रृंगार करती रहे।''**

• **भक्ति-भावना**-रीतिबद्ध कवियों ने अपनी काव्य रचनाओं में वर्णित अश्लीलता को छिपाने के लिए राधा तथा कृष्ण के नामों को समाविष्ट किया, लेकिन यह तो मात्र बहाना था। इस सम्बन्ध में मतिराम ने लिखा भी है-

''आगे के कवि रीझिहैं तो कविताई, न तो,

राधिका कन्हाई सुमिरन का बहानी है।''

ऐसा लगता है कि ये कवि घारश्रृंगार वर्णन करने के कारण निश्चय से भयभीत हो उठे होंगे और बाद में उनका थोड़ा-बहुत ध्यान भक्ति की ओर भी गया। कविवर बिहारी राधा की वंदना करते हुए अपने जीवन की बाधाओं को दूर करना चाहता है।

''मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोइ।

जा तन की झाई परैं, स्यामु हरित - दुति होइ॥''

अन्य कुछ ऐसे स्थल भी हैं जहाँ कवि अपनी दीनता को प्रकट करता हुआ आराध्य से अपने उद्धार को कामना करता है। एक उदाहरण देखिए–

''कौन भांति रहि है विरदु, अब देखिबो मुरारि।

बीधे मोसों आइ कै, गीधे गीधहिं तारि॥''

इस प्रकार हम देखते हैं कि रीतिकाल में भक्ति की भावनाश्रृंगारिक धारा के कारण क्षीण अवश्य हो गई, लेकिन निश्चय से वह जीवित भी रही। इस सन्दर्भ में डॉ. नगेन्द्र लिखते भी हैं– **''वास्तव में इस युग में भक्ति धार्मिकता का ही परिचालक नहीं थी, विलास जर्जर दरबारी वातावरण के बाहर विषय वासनाजन्य दु:खों से आकुल मन के लिए शरण भूमि भी थी। इसलिए समय-समय पर रचित इन छन्दों में से अधिकांश में भक्त कवियों की तरह की तन्मयता का आभास होता है। नीति भाव इन कवियों के लिए संघर्षमय दरबारी जीवन के घात-प्रतिघातों से उत्पन्न मानसिक द्वन्द्व के विरेचन के परिणामस्वरूप शान्ति का आधार थी।''**

• **नीतिपरक काव्य की रचना**–रीतिबद्ध कैवि दरबारी संस्कृति के महत्त्वपूर्ण अंग थे। आम लोगों को अपेक्षा उनके जीवन में भोग-विलास को अधिक महत्त्व दिया जाता था, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि नीति और उपदेश का उनके जीवन में कोई स्थान नहीं है। इन कवियों के कुछ छन्दों से पता चलता है कि उन्होंने अपने अनुभवों और लोक जीवन से शिक्षा ग्रहण करके नीतिपरक काव्य की भी रचना की। विशेषकर वृन्द कवि ने तो अधिक मात्रा में नीतिपरक पदों की रचना की। **वृन्द सतसई** में कुछ ऐसे नीतिपरक दोहे पढ़ने को मिलते हैं जो मानव को उपदेश देते हैं। उधर बिहारी भी सामान्य पाठक को संयम, सदाचार, व्यवहार को शुद्धता और सामाजिक नियमों का संदेश देते हुए दिखाई देते हैं।

वृंद कवि -

''फीकी पै नीके लगे, कहिये समय बिचारी।

सबको मन हरषित करैं, नयौं बिबाह में गारि॥

कैसे निबहै निबल जन करि सबलन सौ रौर।

जैसे बसि सागर विच करत मगर सौ बैर॥

बिहारी–

''सीतलता अरु सुबास कौ घटै न महिमा-मूरु।

पीनस वारैं जौ तज्यौ सोरा जानि कपूरु॥

नल की अर नल-नीर की गति एकै करि जोइ।

जेतो नीची हुवै चलै, तेते ऊँचौ होइ॥

• **प्रकृति वर्णन**–रीतिबद्ध कवियों ने प्रकृति के विभिन्न रूपों का सुन्दर चित्रण किया है। इन्होंने मुख्यत: प्रकृति के आलम्बन, उद्दीपन तथा आलंकारिक रूपों का अधिक वर्णन किया है। यद्यपि कविवर बिहारी ने कुछ थोड़े-से दोहों में प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है, लेकिन सेनापति का प्रकृति वर्णन काफी प्रभावशाली बन पड़ा है। कुछ उदाहरण देखिए–

''दूरि जदुराई, सेनापति सुखदाई देखौ,

आई रितु पाउस, न नाई प्रेम पतियां।

धीर जलधर की, सुनन धुनि धरकी है।

बरस की सुहागिन की छोह भरी छतियां।''

आई सुधि बर की, हिये मैं आनि खरकी

मेरी प्रानप्यारी यह पीतम की बतियां।

बीती औधि बावन की, लाल मन भावन की,

द्रग भई वावन की, सावनश की रतियां।''

इसी प्रकार से कविवर बिहारी ने प्रकृति के आलम्बन तथा मानवीकरण रूपों के सुन्दर चित्र अंकित किए हैं।

''बैठि रहि अति सघन बन, पैठि सदन-तन माँह।

देखि दुपहरी जेठ की छाँहौं चाहति छाँह॥

रनित भृंग-घंटावली, झरति दान मधु-नीर।

मंद-मंद अवतु चल्यौ कुंजरु कुंज समीरु॥''

• **उक्ति-वैचित्र्य का प्रयोग**- रीतिबद्ध कवि उक्ति-वैचित्र्य के प्रति विशेष मोह थे। वे अपनी प्रत्येक बात को चमत्कारी ढंग से कहते हैं। इस सन्दर्भ में बिहारी के नाम का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। उनका प्रत्येक कथन चमत्कारपूर्ण ढंग से कहा गया है। एक उदाहरण देखिए जिसमें नायिका नायक को रास्ता रोकने से मना करती है। यहाँ 'गोरस' शब्द में यमक अलंकार द्वारा विशेष चमत्कार उत्पन्न किया गया है।

लाज गहौ, बेकाज कत घेरि रहे घर जाँहि।

गोरस चाहत फिरत हौ, गोरसु चाहत नाँहि॥

उक्ति-वैचित्र्य प्रयोग के कारण इन कवियों को तत्कालीन राजदरबारों में भले ही प्रसिद्धि प्राप्त हुई हो लेकिन कहीं-कहीं इनके कधनं 'अतिशयोक्तिपूर्ण होने के कारण अनावश्यक-से प्रतीत होने लगते हैं। विशेषकर कविवर बिहारी द्वारा किया गया विरह-वर्णन तो बड़ा ही बेतुका-सा लगने लगता है; यथा-

''इत आवति चली जातिउत, चलिछ सातक हाथ।

चढ़ी हिंडौरे सी रहै, लगी उसासनु साथ॥''

• **आश्रयदाताओं की प्रशंसा**- लगभग सभी रीतिकालीन कवि दरबारी कवि थे। उन्होंने न केवल अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए घोरश्रृंगारी काव्य रचना की, बल्कि उनकी व्यक्ति प्रशंसा भी की तथा साथ ही राज प्रशस्ति पर भी पद लिखे।'

इस सन्दर्भ में कविवर बिहारी का उदाहरण दिया जा सकता है जिन्होंने अपने आश्रयदाता राजा जयसिंह की दानवीरता की प्रशंसा करते हुए यह लिखा है कि कोई भी गुणवान अथवा गुणहीन व्यक्ति राजा जयसिंह से भेंट करके धन और मान को पा लेता है। केवल उसके पास भाग्य का लेख होना जरूरी है। योग्यता आवश्यक नहीं है।

''चलत पाइ निगुनी गुनी धनु मनि-मुत्तिय-माल।

भेंट होत जयसाहि सौं भागु चाहियतु भाल॥''

इसी प्रकार कुछ अन्य रीतिबद्ध कवियों ने भी अपने आश्रयदाताओं की दानवीरता तथा उनके यश का अतिशयोक्तिपूर्ण शैली में वर्णन किया है।

• **भाषा**- सभी रीतिबद्ध कवियों ने साहित्यिक ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया है। विशेषकर बिहारी, कवि वृन्द, नेवाज आदि की भाषा शुद्ध साहित्यिक और परिमार्जित ब्रजभाषा है, लेकिन इस भाषा में बुन्देलखण्डी, खड़ी बोली तथा अरबी-फारसी के शब्दों का भी खुलकर मिश्रण किया गया है। इन कवियों ने ब्रज क्षेत्र में प्रचलित लोकोक्तियों, मुहावरों तथा सूक्तियों का भी सुन्दर प्रयोग किया है। सहज, सरल तथा मधुर साहित्यिक ब्रजभाषा का एक उदाहरण देखिए-

''छहरै सिर पै छवि मोरपख उनकी नथ के मुकता थहरै।
फहरै पियरों पट देती इतै उनकी चूनरी के झवा झतरै॥
रसरंग भिदें अभिदै है तमाल वोऊ रसख्याल चहै लहरै ।
नित ऐसे सनेह सों राधिका श्याम हमारे हिये में सदा बिहरै॥''

रीतिबद्ध कवि प्रतीकों तथा अन्योक्तियों के प्रयोग में पूर्णतया सिद्धहस्त थे। कुछ कवियों ने नीति तथा भक्ति के पदों में प्रतीकों का अधिक प्रयोग किया है। बिहारी सतसई से एक उदाहरण देखिए-

''चित तरसतु मिलत न बनतु, बसि परोस कै पास।
छाती फटी, जाति सुनि टाटी-ओट उसास॥''

कविवर बिहारी, तो अन्योक्तियों के प्रयोग में पूर्णतया सिद्धहस्त थे। अन्योक्ति विधान के कारण ही उन्होंने न केवल राजा जयसिंह को प्रभावित किया, बल्कि उसे नवोढ़ा पत्नी के आकर्षण से मुक्त करके राज-काज को और भी प्रवृत किया।

''नहि पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यह काल।
अंलि कलि सौ बध्यौ, आगे कौन हवाल॥''

इसी प्रकार से रीतिबद्ध कवि चित्रों को साकार रूप में प्रस्तुत करने में भी सक्षम हैं। वे विषय से सम्बन्धित बड़े हो सफल चित्र अंकित करते हैं। इन चित्रों में समग्र जीवन के चित्र नहीं हैं, केवल खण्ड चित्र ही उपलब्ध होते हैं यथा-

''कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन में करत है; नैंनन्नु ही सौं बात॥''

लाल भाल पै लसत है, सुन्दर बैदी लाल।
कियो तिलक अनुराग ज्यौं, लखि कै रूप रसाल॥''

रीतिबद्ध कवियों ने बिम्बों का भी सफल प्रयोंग किया है। ये कवि दृश्य बिम्ब, श्रव्य बिम्ब तथा स्पर्शय बिम्ब प्रस्तुत करने में सफल हुए है। कहीं-कहीं इन्होंने वस्तुपरक, भावपरक तथा आध्यात्मिक बिम्बों की भी योजनां की है। कुछ उदाहरण देखिए-

(1) **स्पर्श बिम्ब**
छला छबीले लाल कौ नवल नेह लहि नारि।
चूँमति, चाहति, लाइ उर पहिरति धरति उत्तारि॥

(2) **दृश्य बिम्ब**
सहज सचिक्कन स्याम रुचि, सुचि सुगंध सुकुमार।
गनतुं न मनु पथं अपथु लखि बिधुरे सुथेर बार॥

• **छन्द एवं अंलकार**-रीतिबद्ध कवियों ने अलंकारों का खुलकर प्रयोग किया है। लगभग सभी रीतिबद्ध कवियों ने शब्दालंकारों के साथ-साथ अर्थालंकारों का भी सफल प्रयोग किया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति आदि का प्रयोग देखा जा सकता है। अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, सांगरूपक, विभावना, अर्थान्तरन्यास, रूपकातिश्योक्ति, यथासंख्या, दृष्टांत, उदाहरण आदि का प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरण देखिए -

अन्योक्ति -

''नहिं. पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल।
अलि कलि हो सो बँध्यो, आगे कौन हवाल॥''

यमक -

''तो पर वारौं उर बसी, सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन के उर बसी, हुवै उरबसी समान।''

श्लेष -

''अज्यों तरौना ही रह्यौ स्त्रुति सेवत इक अंग।
ढाक बास बासरि लह्यों, बसि मुक्तन के संग।।''

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 रीतिबद्ध काव्य धारा का प्रतिनिधि कवि कौन है?

प्र. 2 रीतिकाल का आरम्भ शुक्ल के अनुसार किसे माना जाता है?

प्र. 3 भूषण के बड़े भाई का नाम क्या है?

प्र. 4 कविकुलकल्पतरू के रचनाकार कौन है ?

प्र. 5 काव्यनिर्णय किसकी रचना है ?

17.4 सारांश

रीतिबद्ध काव्यधारा उन कवियों की है जिन्होंने राजाओं (उनकी पत्नी या प्रेमिकाओं) को शास्त्रीय ज्ञान देने के लिए लक्षण ग्रंथों की रचना की। ये कवि पहले संस्कृत से काला लक्षण या सिद्धांत का अनुवाद ब्रज भाषा में करते, उसके बाद उदाहरण के रूप में कविता लिखते थे।

17.5 कठिन शब्दावली

सामंजस्य - तालमेल

वैचारिक - विचार संबंध

रीति - परिपाटी

अतलस्पर्शी - अथाह

चितवृत्ति - प्रवृत्ति

17.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

उ. चिंतामणि

उ. चिंतामणि को

उ. चिंतामणि

उ. चिन्तामाणि

उ. भिखारीदास

17.7 संदर्भित पुस्तकें

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का उद्भव एवं विकास
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास
3. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य का संवेदना और स्वरूप

17.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. रीतिबद्ध काव्यधारा के प्रतिनिधि कवियों तथा उनकी प्रवृतियों का वर्णन कीजिए ?

प्र. रीतिबद्ध काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियों का विवेचन कीजिए ?

*****

इकाई–18
रीतिसिद्ध काव्य धारा

संरचना

18.1 भूमिका

18.2 उद्देश्य

18.3 रीतिसिद्ध काव्य धारा

18.3.1 रीतिसिद्ध काव्य की प्रवृत्तियाँ

- लक्षण ग्रंथों का निर्माण
- आश्रयदाताओं का गुणगान
- श्रृंगारिकता
- अलंकारिता
- प्रकृति वर्णन

स्वयं आकलन प्रश्न

18.4 सारांश

18.5 कठिन शब्दावली

18.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

18.7 संदर्भित पुस्तकें

18.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-18

रीतिसिद्ध काव्य धारा

18.1 भूमिका

इकाई सत्रह में हमने रीतिबद्ध काव्य धारा एवं उसकी सामान्य विशेषताओं का अध्ययन किया। इकाई अठारह में हम रीतिसिद्ध काव्य धारा एवं उसकी काव्य प्रवृत्तियों का गहन अध्ययन करेंगे।

18.2 उद्देश्य

इकाई अठारह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि

1. रीतिसिद्ध काव्य धारा क्या है ?
2. रीतिसिद्ध काव्य धारा की प्रमुख प्रवृत्तियां क्या हैं ?
3. रीतिसिद्ध कवियों ने किस प्रकार लक्षण ग्रंथों का निर्माण किया है।

18.3 रीतिसिद्ध काव्यधारा

विद्वानों ने रीतिकालीन कवियों को तीन वर्गों में विभक्त किया है। ये तीन वर्ग हैं-रीतिसिद्ध कवि, रीतिबद्ध कवि तथा रीतिमुक्त कवि। जहाँ तक रीतिमुक्त काव्य का प्रश्न है, उसके बारे में किसी प्रकार का विवाद नहीं है, लेकिन रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों को लेकर विद्वानों ने अलग-अलग विचार प्रकट किए हैं। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का विचार है कि जिन आचार्यों ने लक्षण ग्रन्थों का निर्माण किया, उन्हें रीतिबद्ध कहा जाना चाहिए, लेकिन डॉ. नगेन्द्र इससे सहमत नहीं हैं। उनका विचार है कि इन कवियों ने रीति नियमों में बद्ध होकर काव्य रचना तो की, लेकिन लक्षण ग्रंथ नहीं लिखे, उनको रीतिबद्ध कवि कहा जाना चाहिए। यदि हम डॉ. नगेन्द्र के इस मत का समर्थन करते हैं तो इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि रीतिसिद्ध कवि वे हैं जिन्होंने लक्षण ग्रन्थों के साथ-साथ लक्ष्य ग्रन्थों का भी निर्माण किया। इस प्रकार के कवियों को शास्त्र कवि भी कहा जाता है। ये कवि स्वयं को शिक्षक मानकर काव्यांगों का विवेचन करते रहें. और उनके उदाहरण भी देते रहे। आचार्य शुक्ल ने इन कवियों को रीति ग्रंथकार कवि कहा है। अत: यहाँ हम रीतिसिद्ध काव्य में उन कवियों का विवेचन करने जा रहे हैं जिन्होंने लक्षण और लक्ष्य दोनों प्रकार के ग्रंथ लिखे हैं। इनको आचार्य कवि भी कहा गया है। प्रमुख रीतिसिद्ध कवियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

1. केशवदास- यूँ तो इनकी गणना भक्तिकालीन कवियों में की जाती है, लेकिन रीतिकाल में भी इनको चर्चा की गई है। हिन्दी साहित्य में केशवदास की वही स्थिति है जो आधुनिक काल के कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की है। ये ऐसे कवि हैं जिन्होंने रीति ग्रन्थों का लेखन आरम्भ किया। केशवदास के सात ग्रंथ हैं- **'रसिकप्रिया', 'कवि-प्रिया', 'रामबन्द्रिका', 'रल बोवनी', 'वीर सिंह देव चरित' 'विज्ञान गीता'** तथा **'जहाँगीर जस-चन्द्रिका'। 'रामचन्द्रिका'** इनकी कीर्ति का आधार स्तम्भ है। **'रसिकप्रिया'** और **'कविप्रिया'** दोनों ही रीति ग्रंथ हैं। केशवदास ने इन दोनों ग्रन्थों के माध्यम से हिन्दी काव्यशास्त्र की जिस परम्परा का आरम्भ किया वह लगभग पचास वर्ष बाद पुष्पित और पल्लवित हुई। **'रसिकप्रिया'** के सोलह प्रकाशों अध्यायों में श्रृंगार रस के भेदों, उपभेदों, नायक-नायिका भेद तथा विभिन्न अलंकारों का विवेचन किया गया है। यह रचना भानुदत्त की **'रस मंजरी'**, **'रस तरंगिणी'** तथा **'साहित्य दर्पण'** आदि से प्रभावित दिखाई देती है। **'कविप्रिया'** में तो सोलह प्रकाश अध्याय है।

इसमें आरम्भ के चार प्रकाशों में कवि ने अपने आश्रयदाता के वंश तथा अपने वंश का परिचय दिया है और बाद में अलंकारों के लक्षण तथा उदाहरण दिए हैं। इनकी एक अन्य रचना **'छन्द बाला'** में वर्ण वृत्तों के साथ-साथ मात्रा वृत्तों का वर्णन किया गया है। इन्हीं तीन रचनाओं के आधार पर केशव को आचार्य कवि कहा जाता है।

2. चिंतामणि त्रिपाठी- इनका का जन्म सन 1609 में कानपुर जिले के तिकवाँपुर गाँव में हुआ। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण जाति से संबंधित थे और तीर्थंकर और मतिराम के भाई माने जाते हैं। **'काव्य विवेक'**, **'काव्य प्रकाश'**, **'कांचकुल कल्पतरु'**, **'छंद विचार'** और **'श्रृंगार मंजरी'** आदि प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। **'श्रृंगार मंजरी'** में कलाकारों का

वर्णन किया गया है और **'कविकुल कल्पतरु'** में रस, अलंकार, शब्द-शक्ति और काव्य के गुण-दोषों पर प्रकाश डाला गया है। **'छंद विचार'** पिंगल शास्त्र से सम्बन्धित ग्रंथ है। इन्होंने जो लक्षण तथा उदाहरण दिए हैं उन पर संस्कृत काव्यशास्त्र का अत्यधिक प्रभाव देखा जा सकता है।

3. मतिराम-इनकी गणना भी रीतिकाल के आचार्य कवियों में की जाती है। इनको भूषण तथा चिंतामणि का भाई बताया जाता है। ये बूँदी नरेश महाराज भावसिंह हाड़ के आश्रित कवि थे। **'रसराज', 'ललित ललाम', 'मतिराम सतसई', 'छन्द सार'** तथा **'फूल मंजरी'** इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। इनके अतिरिक्त **'लक्षण श्रृंगार', 'अलंकार पंचाशिका'** तथा **'वृत्त कौमुदी'** आदि भी इनके ग्रंथ माने जाते हैं। गुण की दृष्टि से मतिराम, रीतिकाल के उत्कृष्ट कवियों में से एक हैं। भले ही इनको आचार्य कवि कहा जाता है, लेकिन कवि के रूप में इनको विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई। मतिराम की भाषा सहज, सरल तथा साहित्यिक ब्रजभाषा कही जा सकती है। एक उदाहरण देखिए-

''कुन्दन को रंग फीकौ लगे, झलके अति अंगनि चारु गोराई।
आँखिन में अलसानि, चितौन में मंजु विलासन की सरसाई॥
को बिनु मोल बिकात नहीं मतिराम लहे मुसकानि मिठाई।
ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे है नैननि त्यों-त्यों निकरै-सी निकाई॥''

4. कुलपति मिश्र-कुलपति: मिश्र रीतिकाल के एक अन्य प्रमुख रीतिबद्ध कवि हैं। उनके जीवन के बारे में जो थोड़ी बहुत जानकारी प्राप्त हुई है, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि वे आगरा के मातु चौबे थे और बिहारी के भांजे थे। इनके पिता का नाम परशुराम मिश्र था। महाराज रामसिंह के दरबार में इनको आश्रय प्राप्त हुआ। **'द्रोण पर्व', 'मुक्ति तरंगिणी', 'नखशिख', 'संग्राम सार'** तथा **'रस रहस्य'** इनकी उल्लेखनीय काव्य कृतियाँ हैं। **'रस रहस्य'** में कवि ने काव्य लक्षण, काव्य प्रयोजन तथा काव्य हेतु का विवेचन किया है। आचार्य शुक्ल है इस ग्रंथ को मम्मट के काव्य प्रकाश का छाया अनुवाद कहा है। इन्होंने शब्द शक्ति तथा अभाव आदि के जो लक्षण उदाहरण दिए हैं, वे सभी काव्य प्रकाश से ही लिए गए हैं, लेकिन **'अलंकार प्रकरण'** में कवि ने अपने आश्रयदाता महाराजा रामसिंह की प्रस्तुति में जो उदाहरण दिए हैं, वे कवि द्वारा रचित हैं।

5. भिखारीदास- आचार्य भिखारीदास का जन्म प्रतापगढ़ के पास किसी गाँव में हुआ। ये प्रतापगढ़ राजा पृथ्वीराज सिंह के भाई हिन्दूपति के आश्रित कवि थे। इन्होंने कुल नौ ग्रन्थों की रचना की जिनमें **'रस-सारांश', 'छन्दोर्णव पिंगल', 'काव्य निर्णय', 'श्रृंगार निर्णय', 'नाम प्रकाश', 'अमर प्रकाश', 'विष्णु पुराण'** आदि उल्लेखनीय हैं। **'छन्दोर्णव पिंगल'**, काव्य निर्णय तथा 'रस सारांश' आधार पर इनका आचार्यत्व सिद्ध किया जा सकता है। छन्दोर्णव पिंगल में छंदों का विवेचन किया है, **'रस सारांश'** में रस सामग्री का तथा **'श्रृंगार निर्णय'** में नायिका भेद के अतिरिक्त श्रृंगार रस निरूपण किया गया है। **'काव्य निर्णय'** में कवि ने काव्य प्रयोजन, काव्य हेतु, काव्य-भाषा आदि पर प्रकाश डाला है। इनके सभी रीति ग्रंथ **'साहित्य दर्पण', 'रस मंजरी'** तथा **'रस तरंगिणी'** आदि प्रभावित दिखाई देते हैं, फिर भी इनकी गणना रीतिकाल के श्रेष्ठ आचार्य कवियों में की जाती है।

6. देव-रीतिकालीन कवियों में देव का पूरा नाम देवदत्त द्विवेदी है। इनका जन्म इटावा के

घोसरिया ब्राह्मण परिवार में हुआ। इन्होने अनेक रईसों और राजाओं के यहाँ आश्रय प्राप्त किया। अन्त में, ये भोगीलाल के यहाँ काफी समय आश्रित रहे। इन्होने लगभग 72 ग्रंथों की रचना की, जिनमें **'भाव-विलास', 'अष्टयाम', 'सुजान विनोद', 'काव्य रसायन', 'रस विलास', 'भवानी विलास', 'कुशल विलास', 'प्रेम विलास', 'रसानन्द लहरी', 'प्रेमदर्शन', 'सुख सागर तरंग'** आदि के नाम गिनवाए जा सकते हैं। देव मूलतः रसवादी आचार्य थे। **'भाव विलास'** में कवि ने रस सामग्री, रसों के भेद, नायक-नायिका भेद तथा अलंकारों का विवेचन किया है। इस रचना पर **'रस मंजरी', 'रस तरंगिणी'** तथा भामा के **'काव्य अलंकार'** का प्रभाव है। **'काव्य रसायन'** में इन्होंने काव्य रूप, वृत्ति, रीति आदि का विवेचन किया है। कवि देव आजीवनश्रृंगार रस का अत्यधिक वर्णन करते रहे, लेकिन जीवन के अन्तिम काल में भक्ति तथा वैराग्य की ओर मुड़ गए।

18.3.1 रीतिसिद्ध काव्य की प्रवृत्तियाँ

अन्य रीतिसिद्ध कवियों में तोष, पद्माकर, भूषण, गोप, सुखदेव मिश्र तथा कालिदास आदि के नाम भी गिनवाए जा सकते हैं। रीतिसिद्ध काव्य की प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं-

• **लक्षण ग्रन्थों का निर्माण**- रीतिकाल के आचार्य कवियों ने काव्य के सभी अंगों पर लक्षण ग्रंथ लिखे हैं। इन्होंने नायिका भेद्र, नखशिख, रस, शब्द-शक्ति, काव्य गुण, अलंकार, छन्द आदि का शास्त्रीय का अध्ययन किया है, लेकिन ये कवि मौलिक चिंतन प्रस्तुत नहीं कर सके। केवल अपने काव्यशास्त्रीय ज्ञान का पाण्डित्य-प्रदर्शन ही करते रह गए। यही कारण है कि उन्होंने अपने रीति ग्रन्थों में काव्यशास्त्र के केवल कुछ तत्त्वों का हो, विवेचन किया है। अधिकांश आचार्य कृवियों ने रस, नायिका भेद, अलंकार तथा छन्दों पर रचनाएँ लिखी है। चिन्तामणि ने **'रस विलास'** में यदि रस का विवेचन किया है तो कुलपति मिश्र ने 'रस रहस्य' में काव्य लक्षण, काव्य प्रयोजन, काव्य हेतु तथा अलंकारों का विवेचन किया है। इन सभी द्वारा आचार्य कवियों की रचनाएँ भानुदत्त द्वारा रचित **'रस मंजरी', 'रस तरंगिणी',** विश्वनाथ द्वारा रचित **'साहित्य दर्पण'** तथा मम्मट द्वारा रचित **'काव्य प्रकाश'** आदि से प्रभावित हैं। कुछ स्थलों पर तो इन्होंने संस्कृत के काव्यशास्त्रीय लक्षणों का ब्रजभाषा में अनुवाद मात्र कर दिया है। अतः इनके लक्षण ग्रन्थों में न तो गभीर चिंतन है और न ही मौलिकता है।

• **आश्रयदाताओं का गुणगान**- प्रायः सभी रीतिसिद्ध कवि तत्कालीन बादशाहों, राजाओं तथा सामन्तों के आश्रित कवि थे। अतः उन्होंने 'स्वामिनः सुखाय' की ही काव्य रचना की है। कुछ रीतिसिद्ध कवियों ने तो अपने आशश्रयदाता की प्रशंसा करते हुए उनके नाम पर ही अपनी रचनाओं का नामकरण कर दिया। इस सन्दर्भ में **'भवानी विलास', 'जगत विनोद', 'सुजान विनोद'** आदि के नाम गिनवाए जा सकते हैं। इन कवियों की, रोजी-रोटी अपने आश्रयदाताओं के कारण चलती थी और उन्हीं को प्रसन्न करने के लिए ये काव्य रचना करते थे। इसलिए इन कवियों से मौलिक रचनाओं की आशा भी नहीं की जा सकती है। ये कवि अपने आश्रयदांता को वीरता, साईस, पराक्रम आदि का अतिशयोक्तिपूर्ण शैली में वर्णन करते दिखाई देते हैं। उदाहरण के रूप में, मतिराम अपने आश्रयदाता भावसिंह की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं-

''सूबन को मेटि दिल्ली देस दलिबे को धूम,
सुभट समूह निसि बाको उमहति है।
कहै मतिराम ताहि रोकिबे को संगरम,
काहू के हिम्मत हिए में उलहित है॥
सत्रुसाल नंद के प्रताप की लंपट सब,
जरब गनीम बरगीन को हहति है।
पति पातसाह कीं, इजति उमराबन की,
राखी रैया राव भावसिंह की रहति है।''

• **श्रृंगारिकता**- रीतिसिद्ध कवियों की रचनाओं में श्रृंगार रस को प्रमुखता प्रदान की गई है। वस्तुतः श्रृंगार वर्णन में इनका मन खूब रमा है। इन कवियों ने रस के आधार पर अनेक लक्षण ग्रंथ भी लिखे। इसका प्रमुख कारण यह है, कि इन कवियों के आश्रयदाता बड़े हो कामुक, भोगी और विलासी थे। अतः ये कवि अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए ही श्रृंगार प्रधान काव्य रचना लिख रहे थे। वस्तुतः श्रृंगार रस प्रधान काव्य रचना करना इन कवियों को मजबूरी थी। कहीं-कहीं तो इनका श्रृंगार वर्णन अश्लीलता को स्पर्श करने लगता है। इस श्रृंगार भावना को रीतिसिद्ध कवियों ने भक्ति के आवरण में भी लपेटने का प्रयास किया। यहाँ तक कि राधा-कृष्ण भी श्रृंगार चेष्टाओं के उत्तम विषय बन गए।

रीतिसिद्ध कवियों ने श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण किया है, लेकिन संयोग श्रृंगार में इन्हें अधिक सफलता मिली है। ये कवि नायिका भेद के अन्तर्गत नारी के शारीरिक सौन्दर्य का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करते हैं। एक उदाहरण देखिए जिसमें पूर्णोपमा अलंकार को घटाने का प्रयास किया गया है-

''मद गजराज की-सो चाल चलै मंद मंद
पद अरविंद के सुछवं सुकुमार है।
केहरि की कटि ऐसी खीन कटि दीन कुच
हेम कुंभ से है कंठ कंबु सौ सुढार है।।
धनुष-सी बांकीं भौंह बनी है 'गुबिन्द' दृग
मृग कैसे चख मुख चंद ऐसो चारु है।
चतुर बिहारी एक प्यारी मैं निहारी जाके
अगनि की सुषमा की उपमा अपार है।।

लेकिन रीतित्सिद्ध कवियों में वियोग श्रृंगार के भी अनेक चित्र अंकित किए हैं, लेकिन इन कवियों का विरह वर्णन, विरह के चारों भेदों तथा दसों दिशाओं के अनुसार ही किया गया है। उदाहरण के रूप में, कवि देव ने विरह व्यथा के कारण शय्या पर तड़पती हुई नायिका की मरणासन्न स्थिति का स्वाभाविक चित्र अंकित किया है।''

"साँसनि ही सों समीर गयो अरु आँसुन ही सब नीर गयो डरि
तेज गयो गुन लै अपनो, अरू भूमि गई तन की तनुता करि।
जीव रहयो मिलिबोई की आस, कि आस हु पास अकास रहयो भरि।
जा दिन ते मुख फेरि, हरे हँसि हियो जु लियों हरि जू हरि।''

• **अलंकारिता**- रीतिसिद्ध कवियों का अलंकारों के प्रति विशेष मोह रहा है। अलंकारों का विवेचन करने वाले कवियों की संख्या सबसे अधिक है। इन कवियों ने अपने आश्रयदाताओं को अलंकारों का सामान्य ज्ञान देने के लिए तत्सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना की। इन्होंने शब्दालंकारों के साथ-साथ अर्थालंकारों के लक्षण तथा उदाहरण दिए हैं, लेकिन कुछ ऐसे रीतिसिद्ध कवि भी हैं जिन्होंने केवल अर्थालंकारों पर ही ग्रंथ लिखे हैं। रीतिकाल में अलंकारों की अधिकता होने के कारण ही मिश्र बन्धुओं ने इस काल को अलंकृत काल का नाम दिया था।, रीतिसिद्ध कवियों में मतिराम, जसवन्त सिंह तथा भूषण आदि ने अलंकारों से सम्बन्धित लक्षण ग्रंथ लिखे हैं तथा साथ ही उनके उदाहरण भी दिए हैं। रीतिकालीन अलंकारवादी कवि जयदेव के चंद्रालोक, अप्पय दीक्षित की 'कुवलयानंद', मम्मट के 'काव्य प्रकाश' भामह के 'काव्यालंकार' तथा विश्वनाथ के 'साहित्य दर्पण' से अत्यधिक प्रभावित रहे हैं। इन कवियों की रचनाओं में भी मौलिकता का अभाव है। यूं तो केश्वदास को अलंकारवादी आचार्य कवि कहा जाता है लेकिन पद्माकर, भूषण, जसवंत सिंह आदि भी अलंकारवादी आचार्य हैं। यमक और श्लेष अलंकारों के कुछ उदाहरण देखिए-

यमक - देव गुन अगरी उसासें भरै अगरी दबाये दंतु अँगुरी अचल अंग अंगरी।
लंक लग बगरी, कलंक लग बगरी सखीन संग बगरी सखी न संग बगरी।।

श्लेष - मुसकाई के गाई के गार दुही।

इसी प्रकार से इस काव्य में अर्थालंकारों में निम्नलिखित अलंकार प्रमुख हैं-उत्प्रेक्षा, उपमा, विभावना, दीपक, समासोक्ति, अन्योक्ति, मानवीकरण आदि। अतिशयोक्ति अलंकार का एक उदाहरण देखिए -

अतिशयोक्ति–

''यह कैधों कलाधर ही की कला, अबला किंधे इन्द्र की कैथों सची
कैंधो मेन के मौन की दीप शिखा, सखी औन दे भाग ह्वै भाल खची,
तिहूं लोक की सुन्दरताई की एक, अनुपम रूप की रासि मची।
नर, किन्नर, सिद्ध, सुरासुर हून की वंचि, वधूनि विरचि रची॥''

• **प्रकृति वर्णन–** प्राय: सभी रीतिसिद्ध कवि दरबारी संस्कृति में आकण्ठ डूबे हुए थे। अत: प्रकृति की ओर देखने का उनके पास समय नहीं था, लेकिन उनको यह भी पता था कि प्रकृति वर्णन भारतीय साहित्य का अनिवार्य अंग है। इसलिए इन कवियों ने अपनी रचनाओं में प्रकृति वर्णन को भी कुछ स्थान दिया है, लेकिन हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि रीतिकालीन कवियों का प्रकृति वर्णन न तो आदिकाल जैसा है और न ही भक्तिकाल जैसा। रीतिसिद्ध कवियों ने प्रकृति के आलम्बन रूप, उद्दीपन रूप तथा आलंकारिक रूप का चित्रण किया है। अपवाद के रूप में प्रकृति के अन्य रूप भी इन कवियों की रचनाओं में देखे जा सकते हैं। उदाहरण के रूप में, चिंतामणि कोयल की कूक द्वारा आलम्बन रूप में प्रकृति का वर्णन करता है।

''कोकिल कूक सुनै उमगौ मन,
और सुभानु भयो अबही को।
फूली लता द्रुमकुँज सुहात, लागे। अली गुंजन भाव जी को।
कारन कौन भयो सजनी, यह खेल लगै गुड़ियान को फीको।
काहे, ते साँवरो अंग छबीलो, लगे दिन द्वैक तें नैननि नीको॥

इसी प्रकार से कृवि मतिराम ने उद्दीपन रूप में प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है। बसन्त ऋतु आ चुकी है और नायिका अपने प्रियतम को विदेश नहीं भेजना चाहती। अत: उसके प्रवास का समाचार सुनकर कमल के फूल भी उसे अग्नि के समान जलाने लग जाते हैं।

"मलय समीर लगी चलन सुगंध सीरो, पथिकन कीने परदेसन तें आवणे।
मतिराम सुकवि समूहनि सुमन फूले, कोकिल, मधुप लागि बोलन सुहावने॥
आयो है बसन्त भए पल्लवित जलजात, तुम लागे चलिबे की चरचा चलावने।
रावरी तिया को तरवर सरबरु के किसलै काल हुवै हैं बारक बिछावने॥

• **मुक्तक काव्य रूप–** प्राय: सभी रीतिसिद्ध कवियों ने मुक्तक काव्य की ही रचना की है। इस काल में लक्षण ग्रंथं, प्रबन्ध काव्य तथा मुक्तक काव्य अधिक संख्या में लिखे गए। लक्षण ग्रन्थों में रीतिसिद्ध कवियों ने कांव्यांगों के लक्षण देते हुए उनके उदाहरण प्रस्तुत किए। वस्तुत: ये सभी रचनाएँ मुक्तक काव्य की कोटि में ही रखी जा मकती हैं, लेकिन इस काल के कुछ कवियों ने प्रबन्ध काव्य की भी रचना की। इस सन्दर्भ में सोमनाथ रचित 'सुजान, विलास', पद्माकर द्वारा रचित 'हिम्मत बहादुर विरुदावली' और 'प्रताप सिंह विरुदावली' तथा केशवदास की 'रामचन्द्रिका' के नाम गिनवाए जा सकते हैं। मुक्तक कांव्यों में **'मतिराम सतसई', 'सुधा निध्नि', 'नयन पचासा', 'शिवा बावनी', 'वृत्त कौमुदी'** आदि रचनाओं के नाम गिनवाए जा सकते हैं। डॉ. नगेन्द्र आदि कुछ आलोचकों ने रीतिसिद्ध कवियों के लक्षण ग्रंथों को भी मुक्तक काव्य की कोटि में रखा है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इन कवियों के आश्रयदाताओं के पास प्रबन्ध श्रवण के लिए न तो धैर्य था और न ही अवकाश था। उन्हें तो थोड़े समय में अधिकाधिक मनोरंजन के लिए: फड़कती हुई कोई चीज चाहिए थी और इसी पर उनका पारितोष निर्भर था। उल्लेखनीय बात यह है कि इस युग के भक्ति, नीति तथा अन्य विषयों के कवियों ने भी मुक्तक काव्य परम्परा को अपनाया।

• **वीर काव्य की रचना**– रीतिसिद्ध कवियों में भूषण, लाल, सूदन, पद्‌माकर आदि कवियों ने वीर रस प्रधान काव्य रचना की है। वस्तुत: यह बड़े आश्चर्य की बात है कि तत्कालीनश्रृंगारी वातावरण में भी कुछ कवियों ने सुन्दर वीर काव्य की रचना की। इस सन्दर्भ में कविवर भूषण के नाम का उल्लेख करना नितान्त आवश्यक होगा जिन्होंने शिवाजी और छत्रसाल को काव्यनायक बनाकर ओजस्वी भाषा में उनकी दानवीरता, युद्धवीरता दयावीरता आदि का वर्णन किया। हमें इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि तत्कालीन मुस्लिम शासक हिन्दुओं पर तरह तरह के अत्याचार कर रहे थे। उनके अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध हो वीर शिवाजी, छत्रसाल, महाराजा राजसिंह और गुरु गोबिन्द सिंह ने तलवार उठाई। भले हो ये दरबारी कवि थे, लेकिन इन्होने अपने आश्रयदाताओं को वीरता, कीर्ति और शौर्य का प्रभावशाली वर्णन किया है। भूषण की राष्ट्रीय चेतना आज भी पाठक में देश-प्रेम की भावना उत्पन्न करती है। भूषण द्वारा रचित 'शिवा बावनी' और छत्रसाल दशक दोनों हो वीर रस प्रधान काव्य रचनाएँ हैं। उनके 'शिवा बावनी' से एक उदाहरण देखिए जिसमें काल्यनायक शिवाजी को धर्मवीरता का वर्णन किया गया है–

''वेत राखे विदित पुरान राखे सारयुत,
राम नाम राख्यौ अति. रसना सुघर मैं।
हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
काँधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर मैं॥
मीड़ि राखै मुगल परोड़ि शरंत्र पातसाह,
बैरी पीसि राखे वरदान राख्यो कर मैं।
राजन की हछ राखी तेग बल सिवराज,
देव राखे देवले स्वधर्म राख्यौ घर मैं॥''

• **भाषा : छन्द एवं अलंकार** – अन्य गतिकालीन कवियों के समान रीतिसिद्ध कवियों ने भी तत्कालीन साहित्यिक ब्रजभाषा का ही सफल प्रयोग किया है। उनके काव्य को पढ़कर लगता है कि ब्रजभाषा का यह स्वर्ण युग था, लेकिन रीतिसिद्ध कवि भावों को सफल अभिव्यक्ति करने के लिए शब्दों को तोड़ते-मरोड़ते हुए देख गए है। फिर भी इन कवियों की काव्य-भाषा में अवधी, अरबी, फारसी तथा बुन्देलखंडी भाषाओं के शब्दों का भी मिश्रण किया गया है। लोकोक्तियों तथा मुहावरों के प्रयोग के कारण इनको भाषा का अर्थ गाम्भीर्य बढ़ गया है। इसी प्रकार उक्ति-वैचित्र्य के कारण इनको काव्य-भाषा में लाक्षणिकता भी देखी जा सकती है। एक उदाहरण देखिए–

''अपने हाथ सो देत महावर आप ही बार सवारत नीके आपुन हो फिरावत आनि

कै हार संवारि के मौरमिरी के। हां सखि लोज, सहारा मेरी मतिराम सुभाव कहा कहौ पीके। लोग मिलै घर घैरु कहै अबही ते ये चारे भए दुल्ही के।''

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र.1 जिन साहित्यकारों ने संस्कृत के लक्षण ग्रंथों के आधार पर हिन्दी में भी लक्षण ग्रंथों की रचना की उन्हें क्या कहते हैं।

प्र.2 बिहारी रीतिकाल के किस काल के कवि हैं ?

प्र.3 बिहारी सतसई का रचनाकाल क्या है ?

18.4 सारांश

रीतिसिद्ध कवि काव्यशास्त्र आधारित काव्यांगविवेचन नहीं करते। वे नायक-नायिका, नायिका, रस, रस, छंद, अलंकार, गुण, दोष के लक्षण नहीं विवेचित्त करते, बल्कि वे सीधे काव्यांग के सरस उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जहाँ उनकी कविताई का चरम परिणक दृष्टिगत होता है। यही कारण है कि रीतिसिद्ध कविता काव्य-रीति के भार से दबकर बोझिल नहीं हुई है।

18.5 कठिन शब्दावली

(1) रंगरेजना - कपड़े रंगना

(2) रतिप्रीता : -साहित्य में वट नायिका

18.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र.1 उ. - रीतिबद्ध

प्र.2 उ. - रीतिसिद्ध

प्र.3 उ. - 1662

18.7 संदर्भित पुस्तकें

1. सुधीन्द्र कुमार, रीतिकाल की इतिहास दृष्टि

2. डॉ. नगेन्द्र, रीतिकाल की भूमिका

18.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 रीतिसिद्ध काव्यधारा पर प्रकाश डालिए।

प्र. 2 रीतिसिद्ध काव्य परंपरा में बिहारी का स्थान निर्धारित कीजिए।

प्र. 3 रीतिसिद्ध काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

*****

इकाई–19
रीतिमुक्त काव्यधारा

संरचना

19.1 भूमिका

19.2 उद्देश्य

19.3 रीतिमुक्त काव्यधारा

19.3.1 रीतिमुक्त काव्यधारा की विशेषताएं

- स्वच्छन्द प्रेम का वर्णन
- श्रृंगार वर्णन
- अद्वितीय सौन्दर्य वर्णन
- प्रकृति वर्णन
- भक्ति भावना
- लोक जीवन का वर्णन

स्वयं आकलन प्रश्न

19.4 सारांश

19.5 कठिन शब्दावली

19.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

19.7 संदर्भित पुस्तकें

19.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-19
रीतिमुक्त काव्यधारा

19.1 भूमिका

इकाई अठारह में हमने रीतिसिद्ध काव्यधारा एवं उसकी प्रवृत्तियों का अध्ययन किया है। इकाई उन्नीस में हम रीतिमुक्त काव्यधारा एवं उसकी विशेषताओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

19.2 उद्देश्य

इकाई उन्नीस का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि

1. रीतिमुक्त काव्यधारा क्या है ?
2. रीतिमुक्त काव्यधारा की विशेषताएँ क्या है ?
3. रीतिमुक्त काव्यधारा में किस प्रकार स्वच्छंद प्रेम का चित्रण हुआ है।

19.3 रीतिमुक्त काव्यधारा

उत्तर-विद्वानों ने रीतिकालीन काव्य को रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध तथा रीतिमुक्त तीन वर्गों में विभक्त किया है। रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य तो परस्पर संबंधित हैं, लेकिन रीतिमुक्त काव्य इनसे सर्वथा अलग है। रीतिकाल में कुछ ऐसे कवि भी हुए जिन्होंने रीति से मुक्त होकर काव्य रचना की। इन्होंने काव्यशास्त्रीय विधानों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इसीलिए इन्हें रीतिमुक्त कवि कहा गया। कुछ विद्वान् तो इसे स्वच्छन्द काव्यधारा के कवि भी कहते हैं। रीतिमुक्त कवियों की संख्या 50 के लगभग है। इनमें स्वच्छन्द प्रेम रस, के कवि, वीर रस के कवि, नीति, कवि तथा मुक्त कवि सभी गिनवाए गए हैं। इनमें घनानन्द, आलम, ठाकुर, बोधा, द्विजदेव आदि के नाम गिनवाए जा सकते हैं।

1. घनानंद-इनकी शैली उत्तम पुरुष प्रधान आत्म-निवेदन की है। उन्होंने प्रेम की अनुभूतियों का सफलतापूर्वक वर्णन किया है। उनका स्पष्ट कहना है कि प्रेयसी सुजान से ही कवि को काव्य की प्रेरणा मिली और कवि ने उसी को काव्य के रूप में उपस्थित किया। अत: घनानन्द के काव्य में वर्णित प्रेम की अनुभूति उसकी अपनी है। घनानंद की काव्य-रचनाओं की सूची काफी लम्बी है- ***'सुजान सागर', 'विरह-लीला', 'कोक-सार', 'रस केलिवली' 'कृपा' कन्दनिकन्द', 'घन-आनन्द', 'कवित्त', 'सुजान हित', 'सुजान हित प्रबन्ध', 'वियोग-केलि', 'इश्क-लता', 'जमुना जस', 'आनन्द घन जू की पदावली', 'रीति पावस', 'सुजान विनोद'*** आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं, लेकिन इनमें से कुछ प्रामाणिक हैं और कुछ अप्रामाणिक। घनानंद ने श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों पर काव्य रचना की है, लेकिन वियोग पक्ष में इनको अत्यधिक सफलता मिली है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनके बारे में लिखा भी है- ***''प्रेममार्ग......... का ऐसा प्रवीण और धीर पंथिक तथा जबादानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।''*** घनानंद बार-बार सुजान को संबोधित करते हैं। सुजान ही श्रृंगार वर्णन के लिए तथा भक्ति भाव के लिए स्वीकार्य है। उनको 'प्रेम की पीर' का सच्चा कवि कहा गया है। प्रेममार्ग के बारे में कवि लिखता भी है-:

''अति सूधो सनेह को मारंग है, जहाँ नेकु, सयानप बाँक नहीं।
तहँ सांचे चलै तजि आपनपौ, झिझकै कपठी जो निसाँक नहीं।।
घनानंद प्यारे सुजान सुनौ, इन एक ते दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन, सी पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देह छटाँक नहीं।।''

2. आलम- आलम औरंगजेब के पुत्र मुअज्जम के आश्रित कवि थे। मुअज्जम ही बाद दिल्ली के सिंहासन पर बैठे। आलम जन्म से ब्राह्मण थे, लेकिन एक अंग्रेजन से प्रेम कर बैठे। इसलिए उसको पत्नी बनाने के फलस्वरूप वे मुसलमान हो गए। **'आलम, केलि', 'माधवानल काम कंदला', 'स्याम स्नेही'** तथा **'सुदामाचरित'** इनकी प्रसिद्ध

रचनाएँ है। आलम उच्चकोटि के कवि थे तथा उनके भावों में मधुरता और बहुलता देखी जा सकती है। **'आलम केलि'**. .... इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना है। इनकी रचनाओं में प्रेम को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। कवि ने अपनी प्रेमिका के सौन्दर्य का मादक वर्णन किया है। एक उदाहरण देखिए–

''प्रेमरंग पगे जगमगे जगे जामिनी के।
जोबन की जोतिजागी जोर उमगत है।।
मंदन के माते मतवारे, ऐसे झूमते हैं।
झूमत है झुकि-झुकि झपि उखरत है।
आलम सो नवल निकाई इन नैनन की।
पांखुरी पदुम पै भँवर थिरकत है।
चाहत है उडिवै को देखत मयंक मुख।
जानत है हैनि रात बाहि में रहत है।''

• **ठाकुर**– ठाकुर के नाम से तीन कवियों की रचनाएँ मिलती हैं। यहाँ बुन्देलखण्ड के ठाकुर की चर्चा की जा रही है जिनके पिता का नाम गुलाबराय ठाकुर था। इनको बिजावर के राजा तथा जयपुर के राजा का आश्रय प्राप्त हुआ। केवल मात्र दो ही इनकी काव्य रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं जिनके नाम हैं– **'ठाकुर ठसक'**,**'ठाकुर शतक'**। इन्होंने अपने पद्यों में प्रेम का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त लोक व्यवहार, उत्सव, मनोविकार आदि भी इनकी कविता में वर्णित हैं। अन्य स्वच्छन्द कवियों के समान ये भी प्रेम स्थिरता और निर्वाह में विश्वास रखते थे। इन्होंने सहज, सरल और लोक प्रचलित ब्रजभाषा का प्रयोग किया है।

3. बोधा– इनका असली नाम बुद्धिसैन था तथा बाँदापुर जिले के राजपुर गाँव में इनका जन्म हुआ। बड़े होकर ये पन्ना महाराज के दरबार में रहने लगे। वहाँ ये सुभान नाम की वेश्या से प्रेम करने लगे। इस पर महाराज ने छः महीनों के लिए इन्हें अपने राज्य से बाहर निकाल दिया। **'विरह वारी'** और **'इश्कनामा'** इनकी दो रचनाएँ हैं। **'विरह वारीश'** तो **'माधवानल कामकंदला'** पर आधारित एक प्रबंध रचना है, लेकिन **'इश्कनामा'** में प्रेम के कुछ मुक्त छन्द है। **'इश्कनामा'** के कारण ही कवि को ख्याति मिली। वस्तुतः प्रेम ही इनके काव्य का मूल आधार है और प्रेम में ही वे जीवन की सार्थकता मानते हैं। अधिकांश पद्यों में कवि ने सुजान के रूप और गुण की चर्चा की है। इन्होंने अपनी काव्य रचनाओं में सवैया, दोहा, सोरठा आदि छन्दों का प्रयोग किया है।

4. द्विजदेव– द्विजदेव का असली नाम मान सिंह था और ये अयोध्या के महाराज थे। रीतिबद्ध कवियों में भी इनका नाम गिनवाया गया है, परन्तु इनकी काव्य रचनाओं में स्वच्छन्द प्रकृति अधिक देखने को मिलती है। **'श्रृंगार बत्तीसी'** और **'श्रृंगार लतिका सौरभ'** इनकी दो रचनाएँ प्राप्त हुई है कवि ने रूप-सौन्दर्य के साथ-साथ हृदय को असंख्य अन्तर्दशाओं का उद्घाटन किया है। घनानंद के समान उन्होंने भी श्रृंगार रस के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का निरूपण किया है।

19.3.1 रीतिमुक्त काव्यधारा की विशेषताएँ – रीतिमुक्त काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

• **स्वच्छन्द प्रेम का वर्णन**– रीतिमुक्त कवियों ने स्वच्छन्द प्रेम को अपने काव्य में वर्णित किया है। सभी रीतिमुक्त कवि घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर आदि ने अपने काव्य में अपने व्यक्तिगत प्रेम का उद्घाटन किया है। इनका प्रेम स्वच्छन्द और उन्मुक्त है। उनका प्रेम वासना से मुक्त है। उसमें हृदयगत स्पन्द की अभिव्यक्ति हुई है। प्रेम ही को वे जीवन का मूलाधार मानते हैं। वे स्वीकार करते हैं कि प्रेम के बिना जीवन में मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। ***डॉ. लाल चन्द गुप्त मंगल ने इनके बारे में लिखा है– ''प्रेम..... ही इन कवियों का स्वप्न, निष्ठा और संकल्प है। उसी की निर्व्याज और प्राणवान् व्यंजना इनकी रचनाओं में मिलती है। कहना चाहिए कि इन कवियों की व्रतशीलता***

चकोर-चातक, पतंग और हारिल से अधिक दृढ़ है। घनानन्द जीवन के उत्तरार्द्ध-काल में प्रणय-प्रताड़नाओं के कारण उसकी मांसलता से उदासीन होकर भक्ति को उदात्त विकल्प के रूप में स्वीकार तो करते हैं, परन्तु उनके पार्थिव प्रणय की सूक्ष्म और अमांसल चेतना वहाँ भी विद्यमान रहती है। इसीलिए तो विद्वानों ने उन्हें स्वच्छन्द मार्गी प्रेमोन्मत्त गायक माना है।'' रीतिमुक्त कवियों का प्रेम भले ही व्यथा प्रधान है, लेकिन इनके प्रेम में औदात्य है। ये कवि कामुक वासना का चित्रण बहुत कम करते हैं। यदि प्रेमी प्राप्त नहीं भी होता तो भी ये अपनी वेदना को प्रकट नहीं करना चाहते। प्रेम की अनन्यता का भाव इनके मन में बसा रहता है। संयोग हो या वियोग, इनके मन की स्थिति हमेशा एक-सी रहती है। इसीलिए रीतिमुक्त कवियों का प्रेम, सच्चा और भावनात्मक है। घनानंद की कविता से एक उदाहरण देखिए-

''अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नैकु सयानप बाँक नहीं।
तहँ सांचे चलै तजि आपनपौ, झिझकै कपटी जो निसाँक नहीं।।
घनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ, इन एक ते दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन, सी-पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटाँक, नहीं।।''

• **श्रृंगार वर्णन**- रीतिमुक्त कवियों ने श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का हृदयग्राही वित्रण किया है। प्रेम की अधिकता के कारण, संयोग में भी विरह का अनुभव करते हैं।

"अनोखी हिलग दैया, बिछुरयों तो मिल्यौ चाहै,
मिलेहु में मारे जारै खरक बिछोह की।''

श्रृंगार के लिए सौन्दर्य का होना तो नितान्त आवश्यक है। यही कारण है कि इन कवियों ने अपनी प्रियतमाओं के रूप सौन्दर्य का आकर्षक वर्णन किया है।

''रावरे रूप की रीति अनूप नयौ नयाँ लागत ल्यौं ज्यौं निहारियै।
त्यौं इन आंखें बनिअनोखी, अघानि कहूं नहीं आन ती''

रीतिमुक्त कवि वियोग की अन्तर्दशाओं का चित्रण करने में अत्यन्त प्रवीण हैं। विरह वर्णन में तो इनको अत्यधिक सफलता मिली है। इसका प्रमुख कारण यह है कि, अधिकांश रीतिमुक्त कवि सच्चे प्रेमी भी थे। उन्होंने सच्चे प्रेम की परख विरह की कसौटी पर की। विरह वेदना की स्थिति के समय मन में अपनी प्रिया के प्रति अनेक भाव उत्पन्न होते हैं। लेकिन ये कवि विरह वेदना में जीवन की सार्थकता को खोजने का प्रयास करते हैं। प्रेम के लिए विख्यात 'मछली और पतंग को भी इन्होंने धिक्कार कहा है, क्योंकि ये दोनों विरह के कारण अपने प्राण त्याग देते हैं। रीतिमुक्त कवियों का तो यह कहना है कि प्रतिपल विरह की अग्नि में जलते रहने से ही प्रेस का सच्चा आनन्द प्राप्त होता है।

''हीन भए जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि. समानै।
नीर सनेही को लाय कलंक निरास वै कांग्रर स्यागत प्रानै ।।
मरिबो बिसराम गनै वह तौ यह बापुरो मीत तज्यो तरसे।
वह रूप छटा न सहारि सकै यह तेज तवै, चितवै बरसै।''

• **अद्वितीय सौन्दर्य वर्णन**- रीतिमुक्त कवियों को सौन्दर्य वर्णन में भी सफलता प्राप्त हुई है। ये कवि नायक-नायिका के रूप सौन्दर्य का वर्णन करने में पूर्णतला सिद्धहस्त हैं। उदाहरण के रूप में, रीतिमुक्त कवि घनानन्द नै अपनी प्रेमिका, सुजान के हाव-भाव, सौन्दर्य, रूप-सज्जा, वेश-भूषा आदि का जो वर्णन किया हैं, वह बहुत ही आकर्षक बन पड़ा है। कवि उसके अंग-प्रत्यंग पर तन-मन-धन सर्वस्व अर्पण करने के लिए तत्पर हो जाता है। एक उदाहरण देखिए-

''रावरे रूप की रीति अनूप नयौ नयौ लागत ज्यौं-ज्यों निहारियै।
त्यौं इन आंखें बनि अनोखी अघानि काहू नहीं आं तिहरियै।
एक ही जीव हुतौ सु तो वारयो सुजान संकोल और सोच सम्हारिया।
रोकी रहै न, दहें घनआनंद बावरी रीझ के हाय निहारि यै।''

रीतिमुक्त कवियों ने अपनी काव्य रचनाओं में राधा-कृष्ण के रूप सौन्दर्य का भी आकर्षक वर्णन किया है। वस्तुत: जहाँ कहीं इन्हें सौन्दर्य चित्रण का मौका मिलता है, वहाँ ये उसका अवश्य लाभ उठाते हैं, क्योंकि सौन्दर्य चित्रण द्वारा ही प्रेम और श्रृंगारका मनोहारी चित्रण किया जा सकता है। श्रीकृष्ण की अपूर्व छटा का एक चित्रण देखिए-

''लाल पाग बाँधे, घरे ललित लकुट बाँधे।
मैन-सर साधे सो करन चित छाँय को।
जोबन झलक अंग रंग. तकि रंक छूटी।
कुटिल अलक-जाल जिय अरुझाय को।
गरे गुजमाल उर राजत बिसाल नख,
सिख लौ रसाल अति लोनो स्याम काय को।
करत अधीर बीर जमुना के तीर तीर।''

• **सूफी तथा फारसी प्रेम पद्धतियों का प्रभाव**- डॉ. नगेन्द्र ने अपने ग्रंथ **'हिंदी साहित्य का इतिहास''** में स्पष्ट किया है कि रीतिमुक्त कवियों पर सूफी और फारसी प्रेम पद्धतियों का प्रभाव देखा जा सकता है क्योंकि उनके यहाँ प्रेम व्यंजना उत्तम पुरुष में की जाती है, प्रथम पुरुष में नहीं। पुन: रीतिमुक्त काव्य में प्रेम की वही प्रेम भावना और अखण्ड विरह भावना देखने को मिलती है जो सूफी काव्य में विद्यमान है, लेकिन ये कवि सूफियों की दार्शनिकता से कभी प्रभावित नहीं हुए। इस संदर्भ में **डॉ. लालचन्द गुप्त मंगल** लिखते हैं- ''रसखान, आलम, घनानंद और ठाकुर की प्रणय भावना में यही रूप मिलता है। बोधा में प्रेम पीड़ा के अतिरिक्त सूफी दर्शन की स्थूल चर्चाएँ भी हैं। वे **'विरह' 'वारीश'** की तरंग योजना का नामकरण ही विविध प्रकार के इश्क के अनुसार करते हैं। **'इश्कनामा' का नामकरण भी ठीक ऐसा ही है।''**

यही नहीं, रीतिमुक्त कवियों पर फारसी काव्य का प्रभाव भी है। इसका प्रमुख कारण है कि तत्कालीन राजाओं की राजभाषा फारसी थी और राजदरबारों में इसका खुल कर प्रयोग होता था। घनानंद और आलम दोनों ही फारसी भाषा के अच्छे विद्वान थे। यूँ तो फारसी का प्रभाव अकबर के काल से ही पढ़ना आरंभ हो गया था, लेकिन रीतिमुक्त कवियों पर यह प्रभाव अत्यधिक बढ़ने लग गया था। उदाहरण के रूप में, घनानंद और आलम की रचनाओं में फारसी शब्दों की भरमार है-'रान, दिल के टुकड़े होना, प्राणों का घूँट भरना, छाती में घाव होना, छाले पड़ना, छुरि या तलवार चुभना आदि शब्दावली का प्रयोग यही दर्शाता है कि रीतिमुक्त कवि फारसी साहित्य से अत्यधिक प्रभावित थे। आलम की काव्य-शैली तथा बोधा की भाषा पर भी फारसी का प्रभाव देखा जा सकता है।

• **प्रकृति-वर्णन**- रीतिमुक्त कवियों ने स्वच्छंद रूप से प्रकृति का वर्णन नहीं किया। केवल आलम्बन तथा उद्दीपन रूप में ही प्रकृति चित्रण किया है। केवल द्विजदेव ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने प्रकृति का स्वच्छन्द वर्णन किया है, लेकिन उनका नाम रीतिसिद्ध कवियों में भी गिनवाया जाता है। घनानंद तथा बोधा आदि ने प्रकृति के उद्दीपन रूप की ओर अधिक ध्यान दिया है। ये कवि प्रकृति के माध्यम से अपनी प्रेमिकाओं के पास वियोग दशा का संदेश भेजने का प्रयास करते हैं। घनानंद अपनी प्रिय सुजान तक अपनी व्यथा को बादलों के माध्यम से पहुँचाना चाहता है।

''परकाजहि देह को धारे फिरों, परजन्य जथारथ है बरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ, संबही विधि सज्जनता सरसौ ॥

घनआनन्द जीवन दायक हौ, कुछ येरियौ पीर हियें परसौ।

कबहूँ बिसासी सुजान के आँगन यो असुवानि को लै बरसौ॥''

एक अन्य छंद में घनानंद प्रकृति के उपदेशिका रूप का वर्णन करते हैं। वे पवन से प्रार्थना करते हैं कि वह सुजान के घर जाकर उसके चरणों की धूल की ले आए।

''रे बीर पौन! तेरी सबै ओर गौन बीरी,

तो सो और कौन, मने ढरकौहीं बानि दै।

विरह-विधारि, भूरि आँखिन मैं राखौ पूरि,

धूरिं तिनि पांयनि को हा-हा नैकु आनि दै।''

• **भक्ति भावना** - रीतिमुक्त कवियों ने प्रेम के साथ-साथ अपनी भक्ति भावना को भी अभिव्यक्त किया है। यद्यपि कवि उच्चकोटि के कवि माने जाते हैं, लेकिन वे उच्चकोटि के भक्त नहीं थे। फिर भी उन्होंने अपने आराध्य श्रीकृष्ण की भक्ति की है। घनानन्द भले ही सुजान से प्रेम करते थे, लेकिन आगे चलकर कवि कां सुजान प्रेम कृष्ण प्रेम में परिणत हो गया। वृंदावन में रहते हुए उन्होंने निम्बार्क सम्प्रदाय में, दीक्षा ली और वे श्रीकृष्ण की भक्ति करने लगे। यही नहीं, उन्होंने श्रीकृष्ण को मुरली तथा ब्रजमण्डल में उनकी लीलाओं का भी सुन्दर वर्णन किया। एक स्थल पर घनानन्द अपने आराध्य के प्रति दैन्य भाव प्रकट करते हुए कहते भी हैं-

''चरन तुम्हारे सुफलदाय।

रमन भूमि ब्रजमंडल सुनहू साँवरे गोकुलनायक॥

रस-विलास सम्पदा स्वामी सुखनियान सुमिरिबै सुलायक।

आनंदघन अमोघ रस मूरति सरनागत - भय हरन सहायक॥''

इस संदर्भ में **डॉ. नगेन्द्र ने लिखा भी है- ''यद्यपि रीतिकाल में कृष्ण भक्ति के उद्‌गार कवियों की वाणी के माध्यम से सुने जा सकते हैं, किन्तु फिर भी लौकिक श्रृंगारमयी भोगात्मक प्रवृत्तियों की प्रधानता ही उनमें अधिक दिखाई पड़ती है। समाज में तथा कवियों में उस समय जन-जीवन के लिए कोई ऐसा लक्ष्य विशेष नहीं था जो व्यापक रूप में प्रेरणा जगा सकता और साधनापूर्ण जीवन का विकास करता।''** एक पद्य में तो कवि घनानंद वक्रोक्ति के माध्यम से अपने आराध्य को उपालंभ भी देता है। एक उदाहरण देखिए जिसमें कवि प्रभु को आकाश-पाताल में खोजने का दृढ़ निश्चय करता है-

''अन्तर ही किधौ अंत रहो, दृग फारि फिरौं कि अभागिन भीरौं।

आगि जरौं अकि पानि परौं, अब कैसी करौ हिंय का विधि धीरौं।

जो घन आनन्द ऐसी रुची तौ कहा सब है अहो प्राननि पीरौं।

पांऊ कहां हरि हाय तुम्हें, धरती मैं धसौं कि अकासहि चीरौं॥''

• **जीवन का वर्णन**-अधिकांश आलोचकों ने रीतिकालीन कवियों पर यह आरोप है कि रीति काव्य मात्र श्रृंगारिकता का काव्य है। ऐसा कहना रीतिकाव्य की अन्य प्रवृत्तियों को नकारना है। विशेषकर रीतिमुक्त कवि अपने लगाया सामाजिक दायित्व के प्रति बड़े सचेत थे। इन कवियों को आत्मकेन्द्रित कवि कहा जा सकता है, लेकिन ' इन्होंने रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों के समान आश्रयदाताओं का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन नहीं किया। इनके काव्य को पढ़कर तत्कालीन समाज, राजनीति तथा मानव जीवन का सही ज्ञान हो जाता है। इनमें से कुछ कवियों ने घर-परिवार तथा समाज की रीति-नीति पर समुचित प्रकाश डाला है। इस सन्दर्भ में कविवर ठाकुर का उल्लेख करना आवश्यक होगा जिन्होंने अपनी रचनाओं में बुंदेलखण्ड के आसपास के लोक-जीवन तथा वहाँ की रीति-नीति पर प्रकाश डाला है। ठाकुर ने वहाँ के तीज-त्योहार, आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान आदि का सुन्दर चित्रण किया है। इसी सन्दर्भ

में **डॉ. नगेन्द्र** लिखते हैं- **"वर्ण्य की दृष्टि से एक अन्य विशेषतां यह है कि इनकी कायानुभूति में वैयक्तिकता के साथ-साथ लोक-जीवन के सहज सौन्दर्य का संस्पर्श भी है। प्रकृति के मुक्त रूप के साथ ही इनके काव्य में तीज-त्योहारों का उल्लासमय रूप भी वर्णित है, जिससे इनका काव्य लोकधर्मी प्रतीत होता है। वस्तुतः ठाकुर की सम्पूर्ण काव्यकला लोकरुचि की ओर झुकी हुई है। इसी से वे रीति-मार्ग से हटकर स्वच्छन्द और नवीन लगते हैं।''**

• **भाषा, छन्द एवं अलंकार**- रीतिमुक्त कवियों ने प्रायः परिनिष्ठित ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया है। लेकिन उनकी भाषा में अरबी, फारसी तथा बुन्देलखण्डी के शब्दों का भी सहज मिश्रण देखा जा सकता है। इन कवियों ने व्यर्थ के शब्दाडम्बर की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इसलिए इनकी भाषा सहज, सरल और मधुर है। विशेषकर घनानन्द जैसे कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार दिखाई देता है। उनके काव्य में प्रयुक्त भाषा उनके भावों की अनुगामिनी बनी दिखाई देती है। रीतिमुक्त कवि अपनी काव्य-भाषा में अर्थ गांभीर्य उत्पन्न करने के लिए लोकोक्तियों, मुहावरों तथा सूक्तियों का प्रयोग करते हैं। जहाँ कहीं कवि को उपालंभ देना होता है वहाँ वह उक्ति-वैचित्र्य का सहारा लेता है। चित्रात्मकता, भावानुकूलता, लाक्षणिकता तथा प्रतीकात्मकता आदि इनकी काव्य-भाषा के उल्लेखनीय गुण हैं। बोधा को काव्य रचनाओं से एक उदाहरण देखिए-

''कबहूँ मिलिबो कबंहूँ मिलिबो, वह धीरज ही में धरैबो करै।
उरतै कड़ि आवैं, गरे तै फिरै, मन की मन ही में सिरैबो करै॥
कंवि बोधा न चाँउ सरी कबहूँ, नितही हरवा सो हिरैबौ करै।
सहते ही बनै, कहते न बनै मन ही मन पीर पिरैबौ करै॥''

रीतिमुक्त कवियों ने प्रायः सवैया कवित्त, ताटंक, निसानी, त्रिलोकी, चौपाई आदि छन्दों का अधिक प्रयोग किया है, लेकिन घनानन्द को सवैया और कवित्त छन्दों में अधिक सफलता प्राप्त हुई है। यही नहीं रीतिमुक्त काव्य में अलंकारों का प्रयोग कवि कथनों में भव्यता और चारुता उत्पन्न कर देता है। इस काव्य में भाव और रस की अधिकता है। इसलिए अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग कविता में चार चाँद लगा देता है। इन कवियों ने प्रायः अनुप्रास, 'लेष, यमक, वक्रोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, सांगरूपक, विरोधाभास, दृष्टान्त, विभावना, व्यतिरेक, सन्देह आदि अलंकारों का सफल प्रयोग किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रीतिकालीन कवियों का काव्य भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से उच्चकोटि का कहा जा सकता है।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 घन्नानंद की किसी एक रचना का नाम बताइए।

प्र. 2 घन्नानंद का जन्म कब हुआ था।

प्र. 3 घन्नानंद की प्रेमिका का नाम बताइए

19.4 सारांश

रीतिमुक्त कवियों ने अपने प्रेम की वैयक्तिक अनुभूतियों को आत्मपरक शैली में अभिव्यक्त किया है। विरह, प्रेम, पीड़ा, वेदना आदि को अनुभूति के स्तर पर ईमानदारी के साथ आत्मपरक रूप में व्यक्त कर देता। इस धारा के कवियों की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति कही जा सकती है। अपने वैयक्तिक जीवन में विरह की मर्माहत पीड़ा को सहनेवाले इन कवियों ने उसी पीड़ा को अभिव्यक्त किया है।

19.5 कठिन शब्दावली

विरहातिरेक - विरह की अधिकता

पीडोन्माद - पीड़ा से उत्पन्न होने वाली एक प्रकार की सुखात्मक अनुभूति

अभिव्यक्ति – प्रकटीकरण

मर्माहत – भग्न हृदय

पूंजी – संचित धन

19.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. – सुजान चारित

प्र. 2 उ. – 1689

प्र. 3 उ. – सुजान

19.7 संदर्भित पुस्तकें

डॉ. मानवेन्द्र पाठक, रीतिकालीन साहित्य शास्त्र कोश

डॉ. दयानंद शर्मा, रीतिकालीन काव्य पर संस्कृति काव्य का प्रभाव

19.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 घनानंद की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

प्र. 2 घनानंद की प्रेम भावना पर प्रकाश डालिए।

प्र. 3 रीतिमुक्त कवियों पर विस्तार पूर्वक लिखिए।

****

इकाई–20
रीतिकाल : रचनाकार तथा गद्य साहित्य

संरचना

20.1 भूमिका

20.2 उद्देश्य

20.3 रीतिकालीन प्रतिनिधि रचनाकार एवं रचनाएं

20.3.1 रीतिकालीन गद्य साहित्य

स्वयं आकलन प्रश्न

20.4 सारांश

20.5 कठिन शब्दावली

20.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

20.7 संदर्भित पुस्तकें

20.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-20

रीतिकाल : रचनाकार तथा गद्य साहित्य

20.1 भूमिका

इकाई उन्नीस में हमने रीतिमुक्त काव्यधारा एवं उसकी विशेषताओं का अध्ययन किया। इकाई बीस में हम रीतिकालीन प्रमुख स्चनाकार एवं उनकी रचनाओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

20.2 उद्देश्य

इकाई बीस का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि -

1. रीतिकाल के प्रमुख प्रतिनिधि कवि कौन-कौन से है ?
2. रीतिकाल के प्रमुख प्रतिनिधि रचनाकारों की रचनाएँ कौन-कौन सी है?
3. रीतिकालीन गद्य साहित्य किस प्रकार का है ?

20.3 रीतिकालीन प्रतिनिधि रचनाकार और रचनाएं

केशवदास - केशवदास की गणना हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ आचार्यो और कवियों में की जाती है। केशव का जन्म सन् 1555 तथा मृत्यु सन् 1619 ई माना है। ये सनाढ्य कुल में जन्में थे। इनके पिता का नाम काशीनाथ था। ये संस्कृत के प्रकांड पडित थे। वे स्वाभिमानी थे। स्वभाव से रसिक थे। इनकी निम्नलिखित रचनाएं प्रामाणिक हैं- रसिकप्रिया, कविप्रिया, रामचन्द्रिका, वीरसिंह, देवचरित, रतनबावनी, विज्ञान गीता, जहांगीर जसचंद्रिका आदि। ये मूलत: अलंकारवादी आचार्य थे। इनका मानना था कि काव्य के लिए अलंकार अनिवार्य होते हैं- भूषन बिनु न बिराजई कविता बनिता मित्त। आचार्य के रूप में तो केशव ने ख्याति पाई कवि के रूप में भी केशव ने ब्रजभाषा को अर्थवहन की शक्ति तथा गाम्भीर्य प्रदान किया है।

चिन्तामणि - चिन्तामणि की गणना रीतिकालीन आचार्य-कवियों में की जाती है। ये हिकवापुर (कानपुर) के निवासी और रत्नाकार त्रिपाठी के पुत्र थे। इनके दो अन्य भाई-भूषण तथा मतिराम- उच्चकोटि के कवि थे। इनका जन्म सन् 1609 के लगभग माना जाता है। चिन्तामणि नागपुर के सूर्यवंशी भोंसले राजा मकरन्दशाह के आश्रय में बहुत दिनों तक रहे तथा रुद्रसाहि सोलंकी एवं बादशाह शाहजहां से इन्हें प्रर्याप्त धन प्राप्त हुआ था। चिन्तामणि की छ: कृतियों का उल्लेख प्राप्त होता है - काव्यविवेक, कविकुल-कल्पतरु, काव्यप्रकाश, रसमंजरी, पिंगल तथा रामायण इनके अतिरिक्त 'श्रृंगार मंजरी का इन्होंने ब्रजभाषा में रूपान्तरण भी किया था। कवि की मौलिक रचनाओं में से केवल दो ही उपलब्ध है- कविकुलकल्पतरु तथा पिंगला। चिंतामणि का महत्त्व आचार्य की अपेक्षा कवि के रूप में ही अधिक है। ये सिद्धांतत: रसवादी थे, अतएव इनकी कविता में श्रृंगार रस का सुन्दर प्रयोग हुआ हैं सीधी-सादी शब्दावली में कवि ने अपनी अनुभूति को प्रकट किया है।

मतिराम- मतिराम चिंतामणि के छोटे भाई थे। इनका जन्म् 1617 ई में हुआ। देव की भांति मतिराम कई आश्रयदाताओं के पास रहे, परन्तु इनका अधिक समय बूंदी नरेश भावसिंह के आश्रय में व्यतीत हुआ। ललित ललाम रसराज तथा मतिराम सतसई विशेष प्रसिद्ध हैं। 'ललित ललाम' अलंकार संबन्धी ग्रंथ हैं। इनमें अलंकारों के उदाहरण अत्यंत सरस और स्पष्ट हैं। रसराज नायिकाभेद विषयक ग्रंथ हैं। यह मतिराम की प्रौढ़ एवं सरस रचना है।

देव - महाकवि देव का पूरा नाम देवदत्त था, देव इनका उपनाम था। इनका जन्म सन् 1673 में हुआ। ये इटावा निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। देव को अपने जीवनकाल में कई नरेशों एवं धनपतियों का आश्रय ग्रहण करना पड़ा था, जिनमें से राजा भोगीलाल, आजमशाह, भवानीदत्त वैश्य, कुशल सिंह, उद्योत सिंह आदि का उल्लेख कवि ने स्वयं किया है। पिहानी के अकबर अली खां देव के अन्तिम आश्रयदाता थे। सन् 1767-68 के लगभग इनकी मृत्यु हुई।

देव आचार्य और कवि रूप में हमारे सामने आते हैं। इनके काव्य-शास्त्रीय ग्रंथ 'शब्द रसायन' में काव्य के विविध अंगों का निरूपण है। भाव विलास में श्रृंगार रस तथा अलंकारों का विवेचन हैं भवानी विलास, प्रेम तरंग, कुशल विलास, जाति विलास, रस विलास, सुजान विनोद तथा सुखसागर तरंग श्रृंगार रस और नायिका-भेद से सम्बन्धित काव्य-शास्त्रीय ग्रंथ हैं। देव मूलतः आचार्य की अपेक्षा कवि अधिक थे। उनकी गणना रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियों में की जाती है। उनकी टक्कर का कवि बिहारी को माना जा सकता है। कवि रूप में देव का प्रधान क्षेत्र श्रृंगार रस रहा है। उन्होंने श्रृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों रूपों का वर्णन किया है। उनके प्रेम-निरूपण में दाम्पत्य प्रेम को सर्वोपरि ठहराया गया है।

पद्माकर- पद्माकर की गणना रौतिकाल के लोकप्रिय कवियों में की जाती है। वे रीतिकाल के अन्तिम चरण कवियों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। इन्हें रीतिकाव्य के 'सांध्यदीप' कहा जा सकता है। पद्माकर का जन्म सन् 1753 में सागर में हुआ था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनका जन्म स्थान बांदा माना है। कवि पद्याकर के प्रमुख आश्रयदाता सवाई प्रताप सिंह के पुत्र जगत सिंह थे। सन 1833 में इनका देहावसान हुआ।

पद्माकर विरचित ग्रंथों में 'राम रसायन', 'हिम्मत बहादुर विरुदावली', 'जगतविनोद, 'पद्माभकरण', 'आलीजाह प्रकाश', 'हितोपदेश', 'प्रबोध पचासा, 'गंगा लहरी' और 'जयसिंह' विरुदावली'उल्लेखनीय हैं। पद्माकर रीतिकालीन अन्तिम कवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। लोकप्रियता में ये बिहारी तथा मतिराम के समकक्ष हैं। पद्माकर की विशेषता यह है कि इन्होंने श्रृंगार तथा वीर को अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। उनमें मतिराम का सा श्रृंगार तथा भूषण का सा वीर रस उपलब्ध होता है।

रीतिसिद्ध कवि- रीतिकाल के वे कवि जिन्होंने किसी लक्ष्य ग्रंथ की रचना नहीं की, परन्तु काव्य रचना के समय लक्षण ग्रंथों की परिपाटी को विस्मृत नहीं किया, उन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा जाता हैं, सेनापति, बिहारी, बेनी, कृष्ण, कवि रसनिधि, नृपशम्भु, नेवाज, पजनेस, आदि रीतिसिद्ध कवि हैं, जिन्होंने लक्षण ग्रंथों की रचना नहीं की, किन्तु इनकी रचना में रीति. के रस अलंकार, नायिका-भेद, नखशिख आदि सभी लक्षण सुव्यवस्थित रूप में प्राप्त हो जाते हैं। बिहारी इस परम्परा के अद्वितीय कवि हैं। इतना ही नहीं, वह समग्र रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं।

बिहारी- बिहारी रीतिकाल के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं। जगन्नाथदास रत्नाकर ने इनका जन्म सन् 1595 ई. माना है। 'बिहारी सतसई सतसई के अन्तः साक्ष्य से इनके जीवन के विषय में कुछ तथ्य स्पष्ट होते हैं। बिहारी के पिता का नाम केशवराय था। बिहारी का जन्म ग्वालियर में हुआ था। बुन्देलखण्ड में इनका शैशव व्यतीत हुआ तथा युवावस्था में विवाहोपरान्त वे मथुर में अपनी ससुराल में रहे। बिहारी शाहजहां के निमन्त्रण पर सन् 1620 में आगरा गए। इनकी कविता से शाहजहां ने प्रभावित होकर इनकी वार्षिक वृत्ति बांध दी। आमेर के मिर्जा राजा जयसाह (जयसिंह) के दरबार में भी वे जाते रहते थे। बिहारों में ...... निवविवाहित पत्नी के प्रेमपाश में आबद्ध महाराजा जयसिंह का उद्धार बड़ी कुशलता से किया था, जिसका संकेत इस प्रसिद्ध दोहे में मिलता है।

नाहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।

अली कली ही सों, बंच्यौ, आगे कौन हवाल।।

इन्हीं के दरबार में बिहारी ने 'सतसई' की रचना की। किंवदन्ती के अनुसार बिहारी की मृत्यु ब्रज में होना प्रसिद्ध है, किन्तु एतद्विषयक कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। बिहारी का देहावसान 1663 ई. के लगभग हुआ।

'बिहारी सतसई' की कई विशेषताएं हैं। यह एक कुशल भाव-शिल्पी तथा शब्द-शिल्पी की कृति है, जिसमें मुक्तक काव्य कला की सभी विशेषताएं समाविष्ट हैं। कल्पना की समाहार शक्ति तथा भाषा की समास-शक्ति दोनों यहां विद्यमान हैं। सतसई के दोहे कवि का 'गागर में सागर' भरने का अद्भुत प्रयास है। बिहारी ने सतसई के प्रतिपाद्य के विषय में स्वीकार किया है कि उनका लक्ष्य सतसई को अनेक स्वादों से युक्त करने का रहा है। इसमें श्रृंगार रस की प्रधानता है, परन्तु साथ ही भक्ति, दार्शनिकता, प्रकृति, नीति, ज्योतिष आदि विषयों का निरूपण मिलता है।

रीतिमुक्त (स्वच्छन्द) कवि

स्वच्छन्द कवियों ने रीतिबद्ध कवियों की भांति किसी बंधी–बंधाई परिपार्टी का अनुसरण न कर मनोवेगों के प्रवाह में बहकर काव्य रचना की है इसलिए इनका प्रेमचित्रण स्वाभाविक, स्वच्छन्द एवं जीवन्त है। उसमें सूक्ष्मता और व्यापकता है। यह प्रेम केवल नारी के स्थूल अथवा ब्राह्य–सौन्दर्य अंकन करने तक ही सीमित नहीं हैं। इस प्रेम में मानसिकता और आत्मिकता भी है। इनके प्रेम–चित्रण में कृत्रिमता का सर्वथा अभाव है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि रीतियुग काव्य अप........ भाव–गाम्भीर्य तथा अभिव्यंजनागत प्रौढ़ता के लिए विशिष्ट स्थान रखता है। घनानन्द इस काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि है। इस धारा के कतिपय प्रमुख कवियों का परिचय निम्नलिखित पंक्तियों में प्रस्तुत है

आलम- आलम प्रेमोन्मत्तमुक्त स्वच्छन्दतावादी कवियों में गिने जाते हैं। इनका रचनाकाल अनुमानतः सन् 1683 से 1723 ई. तक माना जाता है। इन्होंने प्रबंध और मुक्तक दोनों प्रकार की रचनाएं की हैं। इनकी उल्लेखनीय कृतियों हैं 'माधवानल' 'कामकदला' 'सुदामाचरित' 'श्यामस्नेह' तथा 'आलमकेलि' आलम रसिक और स्वच्छन्द प्रकृति के कवि थे। कहा जाता है कि इन्होंने शेख रंगरेजिन नामक एक मुस्लिम युवती की काव्यकलां से प्रभावित होकर उससे विवाह कर धर्म परिवर्तन कर लिया था।

घनानन्द - 'प्रेम की पीर' के कवि घनानन्द ब्रजभाषा के रीतिमुक्त (स्वच्छन्द) कवियों में सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इस 'रसमूर्ति' कवि का काव्य प्रेम और विरह का काव्य है। घनानन्द के जीवन–वृत्त के सम्बन्ध में विश्वसनीय विवरण प्राप्त नहीं हो सका है। इनके नाम, जन्म–मृत्यु की तिथि आदि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार इनका जन्म सर्वत् 1730 (सन् 1673) तथा निधन संवत् 1817 (सन् 1760) में हुआ। मिश्र जी की मान्यता है कि घनानन्द की मृत्यु अहमदशाह अब्दाली के दूसरी बार मथुरा पर किए गए आक्रमण के समय हुई थी। घनानन्द का जन्म दिल्ली के एक कायस्थ परिवार में हुआ था। ये बचपन से ही कविता और संगीत के प्रेमी थे। ये मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के मीरमुन्शी थे। ये बादशाह के दरबार की नृतकी सुजान नामक वेश्या पर अनुरक्त थे। एक किंवदन्ती के अनुसार एक दिन बादशाह की सभा में प्रेयसी सुजान के अनुरोध पर घनानन्द ने 'ध्रुपद' गाया था और शहंशाह के कहने पर मनमौजी स्वभाव के कारण गाने से इन्कार कर दिया था। इस पर बादशाह ने कुपित होकर इन्हें दिल्ली से निर्वासित कर दिया था। घनानन्द ने सुजान को साथ चलने के अनुरोध किया, पर सुजान ने उसे ठुकरा दिया। तब ये वृन्दावन आ गए और आजीवन सुजान के विरह में तड़पते रहे। बाद सुजान के प्रेम को कवि ने कृष्णोन्मुख बना लिया था। कहा जाता है कि वे निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए थे। –

नेही महा ब्रजभाषा-प्रवीन,
और सुन्दरतानि के भेव की जानैद्द...
जोग वियोग की रीति मैं कोविद,
भावना भेद स्वरूप कोठानैद्द..
चाह के रंग में भीज्यौ हियो,
बिछुरें मिले प्रीतम सांति न माने।
भाषा-प्रवीण सुखद सवा रहै,
सौ घन जू के कवित्त बखानै।

घनानन्द ने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों काव्यरूपों में रचनाएं की हैं। इनकी प्रमुख कृतियों के नाम हैं– सुजानहित, – कृपाकन्द, वियोगबेलि, इश्कलता, यमुनायश, प्रीतिपावस, प्रेमपत्रिका, प्रेमसरोवर, ब्रज–विलास, गोकुलगीत, प्रेम–पद्धति, भावनाप्रकाश, प्रियाप्रसाद, गोकुल विनोद, गिरिगाथा, पदावली आदि। इनमें 'सुजानहित' कवि की सर्वाधिक उल्लेखनीय कृति है। इसमें कवि के 507 कवित्त–सवैये संकलित हैं। घनानन्द की रचनाओं का प्रमुख प्रतिपाद्य प्रेम एवं श्रृंगार है। घनानन्द का प्रेम लौकिक तथा अलौकिक दोनों छोरों का स्पर्श करता है। घनानन्द का प्रेम भावात्मक है। उसका मार्ग

अत्यन्त सीधा है, **'अति सूषो सनेह को मारग है जहां नैकुं सयानप यांक नहीं।'** उनका यह प्रेम हृदय की वस्तु है। यह प्रेम वियोग की आग में तप कर खरा कुन्दन बनता है। उसके प्रेम में एक विचित्रता यह है कि इसमे संयोग में भी वियोग रहता है। वियोग तो इस क्षेत्र में चिरस्थायी रहने वाला अक्षुण्णं पूंजी है।

बोधा - स्वच्छन्द प्रेम की अभिव्यक्ति करने वाले कवियों में बोधा का नाम उल्लेख है। ये राजापुर (बांदा) के रहने वाले सरयूपारी ब्राह्मण थे। इनका मूलनाम बुद्धसेन बताया जाता है। बोधा नाम इन्हें पन्ना-नरेश ने दिया था। इनका जन्म 1747 ई. में हुआ, इनकी मृत्यु-तिथि अभी तक अज्ञात है। बोधा बड़े रसिक जीव थे तथा सुभान नाम वेश्या से इनका प्यार था। यही इनके काव्य का आलम्बन तथा प्रेरणा थी। सुभान के प्रति इनके प्रेम से पन्ना नरेश इनसे कुपित हो गए और इन्हें निर्वासित कर दिया गया। कई बर्ष बाद नरेश ने इनकी रचना 'विरह' 'वारीश' पर प्रसन्न होकर इन्हें क्षमा कर दिया और सुभान को भी इन्हें सौंप दिया। बोधा की प्रमुख रचनाएं हैं- 'विरहवारी' 'बारहमासा', विरही सुभान दम्पत्ति विलास (इश्कनामा)। बोधा की रचनाओं में प्रेम, सौन्दर्य तथा विरह का निरूपण बड़े-मार्मिक रूप से हुआ है घनानन्द और आलम की भांति बोधा भी रसोन्मक्त कवि है। उनके काव्य में प्रेमोन्माद की अतिशयता है। प्रेम के विषय रूप का उनके काव्य में बखूबी वर्णन है। प्रेम के इस एकनिष्ठ वर्णन की दृष्टि से वे घनानन्द से तुलनीय है। कवि की दृष्टि में प्रेम का पंथ 'तलवार' की धार पर धावनो' के समान है।

ठाकुर - ठाकुर का जन्म 1766 ई. में हुआ। इनकी कविताओं का संग्रह लाला भगवानाचा..........प्रकाशित करवाया था। ठाकुर के व्यक्तिगत जीवन से अन्य स्वच्छन्द कवियों की भाति कोई प्रेमगाथा सम्बद्ध नहीं है, फिर ही इनका दृष्टिकोण रीतिमुक्त कवियों से मिलता-जुलता है। शास्त्रबद्ध मुक्तककारों पर ठाकुर का एक व्यंग्य देखिए -

बेल सो बनाय आय मेलत समा के बीच

लोगनत्त क0 खेल करी कवि के।

आचार्य शुक्ल के शब्दों में 'ठाकुर बहुत ही सच्ची उमंग के कवि थे। इनमें कृत्रिमता का लेश नहीं था। न तो कही व्यर्थ का शब्दाडम्बर है, न कल्पना की झूठी उड़ान और न अनुभूति के विरूद्ध भावों का उत्कर्षी ठाकुर सच्चे, उदार, भावुक और हृदय के पारखी कवि थे, इसी से इनकी कविताएं विशेषत: सवैये इतने लोकप्रिय हुए। भाषा की स्वच्छता तथा भावा काम अनोखापन ठाकुर की कविता का मुख्य आकर्षण है।

• वीर काव्य

ब्रजभाषा में श्रृंगार-प्रधान काव्य रचना के साथ-साथ वीर काव्य-रचना भी हुई है। रीतिकाल का वीरकाव्य इसका ज्वलन्त उदाहरण है। डॉ. टीकमसिंह तोमर के शब्दों में ष्वीररस... के प्रसंग में अस्त्र-शस्त्र आदि युद्ध सामग्री, वीरों की सजावट, सैन्य प्रस्थान, वीरों की गर्वोक्तिया, पौरुषपूर्ण कार्यो, तुमुल, कोलाहल आदि के सजीव चित्र अंकित हुए है। जिनसे वीररस का वास्तविक चित्र पाठक के हृदय पर अंकित हो जाता है। इस सम्बन्ध में केशव, भूषण लाल और सूदन की रचनाएं विशेष उल्लेखनीय हैं।' रीतिकालीन वीरकाव्य मुक्तक एवं प्रबन्ध दोनों काव्यरूपों में रचा गया है। वीर-काव्यधारा के कतिपय कविया का परिचय निम्नलिखित है।

भूषण - तिकवांपुर निवासी रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र भूषण हिन्दी में वीर रस के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इनके वास्तविक नाम के विषय में मतभेद है। 'भूषण..... की उपाधि इन्हें चित्रकूट-पति सोलंकी राजा रुद्ररदेव से प्राप्त हुई थी। आचार्य शुक्ल ने इनका जन्म 1613 ई. तथा मृत्यु 1715 ई. में मानी है। भूषण कई आश्रयदाताओं के पास रहे। अधिकतर समय उन्होंने शिवाजी तथा छत्रसाल के पास बिताया।

भूषण की तीन रचनाएं 'शिवराज भूषण' 'शिवाबावनी' तथा छत्रसाल दशक प्रकाशित हैं। शिवसिंह सरोज में तीन और रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है। 'भूषण उल्लास' 'भूषण उल्लास' तथा 'भूषण हजारा'। भूषण हिन्दी के एकमात्र सच्चे वीररस के कवि हैं। उनका सारा काव्य वीर रसात्मक है कतिपय छन्द श्रृंगार रस के भी हैं, जिन्हें अपवाद मानना

चाहिए। भूषण ने जिन वीर नायकों-शिवाजी तथा छत्रसाल की वीरता का गान किया है, वे उनकी दृष्टि में महान् राष्ट्र-रक्षक थे। अतैः भूषण की कविता रीतिकालीन अन्य कवियों के समान राजाओं की झूठी प्रशंसा अथवा चाटुकारिता मात्र नहीं थी।

वीर कवि भूषण हिन्दी के राष्ट्रीय कवि हैं। शिवाजी का चित्रण कवि ने जातीय गौरव एवं राष्ट्रीय संस्कृति के रक्षक के रूप में किया है। भाव के अनुकूल भूषण की अभिव्यंजना -पद्धति भी ओजपूर्ण है। उन्होंने शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा है। कवि ने यह सब कुछ अपने काव्य में वीर रस की ओजमयी अभिव्यक्ति के लिए ही किया है।

लाल- ये मऊ (बुन्देलखंड) के निवासी थे और इनका वास्तविक नाम गोरेलाल पुरोहित था। लाला बुन्देलखण्ड के महाराजा छत्रसाल के दरबारी कवि थे। इनका जीवनकाल अनुमानतः 1659-1711 ई. माना जाता है। इनकी कीर्ति का मुख्य आधार इनकी प्रबन्धरचना 'छत्रप्रकाश' है। इसमें छत्रसाल की वीरता का सरल भाषा तथा ओजमयी शैली में वर्णन हुआ है। पूरा ग्रन्थ छब्बीस अध्यायों में विभक्त है तथा दोहा-चौपाई शैली में रचित है।

सूदन - ये मथुरा निवासी चौबे ब्राह्मण थे तथा भरतपुर नरेश सुजानसिंह (सूरजमल...... के आश्रय में रहते थे। अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में इन्हें 'सुजान चरित' नामक ग्रंथ की रचना की। इसमें सूरजमल की सन् 1745 से लेकर 1753 तक आठ वर्षों की घटनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन है।

नीति-मुक्तक काव्य - रीतिकाल में श्रृंगार प्रधान मुक्तक काव्य रचना के अतिरिक्त नीति-मुक्तक काव्य लिखने की प्रवृत्ति भी कुछ कवियों में मिलती है। वृन्द कवि, बैताल, घाघ, गिरिधर, कविराय, सम्मन, दीनदयाल, गिरि आदि के नाम नीति-मुक्तकरारों में उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त बिहारी, मतिराम आदि श्रृंगार प्रधान कवियों के भी नीति-मुक्तक प्रसिद्ध हैं। सूक्ति-साहित्य अथवा नीति-मुक्तकों में प्रायः दोहा, सोरठा, छप्पय, कवित्त, सवैया तथा कुण्डलिया छन्द का ही प्रयोग हुआ है। कुछ प्रसिद्ध रीतियुगीन नीति-मुक्तकारों का परिचय निम्नलिखित है -

वृन्द कवि- रीतिकालीन नीतिकार कवियों में वृन्द का स्थान सर्वोपरि हैं। गोस्वामी तुलसीदास तथा रहीम के बाद हिन्दी के तीसरे सूक्तिकार के रूप में वृन्द का नाम ही लिया जाता है। ये मेड़ता (जोधपुर) के रहने वाले थे और कृष्णगढ़ : नरेश महाराज राजसिंह के गुरु थे। इनकी 'वृन्द सतसई' (सन् 1707 ई.) सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना है 'भाव' पंचाशिका', 'श्रृंगार' 'शिक्षा' 'अलंकार सतसई' 'हितोपदेशाष्टक' आदि इनकी 3 अन्य रचनाएं मिलती हैं परन्तु वृन्द की ख्याति अधिक सूक्किार के रूप में ही है। वृन्द के नीतिकाव्य का क्षेत्र पर्याप्त व्यापक हैं धैर्य, सत्य, प्रेम, परोपकार, मैत्री, सन्तोष, स्वार्थ सज्जन, दुर्जन, शत्रु, राजा आदि विविध विषयों को इन्होंने अपने दोहों में प्रस्तुत किया है। इन दोहों में वचन वक्रता, भाषा की सरलता तथा मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग दर्शनीय है। चमत्कार पूर्ण दृष्टान्तों की योजना वृन्द की नीति-कविता की सफलता है। 'वृन्द सतसई' के कुछ दोहे देखिए

नीकी पै फीकी लगै, तिन अवसर की बाता।
जैसे बरनन युद्ध में, रस सिंगार न सोहात ।।
फीकी पैनीकी लगी, कहिये समय विचारि।
सबको मन हर्षिक करै, ज्यों विवाह में गारी।।

बैताल- ये जाति के वन्दीजन थे और राजा विक्रमसाहि की सभा के कवि थे। इनका रचनाकाल सन् 1782 से 1829 ई. तक माना गया है। बैताल ने कुण्डलियां विक्रम को सम्बोधित करके लिखी गई हैं। कुण्डलियों का विषय प्रायः लोक व्यवहार सम्वन्ध बातें हैं, जिन्हें बैताल ने अत्यन्त सीधे-सरल ढंग से व्यक्त किया है। इनकी एक कुण्डलियां का नीचे दी जाती हैं

टका करै कलहूल टका मिरवंग बजावै।
टका चढ़ावे सुखपाल टका सिर छत्र धरावै।
टका माय अरु बाप टका भैयन को भैया।

टका सास अरु प्रियतका सिर लाड-लडैया।
अब एक टके बिनु टकटका रहत लगाय रात-दिन
बैताल कहे विक्रम सुनो धिक जीवन एक टके बिन।

गिरिधन कविराय – गिरिधर कविराय हिन्दी साहित्य तथा जनसामान्य में कुण्डलियाकार के रूप में प्रसिद्ध है इनका रचना–काल सन् 1743 ई. के आस–पास माना जाता है। भाषा की दृष्टि से यह अवध के निवासी प्रतीत होते हैं। इनकी कुण्डलियां बहुत लोकप्रिय हैं। एक कुण्डलिया उदाहरणार्थ प्रस्तुत है –

सांई सब संसार में, मतलब का व्यवहार।
जब लग पैसा गांठ में तब लग ताको यार।।
तब लग ताको यार, यार संग ही संग डोले।
पैसा रहा न पास, यार मुख से नहीं बोले।
कह गिरिधर कविराय, जगत यह लेखा भाई।
करत बेगरजी प्रीति, यार बिरला कोई साई।।

दीनदयाल गिरि – बाबा दीनदयाल गिरि का जन्म 1802 ई. में काशी में हुआ। इनका परलोकवास 1858 ई. में हुआ। भारतेन्दु के पिता बाबू गोपालचन्द्र से इनका बड़ा स्नेह था। ये अत्यन्त भावुक और सहृदय कवि थे। हिन्दी में इनकी अन्योक्तियां प्रसिद्ध हैं इनकी अधिकांश अन्योक्तियां संस्कृत श्लोकों पर आधारित हैं। वस्तुतः दीनदयाल गिरि केवल सूक्तिकार न होकर कुशल कवि भी हैं। इनके काव्य में भाव और कला का सुन्दर समन्वय हुआ है। इनका भाषा पर अच्छा अधिकार था।

दीनदयाल गिरि लिखित मुख्य रचनाएं हैं– अन्योक्ति कल्पद्रुम, अनुराग बाग, वैराग्य दिनेश, विश्वनाथ नवरल तथा दृष्टान्त तरगिणी।

रीतिकाल के उक्त नीति–मुक्तककारों के अतिरिक्त घाघ और सम्मन भी उल्लेख्य हैं। घाघ कन्नौज के दुबे ब्राह्मण थे। इनकी कोई रचना प्राप्त नहीं, परन्तु इनके नीति सम्बन्धी छन्द और विशेष रूप से कृषि अनुभव लोगों को कण्ठस्थ हैं। हरदोई जिले के मल्लावा स्थान के निवासी सम्मन के नीतिसम्बन्धी दोहे वृन्द तथा गिरधर के छन्दों के समान ही प्रसिद्ध हैं। 'दिनों के फेर' आदि के सम्बन्ध में इनके दोहे स्त्रियों के मुंह से सुने जाते हैं। इनका 'पिंगल' काव्य भूषण' नामक रीतिग्रन्थ भी मिलता है। आगरा निवासी अलीमुहिब खां, 'प्रीतम' कृत 'खटमल' बाईसी' एक हास्य व्यंगपूर्ण काव्य है।

20.3.1 रीतिकालीन गद्य साहित्य

साहित्य में गद्य का नाम आते ही आधुनिक काल याद आता है क्योंकि स्वतंत्रता के बाद ही गद्य का प्रभावी और प्रबल रूप में विकास हुआ लेकिन आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि में हमने यह पहले ही चर्चा कर ली है कि गद्य का उद्‌भव आदिकाल में ही हो गया था और यह गद्य मध्यकाल से होता हुआ आधुनिक काल तक अपने प्रौढ़ रूप में पहुंचा। आदिकालीन गद्य साहित्य के विवेचनोपरांत यहां मध्यकालीन गद्य साहित्य की चर्चा की जा रही है। अर्थात् भक्तिकालीन गद्य साहित्य की चर्चा की जा रही है। अर्थात् भक्तिकालीन गद्य साहित्य की और रीतिकालीन गद्य साहित्य की।

भक्तिकालीन गद्य साहित्य – आदिकाल की अपेक्षा भक्तिकाल में गद्य का प्रयोग अधिक होने लगा। भक्तिकालीन व गद्य अपभ्रंश से निकलकर जिन कई भाषाओं में आगे बढ़ा वह प्रमुखः ब्रजभाषा, खड़ी बोली, दक्खिनी हिंदी और राजस्थानी है। अधिकतर गद्य कथा, वार्ता, वचंनिका, पत्र वंशावली के व रूप में मिलते हैं। ये सब गद्य लेखन के प्रयास यत्र तत्र बिखरे रूपों में मिलते हैं। छोटे–छोटे अंश है इन्हें पूरा ग्रंथ या रचना नहीं कहा जा सकता। विभिन्न भाषाओं में रचे गद्य खंडों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

ब्रजभाषा गद्य – काव्य भाषा के साथ ब्रज भाषा में काव्य रचना भी देखने में मिलती है। बल्लभचार्य की 'चौरासी यअपराध', विट्ठलनाथ की श्रृंगार रसमंडन नंददास की है 'नासिकेत पुराणभाषा', नाभादास का 'अष्टयाम' 'धूवदास का व 'सिद्धांत विचार', चतुर्भुजदास की 'षटऋतु चर्चा' आदि प्रमुख गद्य रचनाएं हैं। एक उदाहरण देखिए– ''जहां संयोग में देखत व देखत विरह रहे तहां यहा सूक्ष्म विरह की समाई नहीं सब रस, सब सिंगार, सब नेम भूरति धेरै श्री किशोर किशोरी जू कौ सदा सेवत रहत है।'' (सिद्धांत विचार)

खड़ी बोली गद्य– खड़ी बोली के छिटपुट प्रयोग तो आदिकाल में थे लेकिन भक्तिकाल में तो पूर्ण गद्य रचनाएं हैं। गंग की 'चंद छंद बरनन की महिमा', 'जटमल की गोरा बादल की कथा' तथा 'कुतुबशत' 'भोगलु पुशन', 'गणेस गोस्ठ' आदि भी मुख्य गद्य रचनाएं हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है 'सूरज उद्यचल ऊपरि उदै होता है। अस्ताचल ऊपर अस्तु होता है। (भोगलु पुरान)

दक्खिनी गद्य – दक्खिन गद्य के लेखक मुसलमान सूफी संत रहे है। भक्तिकालीन दक्खिनी गद्यकारों की रचनाएं प्राय: प्रामाणिक नहीं है फिर भी अनेक रचनाएं धर्मोपदेश के रूप में मिलती है। बुरहानुद्दीन जानम की 'कुल्मितुल हकायत', मौला अब्दुला की 'अहका मुस्सलात', मुल्ला बजही की 'सबरस', गोसूदराज की हिदायतनाम', 'शिकारनाम' आदि मुख्य गद्य रचनाएं हैं। एक उदाहरण देखिए– 'न आफत देखे न जलजला, अप भले तो आलम भला, किसी कू बुरा बोलना यो बिसवास है, भलाई–बुराई सब अपने पास है।' (सबरस)

राजस्थानी गद्य– भक्तिकालीन राजस्थानी गद्य प्रौढ दिखता है। इस समय की प्रमुख गद्य रचनाएं है– तत्वविचार, षडावश्यक बालाबोध, पृथ्वीचंद, चरित्र, तपोगच्छ गुर्खाली, अचलदास खींची री वचनिका। इन गद्य रचनाओं के संबंध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि अधिकतर जैन धर्म के उपदेशों को इनमें व्यक्त किया गया है। एक उदाहरण देखिए– 'लंका प्रमाण गदि गगुरण लीजै। मीर मुगल साके आण धमधमी उठायो, गढि प्रमाण, मोस्पो बनायो।' (अचलदास खीचीरी वचनिका)

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त कुछ रचनाएं और भी है जैसे आदिनाथ चरित्र, कालिकाचार्य कथा, भावक व्रतादि अतिचार, कल्याण मंदिरस्वोत्र की अवचूरी, गणितसार, को काशास्त्र मंदिरस्वोत्र की अवचूरी, गणितसार, को कशास्त्र बालावबोध, उक्ति संग्रह भाष्य..... आदि। भक्तिकालीन गद्य की सबसे विशेषता यह है कि भक्तिकालीन गद्य साहित्य की प्रवृत्ति पद्यमय रही है अर्थात तुकात्मक रही है। बहुत सी गद्य रचनाएं पद्य रचनाओं का अनुवाद है। भक्तिलीन गद्य ललित गद्य हैं।

रीतिकालीन गद्य साहित्य– आदिकाल में हिंदी गद्य के जो बीज भक्तिकाल में उनका विकास हुआ और रीतिकाल में आकर गद्य की परंपरा पुष्ट हुई जिसमें विभिन्न विषयों पर रचना हुई। वस्तुत: आधुनिक काल में जो गद्य वैभव के साथ प्रारम्भ हुआ उसे पहले ही रीतिकालीन गद्य का दृढ़ अवलंब मिल गया था। इस काल गहा में अनूदित कार्य तो सामने आया ही साथ ही मौलिक रचनाएं भी सामने आई। रामप्रसाद निरंजनी को 'भाषा योग वासिष्ठं' इस काल की बड़ी प्रसिद्ध रचना है। भक्तिकाल की भांति रीतिकाल में भी गद्य साहित्य विभिन्न भाषाओं में मिलता है। जिनका यहां संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है।

ब्रजभाषा गद्य– भक्तिकाल की भांति रीतिकाल में ब्रजभाषा का वर्चस्व रहा है। अपनी सरलता कोमला एवं काव्योचित विशेषताओं के कारण कवियों ने कविता के लिए ब्रजभाषा को बहुत अधिक अपनाया था। रीतिकाल में आकार तो ब्रजभाषा में गद्य लेखन की प्रवृत्ति बड़े बेग से देखने में आती है। इस 'काल' में ब्रजभाषा गद्य विभिन्न विषयों, (धर्म, दर्शन, इतिहास, भूगोल, ज्योतिष, गणित, चित्रकारी, काव्यशास्त्र आदि) में और विभिन्न रूपों (वार्ता, जीवनी, पत्र संवाद, वचनिका.... टीका, ललित गद्य आदि) में मिलता है। इस काल में चौरासी वैष्णव की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, द्वादश निकुंज की भावना, नित्य लीला, भावना सेल भावना, सेवक जू को चरित्र, भक्ति निवेदन, हस्तामलक, सुधर्म बोधिनी आदि। इन मौलिक गंथों के अतिरिक्त अनेक अनुवाद ग्रंथ लिखे गए।

खड़ी बोली गद्य - रीतिकाल में खड़ी बोली का स्वतंत्र रूप में गद्य प्रयोग नहीं मिलता जिस प्रकार आदिकाल और भक्तिकाल गद्य में मिलता है। अधिकतर ब्रजभाषा गद्य में खड़ी बोली का गद्य मिला हुआ है। यह गद्य अधिकतर साहित्येतर विषयों से संबंध रखने वाला अधिक है। उसमें अध्यात्म दर्शन, वैद्यक, ज्योतिष, इतिहास, भूगोल, गणित आदि विषय मिलतें हैं। इस काल में निम्नलिखित रचनाएं मिलती हैं- सुरासुर निर्णय (मुंशी सदासुख) मोक्षमार्ग प्रकाश (टोडरमल जैन). चिद्विलास (द्वीपचंद जैन), भाषा योगवासिष्ठ (प्रसाद निरंजनी)-भाषा भाषा पद्मपुराण (दौलतराम जैन), सूर्य सिद्धांत (कोमलानंद मिश्न), प्रवचन सार (पं. हेमराज), भाषामृत गीता टीका (भगवानदास), रानी केतकी की कहानी (इंशाअल्ला खां), आनन्द रघुनंदन नाटक (महाराज विश्वनाथ सिंह)

दक्खिनी गद्य - रीतिकाल में दक्खिनी गद्य भक्तिकाल की तरह उर्दू, फारसी मिश्रत रूप में मिलती है। साहित्येवर रचनाएं इस गद्य में बहुत मिलती है। इस समय की कुछ दक्खिनी हिंदी गद्य, रचनाएं निम्नलिखित है- रिसाले वजूदिया (शाहबुरहाद्दीन कादरी), गंजमखफी (मुहम्मद शरीफ), रिसाले तसव्वुफ (अब्दुल हमीद), गुलाजरू स्सालिकीन (अलइसन) (उल हुसैनी)। ये सब रचनाएं उर्दू शैली की है इस गद्य का उदाहरण करना, अगर फाका पेश द्रष्टव्य है- ''सरा दिन रोजा रखना सारी रात इबादतकरना, अगर फाका पेश आया तो खुशहाल होना और किसी के आगे न बोलना।'' (गंजमखफी)

राजस्थानी गद्य - राजस्थानी गद्य का विकास रीतिकाल में पर्याप्त मात्रा में हुआ है। इस गद्य में वचनिका, दवावैत, पत्र, वंशावली, पदावली अनेक तरह का गद्य मिलता है। कहीं तुकमय गद्य मिलता है। कहीं नहीं भी है। साहित्येतर गद्य भी मिलता है। इस गद्य में 'वात'.... विद्या प्रसिद्ध है। वात में गद्य-पद्य और मिश्रित रचना होती हैं ये बात इतिहास सम्मत भी होती है और ही काल्पनिक भी। इस काल के काव्य राजस्थानी गद्य रचनाएं घर निम्नलिखित हैं- राव रामसिंह री वात, सिद्धराज जयसिंह री, वात, दलपति विलास, नैन सीरी ख्यात, बांकीदास की ख्यात, सीसो दिया री बंसावली आदि।

अवधी- भोजपरी गद्य- रीतिकाल में गद्य के कुछ नमूने भोजपूरी में भी मिलते हैं। फणीन्द्र मिश्र का पंचायत का न्यायपत्र अवधी मिश्रित भोजपुरी का उदाहरण हैं। अवधी भाषा का गद्य प्राय: ब्रजभाषा के गद्य के मिश्रण के साथ मिलता है। उनमें से कुछ प्रमुख रचनाएं हैं- रसविनोद (भानुमिश्र), मानस टीका (राचरणदास), व्यवहारपाद (प्रियादास), कबीर बीजक (महाराज विश्वनाथ सिंह) आदि।

अंतत: यह कहा जा सकता है कि गद्य के विकास में मध्यकालीन गद्य का बहुत बड़ा योगदान रहा है जिसने आधुनिक काल को सुदृढ़ एवं प्रौढ़ गद्य उपहार रूप में दिया।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र.1 आलम कवि किस काव्यधारा से संबंधित है ?

प्र.2 'ललित ललाम' किम प्रकार का ग्रंथ है ?

प्र.3 पद्माकर की मृत्यु कब हुई ?

20.4 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है रीतिकाल का साहित्य अनेक अमूल्य रचनाओं का सागर है, इतना समृद्ध साहित्य किसी भी दूसरी भाषा का नहीं है। और न ही किसी अन्य भाषा की परंपरा का साहित्य एवं रचनाएं अविच्छिन प्रवाह के रूप में इतने दीर्घ काल तक रहने पाई है।

20.5 कठिन शब्दावली

(1) तिरोहित - छिपा हुआ

(2) रणनाद - युद्ध के समय होने वाला योद्धाओं का नाद

(3) सहस्ताब्दी - किमी सम्वत् के हर हजार तक वर्षों का समूह

20.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. - रीतिमुक्त काव्यधारा

प्र. 2 उ. - अलंकार विषयक ग्रंथ

प्र. 3 उ. - 1833 ई. में

20.7 संदर्भित ग्रंथ

प्र. 1 रीतिकाल की भूमिका - डॉ. नगेन्द्र

प्र. 2 रीतिकालीन कविता में भक्तित्व - डॉ. ऊषा पुरी

20.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 रीतिकालीन हिन्दी कविता के प्रेरणा स्त्रोत कौन-कौन से हैं?

प्र. 2 रीतिकाल को श्रृंगार काल कहना कहां तक उचित है स्पष्ट करें ?

*****

एम.ए. हिन्दी
प्रथम सत्र

प्रश्न पत्र–2
कोर्स कोड : MNIN-102

हिन्दी साहित्य का इतिहास
(आदि भक्ति एवं रीतिकाल)

इकाई 1 से 20

संशोधित : डॉ. ऊषा रानी

अन्तर्राष्ट्रीय दूरवर्ती शिक्षा एवं मुक्त–अध्ययन केन्द्र
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, ज्ञान पथ
समरहिल शिमला –171005

विषय सूची

क्र. सं.	पाठ	पृष्ठ संख्या
01.	इतिहास–दर्शन और साहित्येतिहास	
02.	इतिहास लेखन की परंपरा	
03.	हिन्दी साहित्य : आदिकाल	
04.	आदिकाल का ऐतिहासिक परिदृश्य	
05.	आदिकालीन प्रवृत्तियाँ, काव्य धाराएं तथा रचनाकार	
06.	भक्ति साहित्य : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	
07.	प्रमुख निर्गुण संत कवि और उनका अवदान	
08.	सूफी काव्य का विकास व प्रमुख सूफी कवि	
09.	रामकाव्य	
10.	कृष्णकाव्य	
11	रामकृष्ण काव्येतर, काव्य	
12.	भक्तितर काव्य व प्रमुख कवि और उनका रचनागत वैशिष्ट्य	
13.	रीतिकाव्य	
14.	रीतिकाव्य परंपरा	
15.	रीतिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराएं	
16.	रीतिकाल की प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएं	
17.	रीतिबद्ध काव्यधारा	
18.	रीतिसिद्ध काव्यधारा	
19.	रीतिमुक्त काव्यधारा	
20.	रीतिकाल : रचनाकार तथा गद्य साहित्य	